Nagari Pracharini Sabha Series No. 21

रसमान कवि कृत

चित्रावली ।

जगन्मोहन वर्म्मा सम्पादित

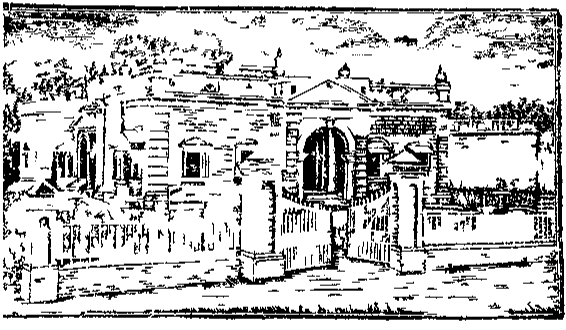

और

काशी नागरीप्रचारिणीसभा द्वारा प्रकाशित ।

मूल्य २)

सिंह छाइटिल भारतजीवन प्रेस, बनारस में छपा ।

Pr ted by Apurva Kr shna Bo
t the Indı n Press All h bad

All ll t l

भूमिका

— ० —

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम् ।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा ॥

काव्य साहित्य का एक प्रधान अंग है। हिन्दी भाषा का साहित्य महाकवि चन्दबरदाई के पृथ्वीराज रासो* से प्रारंभ होता है। इसके पूर्व इसमें ग्रंथ थे या नहीं इसके विषय में हम कोई निश्चित सम्मति नहीं दे सकते। रासो से पुराने भाषा के किसी ग्रंथ का आजतक हमको पता नहीं चला है आगे चलेगा या नहीं हम यह भी कहने में असमर्थ हैं। रासो के भिन्न भिन्न और संस्कृत के छन्दों से विलक्षण छन्दों को देखते इतना कहने का साहस होता है कि संभव है इससे पहिले भी भाषा के ग्रंथ रहे हों। पर जब तक कोई और ग्रंथ इससे पुराना न मिल जाय हम इसे भाषा का आदिग्रंथ और इसके रचयिता चन्दबरदाई को हिन्दी भाषा का आदिकवि कहने के लिये बाध्य हैं।

चन्दबरदाई के रासो में दोहे और चौपाई भी हैं। चौपाई को उसमें 'विअक्खरी' कहा है,। उनके उदाहरण ये हैं—

चरित लक्ख साहाब चर, गए पास सुरतान ।
सजी सेन सामंतपति आयो याजन थान ॥

---

* सुनते हैं कि खुमानरासो ९ वीं शताब्दी का बना हुआ है पर हमने इसे देखा नहीं है अतः इसके विषय में हम कुछ नहीं कह सकते। सभा इसकी प्रतिलिपि कराने के लिये उद्योग कर रही है यदि मिला तो यह छपकर सर्वसाधारण के सामने उपस्थित किया जायगा और तब इसकी भाषा आदि के विषय में कोई निश्चित सम्मति दी जा सकेगी।

सनि चरित्त साहाब तास चर, बोलि मार उमराव महाभर।
दिय निरधान घाव नीसान, चल्यो सेन सज्जे सबान॥
बाजित्र वार अनेक सुबज्ज धर पडिहाय सु गेमह गज्जे।
उग्यो सूर चढ्यो सुरतान बज्जि निहाब नाल गिरि बान॥

इससे अनुमान होता है कि दोहा चौपाई की सृष्टि महा कवि चन्द के समय मे या उससे पहिले हो चुकी थी। दोहा और चौपाई का रासो के अन्य ग्रंथों मे भी यथास्थान इतस्तत लिखने की प्रथा देखी जाती है पर पन्द्रहवा शताब्दी के पूर्व का एक भी ग्रन्थ ऐसा नही मिलता जो विशुद्ध दोहे और चौपाई मे हो। इससे अनुमान होता है दोहा और चौपाई का छन्द पश्चिमीय कवियो और पाच्छमी हिन्दी के लिये उपयुक्त न था।

दोहा और चौपाई के ग्रन्थ प्राय मुसलमान कवियो के रचे हुए है और प्राय पूर्वी हिन्दी वा अवधी भाषा में है। पूर्वी भाषा में कविता करने की प्रथा भी मुसलमानो ही की चलाई हुई है। सब से पहिले मीर खुसरो ने तेरहवा शताब्दी मे कुछ दोहे और पहेलिया पूर्वी भाषा में रचा। उनके दोहो के उदाहरण ये है।

गोरी सोवै सेज पर मुख पर डाले केस।
चल खुसरो घर आपने, सांझ भई चहुँ देस॥
मोर परोसिन कूटै धान, ओखरि के सबद परा मोर कान।
ऊ मोहि ऐसन छरी, मोरे हाथन छाला परी॥
दही परोसन गैहाँ मोर, अँगुरिन गडी दही कै कोर।
ए सखी मैं ऐसी मरी, दिन दस रही पीर से परी॥

शोक है कि खुसरो के ग्रन्थ सिवाय चुटकुल दोहे आदि और खालिकबारी के नही मिलते, नहा तो खुसरो पूर्वी भाषा के महाकवि कहे जाने योग्य थे।

दोहा और चौपाई के छन्द पूर्वी वा अवधी भाषा के लिये इतने उपयुक्त प्रतीत हुए कि पीछे कवियो ने इन्हो छन्दो का

कविता मे प्रधानता दी। कथा के ग्रथो के लिये दोहे और चौपाई इतने उपयुक्त हुए कि प्राय कथाग्र थ पूर्वी भाषा और दोहे चौपाइयो मे ही लिखे गए। इस प्रकार के ग्रन्थो को लिखने में मुसलमान कवि अग्रसर हुए और उन्होने कितने ही ग्र थ लिखे। सब से पुराना ग्र थ जो इस कोटि का मिला है और छप कर पाठको तक पहुँच चुका है वह पद्मावति है। इसे मलिक मुहम्मद जायसी ने सन् ९४७ हिजरी में अर्थात् १५४० ईस्वी मे लिखा है। इसी आधार पर कितने लोग जायसी को इस प्रकार के ग्र थो का आदिकवि मानते हैं। पर जायसी ने पद्मावति में एक जगह अपने पूर्व के रचे हुए कितने ही ग्रन्थो का उल्लेख किया है। आप लिखते हैं—

विक्रम धँसा पेम के बारा, सपनावति लग गयो पतारा।
सिरीमोज खडरावति लागा गगनपूर होइ गा वैरागी॥
राज कुँअर कचनपुर गैऊ मिरगावति लगि जोगी भैऊ।
साधा कुँअर मनोहर जागू मधुमालिति कहँ कीन्ह वियोगू॥

इससे अनुमान होता है कि जायसी के पहिले भी कवि लोग सपनावति खडरावाते मिरगावति मधुमालति आदि ग्रन्थ लिख चुके थे। इनमें मिरगावति का पता तो सभा का सन् १९०० मे लग चुका है। इसका विवरण भी सभा की खोज की रिपोर्ट पृष्ठ १७ १८ में लिखा है। उसके देखने से मालूम होता है कि मिरगावति का कुतुबन ने सन् ९०९ हिजरी में अर्थात् सन् १५०२ ईस्वी में लिखा था। शेष अन्य ग्रन्थो का पता आज तक सभा को नहा लगा।

मधुमालति की एक अपूर्ण प्रति मुझे इस वर्ष काशी क गुदडी बाजार में मिली। यह ग्र थ १७ पन्ने से १२३ पन्ने तक है। पुस्तक उर्दू लिपि में अत्यत शुद्ध और सुन्दर अक्षरा मे लिखी हुई है। भाषा मधुर और पाँच पाँच चौपाई क बाद एक एक दोहा है। आदि और अत क पृष्ठ न होने से ग्रन्थकर्ता क ठीक नाम (सिवाय मझन के जो उसका

उपनाम है) और उसके निर्माण काल आदि का पता नहीं चलता। ग्रंथ के आदि के २९ पन्नों तक बाएं पृष्ठ पर के किनारे पर दो तीन पंक्ति में फारसी भाषा में कुछ याददाश्त लिखे हैं जिनके अंत में ११ रबिउस्सानी सन् १०६९ हिजरी की मिती है। यह दाश्त में उसी समय की घटना का वर्णन है। इससे अनुमान होता है कि यह प्रति उस समय के पहिले की लिखी हुई है। भाषा का उदाहरण हम कुछ नीचे दिये देते हैं—

मधुमालति जो सावत जागा बिरह अगिन नख सिख तन लागी।
ऊभ साँस हिय गह गह आवा लज्जा तजि चख रुधिर बहावा॥
नैनन भरनधार जनु छूटी सयन पूर जनु बारबहूटी।
जबही दसन डफारत खोला दामिनि चमकि चमकि जनु बोला॥
मुकुलित केस रनि अँधियारी सहज भाउ भादो भनकारी।
रुदन करति मधुमालति बिरह बिथा तन साल।
लोगहि अचज सदा बरखा एक अबहु दुइ बरखा काल॥

जिस प्रकार मधुमालति में पांच पांच चौपाई के बाद एक एक दोहा है इसी प्रकार कुतुबन की मिरगावति में भी पाँच पाँच चौपाई के बाद एक एक दोहा है। इससे अनुमान होता है कि जायसी के पूर्व ग्रंथों में पांच पांच चौपाई के बाद एक एक दोहे लिखने की प्रथा थी। सात सात चौपाई के बाद एक एक दोहा लिखने की प्रथा जायसी ने चलाई जिसका उनके पीछे के कवियों ने अनुसरण किया। कवि तुलसीदासजी ने अपनी रामायण में आठ आठ चौपाई के बाद दोहा या छन्द आदि लिखने का क्रम रक्खा है। इसका कारण यह मालूम होता है कि मुसलमान कवियों ने अज्ञानवश चौपाई का दो दो चरण का मान कर अर्थात् आधी चौपाई को ही पूरी चौपाई मान पांच पांच या सात सात चौपाई के बाद वास्तव में साढ़े तीन और ढाई चौपाई के बाद एक एक दोहा लिखा था। तुलसीदासजी संस्कृत के विद्वान् थे उन्होंने

देखा कि यह प्रथा ठीक नहीं है इस लिये उन्होंने अपनी रामायण में आठ आठ चौपाई अर्थात् वास्तव में चार चार चौपाई के बाद दोहा वा छन्द आदि लिखा। अत मधुमालति, कुतबन की मिरगावति के नियम पर उसमें पाँच पाँच चौपाई बाद एक एक दोहा होने, पद्मावति मे उसका नाम आने और भाषा के विचार से पद्मावति से पुरानी है। इसकी भाषा में शुद्ध सस्कृत शब्द की कमी और ठेठ हिन्दी के शब्दो की अधिकता से तथा उपनाम से भी यह अनुमान होता है कि यह किसी मुसलमान कवि की बनाई हुई है।

मिरगावति और मधुमालति के मिलने से यह आशा होती है कि कभी सपनावति और खडरावति भी मिल जायँगी। अत मलिक मुहम्मद जायसी को हिन्दी भाषा वा अवधी भाष की कविता और दोह चौपाई में आख्यायिका वा कथा ग्रथो का आदिकवि कहने वालो का मत ठीक नही मालूम पडता। पर इस में कुछ सदेह नही कि इस प्रकार के कथाग्रथो के लिखने की प्रथा मुसलमान कवियो की ही चलाई हुई है और कथा ग्र थ रामायणादि दो एक को छोड प्राय सब के सब मुसलमान कवियो ही के लिखे हुए है।

अवधी भाषा में कविता तेरहवा शताब्दी में अमीर खुसरो ने प्रारभ की और तब से मुसलमान कवि अठारहवी शताब्दी तक इस भाषा में कविता करते रहे। उर्दू वा फारसी मिली हुई भाषा का उस समय नाम वो निशान न था। उस समय कविता दो भाषाओं में होती थी एक अवधी भाषा में दूसरे ब्रज भाषा में। ब्रजभाषा की कविता काल क विचार से अवधी भाषा की कविता से पीछे प्रारभ हुई और जेसे दोहा और चौपाई के लिये अवधी भाषा उपयोगी हुई उसी प्रकार कवित्त आदि के लिये ब्रजभाषा उपयुक्त प्रतीत हुई। इस भाषा में सूर और विहारी आदि की कविता अच्छा है।

यद्यपि ब्रज भाषा के कवियो ने दोहा और चौपाइयो क रचने की चेष्टा की और उनमे अच्छे अच्छे भाव भरे पर ब्रजभाषा के दोहे और चौपाइयो

में वह लालित्य और माधुर्य न आसका जो अवधी दोहो और चौपाइयों में था। इसी लिये भाषा के रस के ज्ञाता गोसाँई तुलसीदास ने अपने रामायण सतसई बरवे आदि को अवधी में और विनयपत्रिका कवितावली आदि को ब्रजभाषा मे लिख कर यह प्रमाणित कर दिया कि किस भाषा के लिये कौन कौन भाषा और छन्द उपयुक्त है।

हम यहाँ कुछ थोडी से दोनो भाषाओं के दोहे और चौपाइयों का स्थालीपुलाक न्याय से नीचे उद्धृत करते है जिससे इस विचार का स्पष्ट पता चल जायगा कि ब्रजभाषा के कवियों को दोहे और चौपाइयो के रचने मे कहाँ तक सफलता हुई।

राजा सो अर्जुन सिर नाई कहा सुनो विनती महराई।
बहु दिन भे हरि सुधि नहिँ पाई, आज्ञा होइ तो देखो जाई॥
यह कहि पारथ हरिपुर गये, सुन्या सकल यादव क्षय भये।
अर्जुन सुनत नयन जलधार, परयो धरणि पर खाइ पछार॥
तब दारुक संदेस सुनायो, कह्यो जो हरिजू गीता गायो।
सो सुरूप मम हिर्दय आन, रहिये सदा करत मम ध्यान॥
तब अर्जुन मन धीरज धारि, चल्यो संग ले जे नर नारि।
तहँ भिल्लन सो भई लराई, लूटे बिन सब स्याम सहाई॥
अर्जुन बहुत दुखित तब भये, इहँ अपसगुन होत दिन नए।
रोवें वृषभ तुरग अरु नाग श्याल दिवस निशि बोल काग॥
कपै भुव वर्षा नहि होई भए सोच चित यह नृप जोई।
इहि अंतर अर्जुन फिरि आयो, राजा के चरणन सिर नायो॥
राजा ताको कंठ लगाई, कह्यो कुशल है यादव राई।
बल वसुदेव कुशल सब लोइ, अर्जुन यह सुनि दीने रोइ॥
राजा कह कहा भयो ताहि, तू क्या कहि न सुनाव मोहि।
काहू असत्कार तोहि कियो, कै कहि दान न द्विज को दियो॥
कै शरणागत को नहि राख्यो, कै तुमसो काहू कटु भाख्यो।

कै हरिजू भया अन्तर्ध्यान मोसो कहि तू प्रगट बखान ॥
तब अर्जुन नैनन जल डारि राजा सो किय वचन उचारि ।
सूरज प्रभु वैकुंठ सिधारे तहि बिनु का मम काज सवारे ॥

ये चौपाइयां सूरदासजी के प्रसिद्ध ग्रन्थ सूरसागर की हैं। इनकी भाषा और कविता के विषय में मुझे विशेष कहने की आवश्यकता नहीं। पर यदि आप इन चौपाइयों को जायसी आदि मुसलमान कवियों की कविता और तुलसीदास जी के रामायण की चौपाइयों से मिलाइये तो आपको मालूम होगा कि सूर जैसे महाकवि को ब्रजभाषा में चौपाई रचने और उसमें पदलालित्य लाने में कहाँ तक सफलता हुई है। फिर जब सूर ऐसे महाकवि को ब्रजभाषा की चौपाई रचने में अकृतकार्य्यता हुई तो अन्य कवियों की तो कथा ही क्या है।

ब्रजभाषा में दोहा रचने में बिहारी सिद्धहस्त थे और उनके दोहों में बड़े गूढ़ भाव पाए जाते हैं जिसके विषय में सतसैया के दोहरे अरु नावक के तीर की जनश्रुति प्रख्यात है। पर पदलालित्य में उनके दोहे भी पूर्वी भाषा के दोहों को कभी नहीं पहुँच सकते। हम यहाँ उदाहरण के लिये दो एक दोहे बिहारी के उदाहरण रूप पूर्वी भाषा के दोहों के साथ साथ उद्धृत करते हैं और इसका निर्णय पाठकों पर छोड़ते हैं।

सहज सचिक्कन स्याम रुचि सुचि सुगन्ध सुकुमार।
गनत न मन पथ अपथ लखि बिथुर सथुरे बार ॥
छुटे छुटावै जगत ते सटकारे सुकुमार।
मन बाँधे बेनी बँधे नील छबीले बार ॥
कुटिल अलक छुटि परत मुख बढ़िगौ इतो उदोत।
बंक बँकारी देत ज्यों दाम रुपैया होत ॥

(बिहारी)

सिरजी तब विधि स्यामता जब जग सिरजे लीन्ह ।
ते कच सिरजे सार ल, सप बाँटि क दान्ह ॥

(मान)

छिटकी चिहुर सुहागिन जगत भया अँधकाल ।
जनु विरहा जन जिय बध कारन मम्म रापा जाल ।
चिहुर बास मधुमालति जब से बही बतास ।
तेहि दिन सा निसि बासर सनत भँवति उदास ॥
तर मयक ऊपर निसि पाती बनी आह कस रीति ।
जानहु ससि औ निसि स्याँ भई सुरति विपरीति ॥

(मझन)

नेकु हँसोही बान तजि लख्यो परन मुख नीठि ।
चाका चमकनि चौधमें, परति चोध सी दीठि ॥

(बिहारी)

एक दिन बिहँसी रहसि के जोति गई जग छाइ ।
अबहूँ सौंरत वह चमक चोधि चाधि जग जाइ ॥

(मान)

नासा मोरि नचाय दृग करी कका की साह ।
काटे लो कसकति हिये गडी कटीली भोह ॥

(बिहारी)

जीति तिलोक निवासा मोह रहा न जगत जुझार ।
देखन जाहि हिये सर निभरी तेहि का जीते पार ॥

(मझन)

अहिपुर नरपुर जीति कै सुरपुर जीतेउ जाइ ।
अब दहुँ कछू न जानिय का कह धर चढाइ ॥

(मान)

उर्दू भाषा वा फारसी मिली हुई भाषा में कविता की नाव सन् १७०९ ईस्वी मे शाहआलम बादशाह ने डाली और इसी ने अपना उपनाम आफताब रख कर चार दीवान लिखे। यद्यपि कोई कोई

वली' को जो सत्रहवा शताब्दी में हुए ह उर्दू कविता का आदि आचार्य मानत हे पर यह उनका भ्रम हे। वली की कविता में फारसी शब्द ह तो जरूर पर उसमें फारसी और अरबी शब्दो की उतना भर मार और हिन्दी का बहिष्कार नही है कि वह हिन्दी से पृथक भाषा की कहा जा सक। उदाहरण के लिये वली के इस पद को देखिये।

सजन टुक मुख सेता खोलो नकाब आहिस्ता आहिस्ता।
कि त्यो गुल से निकलता हे गुलाब आहिस्ता आहिस्ता॥

इस पद भर में सिवाय नकाब और 'गुल के तीसरा कोई शब्द ऐसा नही जिसके समझने में किसी अनपढ हिन्दुस्तानी को कुछ कठिनता हा जिसमें गुल' को तो बहुतेरे लोग समझते होगे। अस्तु

इन मुसलमान कवियो ने अपनी कविता विशुद्ध हिन्दी भाषा में की है जिसे साधारण अनपढ हिन्दुस्तानी भी समझ सकता है। सीधे सादे रोजमर्रा की बोल चाल में कविता करना और उसमें भाव लाना साधारण काम नही है। पर पद्मावति मिरगावति मधुमालति माधवा नल कामकदला इन्द्रावति आदि ग्रन्थो मे से किसा का हाथ में ले लीजिये तो आप को मालूम होगा कि इन मुसलमान कवियो ने केसी योग्यता से अपनी कविता को निबाहा है।

इन्हीं मुसलमान कवियो क ग्रन्थो मे एक चित्रावली भी है जिस के सम्पादन का भार सभा ने मुझे सौपा था। यह ग्रन्थ उसमान कवि का रचा हुआ है जिसने अपना उपनाम मान लिखा हे। उसमान गाजीपुर का रहनेवाला था। उसके पाँच भाई थे और उसक बाप का नाम शेख हुसेन था। वह जहाँगीर के समय मे था और उसने यह ग्रन्थ सन् १०२२ हिजरी अर्थात् सन् १६१३ ईस्वी मे रचा। ग्रन्थ का पता सभा को सन् १९०४ में मिली। सभा की ओर से उस समय बाबू अमीरसिह जी खोज का काम करत थे। उन्हा का पहिले पहिल इसकी प्रति महाराज साहब बनारस क पुस्तकालय में मिली।

प्रति कथी लिपि मे सम्वत् १८०२ की लिखी हुई है जिसके अन्त मे ले लिखित वाक्य है—

इति श्री चित्रावली कथा सपुरन जो देखा सो लिखा पढि जन सो विनती हमारी भुला आछर लीजिया सभारी। पोथी हजार अजबसिंह जी ने लिखाया साकिन चिनारगढ दूध बहलिए दसखत फकीर चंद के हाथ का बोतन कडेमानिकपुर काम श्रीवास्तव कायस्थ दूसर ॥ १ ॥

सवत् १८०२ मिती सावन सुदी १५ राज सोमवार को पोथी तयार हुआ पोथी चित्रावली लिखा या हजारी अजबसिंह जी ने खोम खास बहलिया—बोतन चिनारगढ पातसा महमदसाह सन् २८ अजीमाबाद मा पोथी लिखाया अजीमाबाद के सूबा नवाब जनदी अहमदखाजी के अमल मैं लिखा गया दसखत फकीरचंद कायथ के हाथ का बोतन कडेमानिकपुर के बासिंद ॥१॥ पोथी मैं पसे लगे रुपया एक सौ एक १०१) सिक्का मोसोवर ओ लिखाई आ कागज रासनाई आ जिल्दसाज ॥ १ ॥

इस ग्रन्थ की कथा का साराश भी उस समय सभा की आज्ञा से उक्त बाबू साहब ने लिखा था जो सन् १९०४ की पुस्तको की खोज की रिपोर्ट के पृष्ठ ३०–३२ मे छपा है। आप लिखते है—

'इस में नैपाल के राजा धरनीधर के पुत्र सुजान कुंवर रूपनगर के राजा चित्रसेन की कन्या चित्रावली के असीम प्रेम की कहानी है जो इस प्रकार है—राजा धरनीधर पँवार कुल का क्षत्री था। इसके सन्तान न था इस ग्लानि से उसने राज छोड कर तप करने का मन किया। फिर मंत्रियो के उपदेश से घरही शिवाराधन कर क्षत्र (सत्र) चलाना आरभ किया। तब शिव पार्वती ने परीक्षार्थ आकर इससे इसका सिर मांगा। जब यह दृढ होकर सिर देने का प्रस्तुत हुआ तब उन्होने प्रसन्न हो वर दिया कि तुझे एक अपूर्व पुत्र होगा जो कुछ दिन जोग साधेगा

और किसी स्त्री से प्रेम भी करेगा। इस आशीर्वाद से पुत्र हुआ। ज्योतिषियो ने कुण्डली बनाई और सुजान उसका नाम रक्खा। यह अति प्रतापी और बुद्धि विद्या निधान हुआ। एक दिन जब यह शिकार खेलने गया तो वहा मार्ग भूल गया और एक पर्वत की गुफा मे जा सोया। यह स्थान किसी देव का था। उसने इसे देख कृपा कर इसकी रक्षा करनी स्वीकार की। इसी अवसर में उसका एक मित्र आया और उसने रूपनगर में चित्रावली की वर्षगाँठ का उत्सव कह उससे भी देखने के लिये कहा। उसने उससे उस कुमार की रक्षा करने की प्रतिज्ञा कही। तब वह बोला कि इसे भी उठा ले चले फिर आवेंगे तब ले आवेंगे। यह सलाह कर ये उसे ले उडे और और चित्रावली की चित्रसारी में जाकर सुला दिया और आप दोनो उत्सव देखने चले गए। जब रात में कुमार की आँख खुली तो वह आश्चर्ययुक्त हो चित्रसारी देखने लगा। वहाँ उस कुमारी का भी एक चित्र था, उसे देख वह आसक्त हो गया और फिर रंगादि रक्खा पाकर अपना भी एक चित्र बना उसी के पास रख सो गया। सवेरे देव उसे उठा कर वहा ले आए। जब वह जागा तो उसने स्वप्न का भ्रम किया परन्तु अपने वस्त्रों में रंग लगा पा कर सच मान उसके प्रेम में विह्वल हो चिन्तायुक्त बैठ रहा। सेवक लोग ढूँढते ढूँढते वहाँ आ पहुँचे और उसे राज मे ले गए परन्तु वह प्रेम मे बेसुध रहा। अंत में इसके एक सहपाठी सुबुद्धि नाम ब्राह्मण ने युक्ति से इसका हाल पूछा और ये दोनो परामर्श कर फिर उसी मढी पर जा कर रहे। वहाँ उन्होने अन्नसत्र जारी कर दिया। उधर इसका चित्र देख कुमारी भी आसक्त हो गई और उसने अपने नपुसक भृत्यो को जोगी के वेष में उसे ढूँढने को भेजा। उन में से एक यहाँ भी आन पहुँचा। इस बीच में एक कुटीचर ने कुमारी की मा हीरा स चुगली करी जिससे उसने उस चित्र को धो डाला। इसी अपराध पर उसका सिर मुँडा कर

कुमारी ने उसे निकाल दिया था। अब यह जोगी जब कुँअर से मिला और परस्पर बातो से दोनो को पता लगा तो कुमार उसके साथ रूपनगर पहुँचा और योगी के वेष में ही चित्रावली का और इसका शिव मंदिर मे परस्पर दर्शनलाभ हुआ। फिर इसी अवसर मे उसी कुटीचर ने उसे अपना शत्रु मान कर अन्धा कर दिया और बहका कर एक पर्वत की गुफा में डाल दिया। वहा एक अजगर उसे लील गया परतु विरहाग्न की ज्वाला से घबरा कर उसने उसे उगल दिया। यह घटना एक बनमानुस देखता था उसने उसे एक अजन दिया जिससे वह फिर देखने लगा। फिर बन मे घूमते हुए एक हाथी ने उसे पकडा और उस हाथी का एक सिह (मल मे पक्षिराज) ले उडा। हाथी ने अपने प्राणसकट से घबरा कर इसे छोड दिया। वह एक समुद्र के तट पर जा गिरा। फिर वह घूमता हुआ सागरगढ नगर म जा पहुँचा। वहाँ क राजा सागर की बेटी कोलावती की फुलवारी में विश्राम कर रहा था कि उस अवसर पर सखियो के साथ वह आई और इस पर मोहित हो गई। अन जोगी जेवाने के बहाने से इसे भी बुलवा के भोजन की वस्तु में अपना हार छिपा इसके पात्र मे डाल चारी में फँसा इसे कैद कर लिया। फिर एक राजा (सोहिल) कौलावती का रूप सुन इसे जीत कर लेजाने का चाह आया पर सुजान ने उसे हटा दिया (मारा) और कालावती से यावत् चित्रावली मिलन की प्रतिज्ञा करा विवाह किया। इधर चित्रावली ने फिर उसी जोगी का भेजा जो पूर्व गया था। कुँवर कालावती का ले गिरनार यात्रा का गया था वहाँ योगी न उसे पाया और उसका समाचार ले चित्रावली के पास गया। चित्रावली का पत्र ले वह सागरगढ आया और योगी बन धुईं लगाई। कुँवर योगी की सिद्धि को सुन उसके पास आया और उसने उसे पत्र दिया। फिर उसे रूपनगर ले गया और सामा पर बैठा कुमारी स कहने गया।

इसी अवसर मे राजा का एक कथक ने जा सागरगढ का निवासी था कुछ लाभ की आशा स सोहिलराजा के युद्ध का गान सुनाया जिसे सुन राजा को कन्या के विवाह की चिन्ता हुई। राजा ने चार चितेरे राजकुमारा क चित्र लाने का भेजे। रानी चित्रावली के पास गई। उसे उदास देख हाल पूछा पर उसने बहाना किया परन्तु किसी चेरी ने द्वेष स रानी से दूत भेजने का समाचार कह दिया। उसी समय राजकुमार का बैठा वह दूत खबर देने को आ रहा था। रानी ने उसे मार्ग ही में पकडवा कर कैद करा दिया। इस विलम्ब होने क कारण चित्रावली का नाम ले कुमार पागल की नाई दौडने लगा। राजा तक हाल पहुँचा। राजा ने अपयश क भय से गुप्त भाव से उसे मारने को हाथी छाडवा दिया। कुँवर ने उसे भी पराक्रम कर मार डाला। तब राजा इसे मारने को चढा। उसी अवसर पर एक चितेरा सागरगढ से कुँवर का चित्र लेकर आ पहुँचा और सोहिल क मारने का समाचार कह कर चित्र दिखाया, तो वह इसी कुमार का ठहरा। इस पर राजा कुमार को ले गया और उससे चित्रावली का याह दिया। कुछ दिन पीछे कौलावती ने विरह स सतप्त हो हस मिश्र को दूत बना कर भेजा। उन्होंने भेंट कर एक भ्रमर पर आक्षेप कर कुमार को चेताया। कुमार ने अपने पिता तथा कौलावती का स्मरण कर विदा माँगी और वहाँ से विदा हो सागरगढ आ कोलावती की भी विदा करा लिया। समुद्र पार होने में तूफान आया किसी प्रकार वे सब प्राण बचा जगन्नाथ पुरी मे पहुँचे। वहा पुरोहित (केशीपाडे) से भेंट हुई। वहाँ से अपने देश मे आय। पिता माता से मिले। पिता ने आनदबधाई की। माता अन्धी हो गई थी पुत्र के आगमन से हर्षित हो पुन उसके नेत्र खुल गये। राजा ने पुत्र का गद्दी पर बैठा आप भजन करना आरभ कर दिया। कुमार अपनी रानियो सहित आनदराज्य भोग करना लगा।"

इसकी भाषा की सुन्दरता और कथा की मनोहरता को देख सभा ने इस पुस्तक की प्रतिलिपि कराई। इस ग्रन्थ की आधी नकल बाबू अमारसिंह जी ने की थी पर शेष रमाकान्त ओझा ने की। प्रतिलिपि ९ जनवरी सन् १९०९ का समाप्त हुई। नकल के अन्त में निम्नलिखित वाक्य काशी की प्रति की समाप्ति के अन्तिम वाक्य पोथी में रुपैया लगे रुपया एक सौ एक १०१) सिका मोसाअर औ लिखाइ औ कागद रासनई औ जिल्द साज। के नीचे लिखा है—

उसी पुस्तक की नकल श्री महामहोपाध्याय प० सुधाकर द्विवेदी जी की आज्ञा से रमाकान्त ओझा ने ता० ९ जनौरी सन् १९०९ ई० का लिख कर तैयार किया।' द० रमाकान्त ओझा माज ओझाली'।

इस प्रतिलिपि वा नकल को महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी ने किसी उर्दू पुस्तक से मिलाया था अथवा किसी अपने शिष्य द्वारा मोकाबिला कराया था। ग्रन्थ में उर्दू का पाठ ऊपर लिखा था। पर इस ग्रन्थ में पाठान्तर या शोधने के कोई अक्षर द्विवेदी जी के हाथ के नहीं थे जिससे अनुमान होता है कि उन्होंने इसे उर्दू प्रति से अपने किसी शिष्य आदि द्वारा मिलान करा कर उर्दू पाठ ऊपर लिखाया था और उनका इसे स्वयं शोधने का विचार था। मिलान करनेवाला उर्दू को ठीक नहीं पढ़ सकता था इसलिये पाठ में कहीं कहीं कठिन भूल रह गई थी। जिसका उदाहरण यह है—पृष्ठ–१

दूसर जगत नामु जिन पावा जैसे सहरी' उदधि कहवा

इसमें लहरी' की जगह सहरी' पाठ रह गया है। हिन्दी प्रति के नकल करने वाले ने लहरी को 'सहरी' लिखा था और उर्दू प्रति से मुकाबिला करने वाले ने भी इसे शुद्ध माना था। इसी पर विश्वास कर मैंने सहरी पर ३–शफरी। एक प्रकार की मछली नोट लिखा। इस अशुद्धि का पता मुझे एक उर्दू प्रति के मिल जाने से लगा। यह प्रति मुझे ६४ पृष्ठ तक छप जाने पर अलईपुर के रमजान मियां उपनाम पोथी

मियाँ से मिली। इस में देखा तो लहरी पाठ था। अनुमान होता है कि हिन्दी प्रति से नकल करने वाले ने कैथी ल को 'स' समझ कर लहरी को सहरी' लिख दिया था और उर्दू प्रति से मुकाबिला करने वाले ने उर्दू लिपि मे लहरी और सहरी की समानता से उसे सहरी समझा। वास्तव में यह भ्रम उनका उर्दू लिपि की दुरूहता के कारण हुआ। इस लिपि मे एक शब्द का दूसरा शब्द पढा जाना कोई असाधारण बात नहा है। कचहरियो में इसके उदाहरण नित्य प्रति देखने में आते है।

अभी थोडे दिन की बात है सन् १९१० के अन्त में ६ महीने के लिये मैं इलाहाबाद की कायस्थ पाठशाला मे हड क्लर्क था। पाठशाला का कुल दफ़्तर उर्दू में है। वहाँ केवल हाजिरी का रजिष्टर अंग्रेजी मे है और कालिज और स्कूल की चिट्ठी पत्री जो अन्य स्कूलो और अफसरो से होती है अंग्रेजी में होती है। उन दिनो मनेजर के शिरिस्ते से एक रजिष्टरी चिट्ठी लायलपुर को जो पंजाब में है भेजी गई। पता लिखा था उर्दू में। चिट्ठी लायलपुर की जगह मिर्जापुर चली गई और वहाँ पर किसी आदमी को जिस का भी वही नाम था दे भी दी गई और रसीद चौथे दिन कायस्थ पाठशाला की शरिस्ते में पहुँच गई। लोगो को चौथे दिन रजिष्टरी की रसीद पा अत्यन्त अचभा और कुतूहल हुआ पर जब रसीद देखी गई तो उसपर लायलपुर मुहर की जगह मिर्जापुर की मुहर था। तब लोगो को उर्दू लिपि की दुरूहता का स्पष्ट प्रमाण मिला। खैरियत इतनी ही थी कि उस लिफाफे में नोट आदि नहीं थे।

ग्रन्थकर्ता निजामुद्दीन चिश्ती की शिष्यपरम्परा में था और सूफी था। मुसलमानो में सूफी मत हिन्दुओ के वेदान्त मत का एक रूपान्तर है इसलिये कट्टर मुसलमान सूफियो के द्वेषी होते है और कितने सूफियों को मुसलमान बादशाहो ने मरवा डाला है। कवि ने इस ग्रन्थ में ठौर ठौर पर वेदान्त और अद्वैतवाद की झलक दिखलाने में कमी नहा की है। कथा एतिहासिक घटना से नहीं ली गई जान पडती

बल्कि कल्पनाप्रसूत है। नैपाल के राजसिंहासन पर एक भी पँवार राजा नहीं हुआ है। कथा विचारने से आध्यात्मिक प्रतीत होती है और इसीलिये ग्रन्थ में सुजान का शिव का अवतार लिखा है। महादेव खंड में जब शिव पार्वती धरनीधर की परीक्षा करने गये और उससे उसका सिर माँगा तो राजा सिर देने पर उद्यत हो गया। इस पर महादेवजी प्रसन्न हो उसे वर देने लगे वहाँ कवि ने उनके मुँह से यह कहलाया है—

देखु देतहौं आपन असा अब तोरे ह्वैहौं निजु वसा।

यही नहीं कोलावती और चित्रावली अविद्या और विद्या की ही प्रतिरूप मालूम पड़ती है। सुजान शब्द का अर्थ बुद्धिमान् है इसीलिये उसने कोलावती का विवाह होने पर भी उससे तब तक समागम नहीं किया जब तक चित्रावली वा विद्या उसे प्राप्त नहीं हुई। इसी लिये उपनिषदों में कहा गया है—

अन्धन्तम प्रविशन्ति यऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव तमो य उ विद्याꣳ रता॥
विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयꣳसह।
अविद्यया मृत्यु तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥

कविने ग्रन्थ में धरनीधर के प्रतिज्ञा पालन वा दान सुजान के अटल प्रेम, परेवा की स्वामिभक्ति और कोलावती के आत्मोत्सर्ग का अच्छा चित्र खींचा है। इसके अतिरिक्त चित्रावली की वाटिका का वर्णन, उसका नख सिख, उसका विरह, षट्ऋतु और बारहमासा आदि देखने योग्य है। कुँवर कूदन खंड में कवि ने कितने ही देशों और प्रदेशों का वर्णन किया है। यद्यपि इनमें कई एक की दिशा और स्थिति का ज्ञान भ्रमपूर्ण है तो भी जिस समय यह ग्रन्थ लिखा गया उस समय एक साधारण नगर के रहनेवाले के लिये भूगोल का इतना ज्ञान होना कुछ कम नहीं है। सब से अचम्भे की बात तो यह है कि कवि ने उसमें अँग्रेजों का नाम भी लिखा है और उनके देश और उनके आचार व्यवहार का वर्णन उसने दो चौपाइयों में किया है। चौपाइयाँ ये हैं—

वलदीप देखा अंग्रेजा तहाँ जाइ नहिं कठिन करेजा।
ऊँच नीच धन संपति हेरा मद बराह भोजन जेहि केरा ॥

उस समय अंगरेजों को आये इस देश में बहुत थोडे दिन हुए थे। ईस्ट इंडिया कंपनी सन् १६०० में लंडन में बनी थी और १६१२ में सूरत में कंपनी ने अपना गुदाम बनाया था। उसके एक वर्ष बाद १६१३ का रचा हुआ यह ग्रन्थ है। उस समय में कवि का एक साधारण गाजीपुर ऐसे छोटे नगर में रह कर अंग्रेजों के विषय में इतनी जानकारी रखना कोई साधारण बात नहीं है। हम मान सकते हैं कि वह मक्का हज्ज करने गया होगा पर तो भी उसका इतनी जानकारी रखना और ग्रन्थ में लिख जाना उसकी बहुज्ञता का स्पष्ट प्रमाण है।

सब से उत्तम अंश चित्रावली में चित्रावली की माता का वह उपदेश है जो उसने उसे विदा होते समय दिया था। यह उपदेश स्त्रियों के बडे काम का है और बालिकाओं के लिये अत्यंत उपयोगी है।

इस ग्रन्थ में सबसे अधिक विलक्षण बात यह देखी जाती है कि कवि अपनी कविता में लोकोक्तियों का संग्रह यथास्थान करता गया है। हम उसके दो चार उदाहरण यहाँ दिये देते हैं।

मान करहु जो करि सकहु, कथनी अकथ अपार।
कथे न कर कछु आवइ, करनी करतब सार ॥
कौन भरोसा देह का, छाडहु जतन उपाइ।
कागद की जस पूतरी पानि परे घुलि जाइ ॥
तब लहु सहिये बिरह दुख, जब लगि आव सो वार।
दुख गये तब सुक्ख है, जानै सब संसार ॥
कहाँ सो गोडिया तुच्छ तन, कहा किसन असराउ।
बैरी जो बस कै मिलै लेइ सो आपन दाउ ॥
सब कहँ अमिरित पाँच है, बंगाली कहँ सात।
केला काँजी पान रस, साग माँछरी भात ॥

क्षत्रिय सुनि जो ना करै तिय अरु गाइ गोहारि।
पुहुमी कुल गारी चढै, सरग होइ मुख कारि॥
खरग सँभारै सूरमा वेरी मुख समुहान।
तौ लहु पौरुख ना तजै जौलहुँ आव न रात॥
गहि जो भिखारी मारइ दुइ घट यहि जग होइ।
एक हत्या काँधे चढै पुनि भल कहै न कोइ॥
जैसे पनही पाउँ की तैसे तीय सुभाउ।
पुरुष पथ चलु आपने पनहीं तजै न पाउ॥
विनसत कौल न बार भइ, गयो अथै जग भान।
मारेसि ईंट देखाइ गुड साई भा उपखान॥
मैं तोहि डारेहुँ लै तहाँ, जहाँ न डोलै पाँखि।
जो जस करै सो पाव तस, कुँअर देखु ले आँखि॥

मैं न कवि हूँ और न मुझे कवित्त और छन्दो का कुछ ज्ञान ही है। मैंने हिन्दीभाषा के साहित्यग्रन्थो को भी अच्छी तरह नहा देखा है। मेरी आयु का विशेष भाग भारत के प्राचीन वैदिक ग्रन्थो और शुष्क दर्शनों के अवलोकन और पर्य्यालोचन मे बीता है। मुझे सस्कृत भाषा के काव्य आदि के देखने का भी कभी उतना अवकाश नहीं मिला है और न मैं उन विषयों को जानता ही हूँ। ऐसी अवस्था में मुझ से ऐसे ग्रथ के सपादन की क्या आशा की जा सकती है? मुझ से यह काम लेना सूखे अमचुर का बलात् मुरब्बा बनाना है। फिर भी सभा की आज्ञा को शिरोधार्य्य कर इस ग्रन्थ को जहाँ तक हो सका है मैंने शोधा है और कठिन देहाती वा ग्रामीण शब्दो का अर्थ भी टिप्पणी में दे दिया है। सपादन के काम से अनभिज्ञ होते हुए भी मैंने यथाशक्य इसको सपादन करने में अपनी ओर से कसर नहीं की है। प्रूफ देखने और तदनुसार शुद्ध करने में असावधानी होने तथा ६४ पृष्ठ तक उर्द

की प्रति न मिलने के पूर्व छप जाने से अशुद्धियाँ रह गई हैं जिनके लिये शुद्धिपत्र लगा दिया है।

ग्रन्थ का विभाग ठीक नहीं था मैंने इसे विषय के अनुसार खंडों में विभक्त कर दिया और पाठकों के सुभीते के लिये उसकी सूची भी लगा दी है। काम शास्त्र खंड इस खंड का अनुखंड है, स्वतन्त्र खंड नहीं भ्रम से इस पर (४१) का अंक लिख गया है। पाठकों को इसे सुधार लेना चाहिये। ४१वां खंड 'चित्रावली गवन खंड' है।

इस ग्रन्थ के संपादन और संशोधन में मुझे रमजान उपनाम पोथी मियां की उर्दू प्रति से बड़ी सहायता मिली जिसके लिये मैं उन का कृतज्ञ हूँ। यदि मुझे यह प्रति न मिलती तो मैं इस ग्रन्थ को ऐसा संपादन न कर सकता और कितने ही अंश संदिग्ध रह जाते।

फिर भी संभव है कि दृष्टिदोष वा भ्रम से कुछ और अशुद्धियाँ रह गई हों। आशा है कि पाठक उनको सुधार लेंगे क्योंकि मनुष्य सर्वथा निर्भ्रान्त नहीं हो सकता।

जगन्मोहन वर्म्मा।

स्थान, काशी नागरीप्रचारणी सभा

२४ दिसम्बर सन् १९१२

खड सूची

	पृष्ठ
१ स्तुतिखड	१
मगलाचरण	१
महम्मद की प्रशसा	
महम्मद के चार मित्रो की प्रशसा	६
राजा की प्रशसा	६
शाह निजाम की प्रशसा	९
बाबा हाजी की प्रशसा	१०
गाजीपुरवर्णन	११
अपने पाँच भाइयो का वर्णन	१५
प्रस्तावना	१४
२ कथा खड	१५
३ महादेव खड	१७
४ जन्म खड	२०
५ देव खड	२७
६ चित्रदशन खड	३३
७ मढी खड	४१
८ धर्मसाल खड	४३
९ चित्रावली जागरण खड	४५
१० सरोवर खड	४७
११ चित्रावलोकन खड	४८
१२ चित्र धोवन खड	५२

	पृष्ठ
१३ परवा खड	५६
१४ उद्योग खड	८३
१ प्रस्थान खड	८५
१६ सुबुद्धि खड	८७
१७ यात्रा खड	८८
१८ विरह खड	९२
१९ परेवा आगमन खड	९७
२० दरसन खड	१०४
२१ कुंजीचर खड	११०
२२ अजगर खड	११४
२३ बनचर खड	११७
२४ हस्ती खड	११९
२५ कोलावती खड	१२१
२६ जोगी बधन खड	१३०
२७ साहिल खड	१३४
२८ कालावती विवाह खड	१ १
२९ गिरिनार यात्रा खड	१ ७
३० जोगी ढूँढन खड	१५९
३१ चित्रावली विरह खड	१६३
३२ पाती खड	१६१
३३ सिद्ध समागम खड	१७७
३४ कथक खड	१८१
३५ परेवा बधन खड	१८६
३६ दलगजन खड	१८८
३७ सुजान बधन खड	१९१
३८ चित्रावली विवाह खड	१९६

	पृष्ठ
३९ कुटीचर-दहन खड	२०५
४० हस खड	२०८
४१ चित्रावली गवन खड	२१७
४२ कौलावती गवन खड	२२६
४३ बोहित खड	२२९
४४ जगन्नाथ खड	२३२
४५ अभिषेक खड	२३५

शुद्धिपत्र ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१८	जैसे सहरी[१] उदधि कहावा	जैसे लहरी उदधि कहावा ।
	२१	३ (शफरी) एक प्रकार की मछली	० ०
३	३	कोऊ बिसरत नाहीं	काउ बिसरत नाहीं
७	४	खोदु हिय इन्दू	खोइ हिय दुदू
	६	कही न जग पति याइ कोउ	कहे न जग पतियाइ कोउ,
८	४	अस भा अदल मते हरि बानी	अस भा अदल मथे हरिबानी
	७	सहस खाट कचन के साजे,	सहस घाँट कचन के साजे,
	२२	चौंधे दृष्टि सोंहे जेहि हेरे	चौंधि दिष्टि सोंह जेहि हरे,
९	१०	बादिहि लोगि	बादिहि लोग
	१२	मानसा होइ	मनसा होई
१०	९	तेहि देई जगाई	तेहि देइ जगाई
११	९	सुमर समै पुनि सूर	समर समै पुनि सूर
	२२	तजहि न एकौ तिनहु कहाला	तजहिं न एकौ तीनिहुं काला ।
१३	९	कीय व्योहारा	किय व्यवहारा
	२१	प्रेम अँकूर जहँ सिर काढा,	प्रेम अँकूर जहा सिर काढा
	२३	प्रेम कुमुर जहँ बदन उघारा, बिरह आई तहँ मजन सारा ।	प्रेम मुकुर जहँ बदन उघारा, बिरह आइ तहँ मजन सारा ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४	२	हाँ तीनहु क भद कहु	हौं तीनिहुँ क भेद कहि
	७	मन हाई सियाना	मन हाइ सियाना।
	१७	जहँ लहु सुझि	जहँ लहु सूझि
१६	१६	दीया बाजु मग	दिया बाजु माग
२१	९	राहु केतु दाऊ	राहु केतु दोउ
२४	१	जहँ लोउ राउत रान	जहँ लहु राउत रान
	१८	मारहु खाड पचरि	मारहु खांड प्रचारि
	२३	विष भारा	विष भरा
३७	२३	कुँअर जहाँ आवा।	कुँअर जहँ आवा
४२	३	रहहु जाई	रहहु जाइ
	१५	चित्र चित्रचत्र सिंगरा	चित्र चित्रित्र सिंगारा,
४४	२०	जब कीरान	जब करान
४८	१३	भौंर कँवाल तेहि सग	भौंर कँवल तेहि सग
५१	४	दीसत आना	दीस न आना
५५	२२	कायहि लगा	कायहि लागा
५९	७	अस लगेउ तुअ भाग	अस लागेउ तुअ भाग
६०	२१	पानि मोती	पानि मोति
६१	११	चकइ चकवा	चकई चकवा
६२	७	बहु कर नास	बहु कटनास
	२१	ठौर ठोर सो अधिक बसाहीं	ठोर ठार सो अधिक बसाहीं
	२६, २७	बहु कर बास रहहि	बहु कटनास रहहिं
६६	२४	बेलिन खूँदी	बेलि न खूँदी
६७	६	आपन चित्र अपु पै लीखा	आपन चित्र आपु पै लीखा,
	१८	अग्या हाई	अज्ञा होइ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६'	१०	सिभू सरीर	सभु सरीर
७३	२०	रहस न जाहीं	रहसन जाहीं
७४	११	सोइ चीन्ह रखा तहाँ जो देखा	साई चीन्ह रेखा जो देखा
७५	१२	दुई जनु डंका	दुइ जनु डका
८३	१९	कहा सो तरागन महँ भावा	कहाँ सो तारागन महँ भावा
८९	१५	हीरदै लिखा	हिरदय लिखा
९१	२२	गुरु बचन	गुरू बचन
९२	१०	परट हसै	परगट हसै
९५	७	सेल उर मारी	सेल उर मारा
९६	३	श्रीपचम मानहीं	श्री पचमि मानहिं
९७	१३	चित्र देखा	चित्र देखि
	१५	जीउ अधर बईठा	जिउ अधर बईठा
	२१	जैस उगवत सूर क	जैसै उगवन सूर के
९८	२०	धरमसाला महँ	धरमसाल महँ
१०१	१४	गुरुसों कही	गुरूसों कही
१०३	१०	भोग आचार	भोग अचार
१०८	१३	खाइ रह ठग मूरि सी	खाइ रहा ठग मूरि सी
१३०	५	राज परीसा खावा	राज परीसा खावा
	७	बार महँ आहा	बार महँ अहा
१३२	२२	दहु अँकोरा	देहु अँकारा
१३३	१	सरग लागा	सरग लगा
१३४	१२	बिधि देकै सुदिष्टि दे मोही,	बिधिना अस सुदिष्टि दे मोहीं,
	१३	दूजा जाइ न हिय महलँखा, जहँ देखों तहँ एकै दीखा।	दूजा जाइ नहि यमहँ लेखा, जहँ देखों तहँ एकै देखा।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३७	१	पहरु जागै	पहरू जागै
	७	सीद्ध हाइ सब काज	सिद्ध हाइ सब काज
१३८	८	एक बामन अरु माट पुनि	इक बामन अरु भाँट पुनि
	२०	सन चढि मागे नहिं काई	ऐसन चढि मागै नहिं कोई
१४१	२५	देखत रूप पदुमिनि नागिनि धामिनि जेउ उठि उठी लागिनि	देखत रूप पदुमिनी नागिन धामिनि जीउ उठि उठी लागिन
१६५	३	हिय हु लास बिहँसे अधार	हिय हुलास बिहँसे अधर
	४	होइ न ग्रैरे कोई	हाइ न ग्रैरै काइ
	६	बैठि एहि ठाऊँ	बैठि यहि ठाईं
	१६	भँवइ बास लागि बारी बारी	भवइ बास लगि बारी बारी
१६६	७	तिय तन तुछक किमि कै कहई	तिय तन तुच्छक किमि के सहई
१६९	५	मिरिग क छाता	मिरिग क छाला
१७०	२०	जागिहि काकी चित	जोगिहि काकी चित
१७१	२३	रह घट सँसा	रह घट स्वासा
१७२	६	नींद न अवत रैनि दिन	नींद न आवति रैनि दिन,
१७५	६	बिहरै सुनत बजर छाती,	बिहरै सुनत बजर की छाती
	८	जाइ निआरावा	जाइ नियरावा
१७६	१०	हुपुमी सरग	पुहुमी सरग
१७७	१२	निहचै नग जानि डारो कोई	निहचै नग जनि डारो कोई

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
	२२	देखत दुहूँ आनन्द भा,	देखत दुहूँ अनद भा,
१७८	१६	एकते निकसि ऐक महँ परा	इक तें निकसि एक महँ परा
१७९	२५	गा छिपाइ चटेक जनु कीन्हा	गा छिपाइ चेटक जनु कीन्हा
१८१	८	धुआँ तस उठा	धुअँ तस उठा
१८३	४	सागर जोहर साजै चाहा	सागर जोहर साजै चहा
	१९	जाही दीन जनमी	जाही दिन जनमी
१८४	१	सुपूरुष बाचासार	सुपुरुष बाचासार
	६	आगिल परै नहि हीना	आगिल परे न हीना
	८	पूँछि नीअर हाइ	पूँछि नियर होइ
१८५	१	दुर जानि एह पुहुमी करे,	दूर जानि यहि पुहुमी केरे
१८६	२	अहित जो आही	अहित जो अही
१८८	९	गहि जो भीखारी मारई	गहि जो भिखारी मारइ
	१९	ततें बरजे सकल जन	तातें बरजे सकल जन
१८८	२२	तासों जी उन लवहीं, अत जो साथी नाहीं।	तासों जीउ नलावहिं, अन्त जो साथी नाहिं।
१९०	२४	रुहिर सुखिगा गात	रुहिर सूखिगा गात
१९१	११	जुझि साज जो कुँअ रहि सूझा	जूझिसाज जो कुअँरहिं सूझा,
	१३	जुझि सों काजा	जूझिसों काजा
१९४	१०	चढि अटारि देखाहँ रनिवासा	चढि अँटारि देखहिं रनिवासा,
१९६	१३	रूपकथार सोन करढका,	रूपकथार सोन कर टका,
२००	९	फेनि पातरि मुहँ न समाई,	फेनि पातरी मुहँ न समाई,

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०१	१६	पुहुप ऊतारा	पुहुप उतारा
२०३	१७	बारी बारी दोऊ भनेउ	बारी बारी दोउ भनेउ
२०५	२३	उँच धुराहर	ऊँच धुराहर
२०६	१६	पिरम बेरि	परम बैरि
२१०	७	(४१) काम शास्त्र खण्ड	
२१२	११	काँध नवाए निसिदिन रँहई	काँध नवाएँ निसि दिन रहई,
२१८	२२	निअरही रतन न चीन्ह नैना	नियरहिँ रतन चीन्है नैना
२२७	२२	कौंलावति जहाँ दीन्ह ब्याही	कौंलावति जहँ दीन्ह बियाही
२३१	१५	पुनि मन कहिसो	पुनि मन कहिसि

नोट—इसके अतिरिक्त कहीं कहीं अनुस्वार (ं) का चन्द्रबिन्दु (ँ) और चन्द्रबिन्दु का अनुस्वार छप गया है जिन्हें पाठक को यथास्थान शुद्ध कर लेना चाहिये।

चित्रावली

—०—

(१) स्तुति खंड ।

मंगला चरण और ईश्वर-स्तुति ।

आदि बखानौं सोई चितेरा, यह जग चित्र कीन्ह जहि केरा ।
कीन्हसि चित्र पुरुष औ नारी, का जल पर अस सकै सँवारी ॥
कीन्हेसि जाति सूर ससि तारा का अस जाति सकै जग पारा ।
की हसि बचन बंद जहि सीखा। को अस चित्र पवन पर लीखा ॥
अस विचित्र लिखि जान साई वहि बिनु मेट सकै नहि काई ।
की हसि रंग स्याम औ सेता, राता पीत और जग जेता ॥
की हसि रूप बरन जहँ ताईं, आपु अबरन अरूप गुसाईं ।

अगिनि पवन रज पानि के, भाँति भाँति ब्योहार ।
आपु रहा सब माँहि मिलि, को निगरावै[1] पार ॥ १ ॥

सो करता सब माँह समाना परगट गुपुत जाइ नहि जाना ।
गुपुत कहउँ तो गुपुत न होई, परगट कहउँ न परगट सोई ॥
दूर कहउँ तो दूर न देखा, नियरे कहउँ तो जाइ न देखा ।
सब वहि भीतर वह सब माहाँ, सबै आपु दूसर[2] कोउ नाहीं ॥
जो सब आपु रहा जग पूरी, तासों कहा नेर औ दूरी ।
दूसर जगत नामु जिन पावा, जेसे सहरी[3] उदधि कहावा ॥
ज्ञान नैन जो देखै काई बारिध बिना आन नहि होई ।

१—बिलगावे अलग करे । २—एकमेवाद्वितीय ब्रह्म । मि सब खल्विद ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन । ३—शफरी । एक प्रकार की मछली ।

जहवा सिन्धु अपार अति बिन तट बिनु परिमान।
सकल सृष्टि तेहिमा गुपुत, बालू कनक समान ॥ २ ॥

करता जिन जग रूप सवारा, तेहिक रूप का बरनइ पारा ?।
आपु अमूरति मुरति उपाई[1] मूरति माँती[2] तहाँ समाइ ॥
मन क चरन पगु जहि ठाइँ बपुरी जीभ चलइ कहँ ताईं।
मन की डीठ नैन जहँ मूँदै, सा मगु जीभ चरन क्या खूँदै[3] ॥
परगट गुपुत बिधाता सोई दूसर ओर जगत नहि कोई।
हे सब ठाउँ नाहिँ कोइ ठाईं मुनिगन लखहिँ कि अलखगु साईं ॥
सृष्टि अनेक लखे नहि पाई, सिरजनहार लखा केहि जाई ॥

अलख अमूरत सोइ बिधि लखे न मूरति काय।
सो सब कीन्ह जो चाहा, कीन्ह चहे सो हाय ॥ ३ ॥

कीन्हसि जो अति गिरवर गरुवा, चहइ तो करे तृणहु ते हरुवा[4]।
औ पुनि तिनहि बज्र करि धरई, मुनिवर लागहिँ ता नहि टरई ॥
कीन्हसि बारिध अगम अपारा, चहइ तो करे जस लघु तारा[5]।
औ तारहि का समुँद बनाव मेरु बबूला जेस तराव ॥
की हसि अगिन बीच अति ज्वाला चहे तो करे हिमचल पाला।
औ पानी महँ अगिन सँचारै, पाहन मलि जेस तृन जारै ॥
भजइ गहइ बिधाता सोई, दूसर ओर जगत नहिँ कोई।

सोई करता रमि रहा रोम रोम सब माहिँ।
तिन सब कीन्ह सिरिष्ट यह गाहक की हा नाहिँ ॥ ४ ॥

सो करता जेहि काहु न कीन्हा, सब कहँ जिवन जन्म जइ दीन्हा।
दीन्हसि काया जहि जग पोषा दीन्हसि माया जहि न सतोषा ॥

१—उपजाया, उत्पन्न किया। मि पहिल आपन सरि बनाए। ता पीछे सब रोग उपाइ। २—मत्त, भ्रम म पडा हुई। ३—स रन्दन। कूद, फाद। ४—पवत, पहाड। ५—हलका। ६—ताल। ७—सृष्टि। ८—स अवगाहक = जानने वाला ज्ञाता।

दीहेसि अन्न जिये जहि खाई, दीहेसि ज्ञान रहइ लौ[1] लाई।
दीहेसि हिया गुनै जो गुननाँ[2] दीहेसि सरवन सुनै जो सुननाँ[4] ॥
जहवाँ लागि जीव जग माहाँ भुगुति[5] देत कोऊ बिसरत नाहीं।
पहिले भुगुत दई जो चाहा, पीछे जीव आनि घट माँहा ॥
पहिले आषध मूरि बनाए, ता पीछे सब राग उपाए।

मात रहे जग जानि के आस होइ भय त्यागि।
बिछुरन राग दिहसि सबन्ह काहू दरसन लागि ॥ ५ ॥

ए गुसाईं ते अस बिधि अहई अस्तुति तोर तोहिं पहँ कहऊ।
अस्तुति बारिधि अगम अपारा, काउ न जगत महँ पौरन हारा ॥
साधुन बुद्धि तीर लगि जाई, काँपइ जाँघ देखि गहिराई।
जब ते बिधि यह सृष्टि उपाई, आ जब ताईं रहहि बनाई ॥
जहँ लहि सुर नर मुनि गन अहहीं जहँ लग लोक रसातल अहहीं।
जहँ लग बनसपती[6] तर पाना, रोम राम सब जीव क दाना ॥
रसना होइ होइ अस्तुति सारहिं साषक[7] एक कहे नहि पारहिं।

जेहि ते बडपन नहि गुनै, तऊ बडापन तोहिं।
जेहि ते लघु नहि ओर कछु, सो लघु छाजै मोहिं ॥ ६ ॥

मोरे मुख कछु कही न जाई, देखहु रसना करी हँसाई।
रचक[11] जीभ रही मुख परी, बिधि अस्तुति कारन इकसरी ॥
अस्तुतिमान[12] पाय अस कूदी बुद्धि आइ पहिले मुख मूँदी।
एहि मुख ओर कज तर कहा, देवतन्ह जिनहि लाइ हँसि कहा ॥

१—लव, लव लाना = ध्यान लगाना, विचारना। २—गुणन गुनने का विषय = ज्ञान विचार, निश्चय। ३—श्रवण, कान। ४—सुनन का विषय, शब्द। ५—भुक्ति = भोजन अन्न। ६—मूल जडी। ७—प्रमाण। ८—कहा कहा कहराइ पाठ है कहराइ = (ग्रह कहर = भयानक) का भाववाचक है = भयानकपन। —बनस्पति वृक्ष लता गुल्मादि उद्भिज। १ —स इषाक साक, तिनुका। ११—एक रच मात्र = छाया सा। १२—स्तूयमान।

रूप अबरन[1] को बरनै पारा रहै मौन होइ इहै बिचारा।
इहवाँ बोलि सकइ नहिँ कोई, बिनती करउ होइ सो हाई॥
बिनती से जो होइ मयारा[2], बेगि करै वह सागर पारा।

गन-गँधरब मुनि देव नर, महि पाताल अकास।
वहिक आस सब जग करै, वह न काहु के आस॥ ७॥

कहिन कि जिन आपहि पहिचाना, तिन कछु मरम तोर है जाना।
जा सब भो रम रम[3] जग माहा मोहिँ न माह दखावसि काहा॥
जो माहिँ सो बिन माह छिपाई, कहि कारण किन्ह मोह उपाई।
दिया नैन पै दिया न जोती, बाज पानि कहि कारन माती॥
इन की जोति जोत जहि होई, तेहिक भरोस करै सब कोई।
कबहूँ सूर करै उजियारा, कबहुँ दीप कबहूँ मसियारा॥
बिधिना दियो सो लोचन माहीँ, अच्छे पहिचान्यो नहि तोहीँ।

कहेँ कहो न सको मैं निकट रहहुँ नित ताहिँ।
केहि अभाग कहि अधरम, नहिँ दरसावसि मोहिँ॥ ८॥

कब लगि नट ज्यो आपु छिपावसि, इह जग पुतरी काठ नचावसि।
जग भूला यहि काठ के नाँचा जानि न जाय झूँठ अरु साँचा॥
साँचा छिपा झूँठ क पाछ, झूँठहि साँच करहि का काज।
साँचा बहुरि तोर कल दोरा पट उघारि नट जगत निहारा॥
मुख दरसाव परम उजियारा, जाहिँ बिलाइ तिमिर अँधारा।
एक जोत परगट सब ठाऊँ, रहइ न कतहूँ दूसर नाऊँ॥
तू सब जानइ बड औ छोटा, कौन खरा कचन का खोटा।

पट उघारु ससार जिय ससय रहा समाय।
जब लगि सूझ न लोचनहिँ, अधा नहि पतियाय[4]॥ ९॥

१—अवर्णनीय। २—प्रेम करनेवाला। ३—रम क। ४—मशाल।
५—अधा जब पतियाय जब आँखो देखइ।

महम्मद की प्रशंसा

पुरुष एक जिन्ह जग अवतारा सबन्ह सरीर सार संसारा।
आपन अस कीन्ह दुइ ठाऊँ एक क धरा मुहम्मद नाऊँ॥
पहिले उठा प्रेम बिधि हिये, उपजी जोति प्रेम की दिये।
वही जोति पुनि किरिन पसारी, किरिन किरिन सब सृष्टि सँवारी॥
जोतिक नाउँ मुहम्मद राखा, सुनत सरोष कहा अमलाखा[1]।
वह सूरज यह किरन सँवाई[2], वह दधि[3] यह सब लहर उपाई॥
जो न करत वह ओकर चाऊ हात न जग महँ एक उपाऊ।
लहर बिना दधि सोह नहि किरन बिना दुति सूर।
साजा कारन एक जग जासों प्रेम अँकूर॥ १०॥
गुपुत उपाया परगट आना किया जगत वह एक पराना।
जो परान संसारक माहाँ कस न भई नहि सँग परछाहीं[4]॥
सग्या करज चाँद अनियारा भा बिखड़[5] जानै संसारा।
जो कपटी भोजन बिष बिसा बोले उठा कर माँह गिरासा॥
एत पर जा चो हँसि नाहीं[6] ज म जँबिर या गा जग माहाँ।
जो भर जनम करे बिधि जापा बिनु वाहि नाम हाहि सब लापा[7]॥
एक बार जो मन बिच कहई नाम महम्मद बिधि निधि लहई।
करनी खोटी मोर सब, का कहि बिनवौं ताहिं।
अपनी उम्मति जानि कै लै निरबाहब मोहिं॥ ११॥

१—अमलाक = फरिश्ते। २—संवारा। ३—उदधि = समुद्र

४—सृष्टि। मुसलमानों का इदीस में लिखा है कि 'यदि मुहम्मद न होते तो न घर आकाश और पृथ्वी न रचता मिसाखा।

اگر و نبودی محمد زماں - و ندا ی کردم زمیں آسماں - لولاک لما خلقت الافلاک

५—मुहम्मद साहेब के परछाहीं नहीं था। ६—दाढ़ी, महम्मद साहेब ने चाँद के दो टुकड़े किये थे। ७—एक बार मुहम्मद साहेब को विष दिया गया था तब हाथ में ग्रास बोल उठा था। ८—मृषा = व्यर्थ। ९—प्रलाप। १ —अनुयायी।

महम्मद के चार मित्रों की प्रशंसा

चार मीत तेहि संग सयान सूर समान चहूँ खंड जान।
चारा करहि एक की चिंता एक मते वे चारों मिता॥
पहिले अबूबकर सतवादी, सत्त जान जो भो अनवादी।
दूजे उमर न्याउ प्रतिपारा, जे बिध मारन सुतहि सँवारा॥
तीज उसमाँ पंडित ज्ञानी, जे करि ज्ञान लखा विधि बानी।
चाथ अली सिंह रन सूरा, दान खड्ग जे तिहुँ जग पूरा॥
परम बचन जो महमद पावा उन चारिहुँ कहँ आनि सुनावा।
इन के पंथ जो काइ चलइ जनम न भूल पार।
निर्मल चारिउ दीप महँ, सात दीप उजियार॥ १२॥

राजा की प्रशंसा।

नूरुद्दीन महीपति भारी, जाकर आन मही मह सारी।
चारिउ खूँट नवाई खांडे, गजपति रहा न काउ बिनु डांड॥
सात दीप पठवई सेवकाई, फिरी जलधर पार दोहाई।
आवहि अरबी ओर इराकी, रस मिसिरी कस्तुरी खतां की॥
आवहि चली चीन की चीनी, सहसन माह एक इक बीनी।
आवहि चली पदूमिनी जते, सहसन माँह एक इक ते ते॥
राति दिवस आ साझ सकारा भरा पेसकस दरिय बारा।
जह लगि पुहुमि फिरइ सब कोई, काहुक लइ काहु कह दइ॥
सात खंड बिनवइ सेवकाई, फिरी चलइ हर ओर दुहाई।
सूरज बाज इन्द्रगज ससि मृग छाडइ इन्दु।
मौंह चढाव जहि घरी, जहांगीर बलवन्दु॥ १३॥
बेरी रहइ न कोउ पग रोपी, जेहि पर चढे तुरगम कोपी।
चढइ तुरग होइ अनुरागी, के अहेर कै हेकर[1] लागी॥

१—हेकरी = लड़ाई।

जो बर कइ बैरी पग चापै, सबन डरैं पताल कुल कांपे।
जहां तहां परगट सब देसा, बाजि चरन चीन्हें अहि सेसा॥
हेठ जाइ बलि बाजुकि चापा ऊपर डरि सुरपति पुनि कांपा।
सब जग जीति खेदु हिय इंदू करइ रैन दिन केलि अनंदू॥
सदा रहइ बिधिना जगमाहीं, जाग माँ ये यह बिधि परछाहीं।

कहीं न जग पति याद कोउ, सुनि अचरज ससार।
होहिं छहो रितु एकठौं जहाँगीर दरबार ॥ १४ ॥

अब सुनु बरनि सुनाओं तोहीं, जैसे कोऊ न दुलखइ[1] मोहीं।
तपइ साह जस रबि उजियारा, आपम होइ रहा ससारा॥
बहुरि उदय जस भानु करई पल महँ उदय अस्त सब लेई।
भानु सोह बरु चख ठहराइ, सनुख साह निहारि न जाई॥
पुनि साहे राजपती सोहाई साह बार पावस रितु आइ।
मघ बरन रिसि भरे अचता, अकुस बीजु दन्त बक सेता॥
गरज सबद बरषा मद बाढा मोथ सीस [illegible] पुनि काढा।

घटा घूघुर मेघ पिक चहुँ दिसि होइ झनकार।
सभोगिनि कहँ अति रहस, बिरहिन हिये बिकार ॥ १५ ॥

पुनि नव सात सजी बरनारी, लिए सरद रितु आनि जाहारी।
ससि आनन मुक्ताहल तारे खजन नैन सेत औ कारे।
बेसर मुकुता सोहिल[2] तारा, सुभग चरन पकज रतनारा॥
जा गढपती बाध बर आने गढ भाने औ तोरे माने।
हिमि ऋतु तिन्ह के उर भरि रहा, हिये करेज कँपावत महा॥
साजि सिसिर रितु तिन्ह की नारी, हिये जाड तन चीर सवारी।
चितवहिं सोह साह की ओरी, दुहुँ हसि मिलहि कि लावहिं डोरी[3] ॥

१—झूठा प्रभाव। २—सुहल (سهيل) = एक अत्यन्त प्रकाशमान तारा।
३—डोली।

बरन बरन उमराव तन चोवा चन्दन चारु।
फूले मनहुँ बसन्त रितु मँहकि रहा दरबारु ॥ १ ॥

पुनि कलि अदल उमर सम कीन्हा धन सा पुरुष जो यह जस लीन्हा।
अस भा अदल मते हरि आनी छाना नवा पुराना पानी
पुहुमी परै न पाव काँटा हस्ती चाँपि सकै नहिँ चाँटा
गाय सिंह गवनहिँ एक गली बल भा अबर अबर भा बली
सहस खाट कंचन के साज पाट डोर तेहि बार बिराज
दुखिया छुअत हाथ झनकारा उठे कापि सकल खरभारा
पातसाह सुनि निकट बुलाव, दरसन पाय सीस पुनि पाव

जहाँगीर क अदल पर पूरि रहा जग चन।
सरवन[२] सुना नासरवाँ, साह सा देखा नन ॥ १७ ॥

पुनि नवरोज सराहौं काहा, धन सा पुरुष न पाता लाहा[३]
दलजादल[४] जहँ अम्बर छावा ससि सूरज तेहि माँह बनावा।
पहिले बारह रासि बनाए ता सब नखत तहाँ लिखि लाए।
ससि बुध सुक्र बृहस्पति साजा आपन आपन ऊँच बिराजा
भौम सनाचर दिनकर सगा तिन्ह कर तेज कीन्ह रवि भगा।
नौ अबर लखि रहस निधाना मनहि न जाना सरग पुराना।
दखि अपूरब भाँति सँवारी, निसि दिन फिरै लागि बालहारी ॥

कहा कहा सो गा बिकल इन्द्र हाइ पति जाहि।
कहिस कि वह जो इन्द्र है इहे इन्द्र सर आहि ॥ १८ ॥

ऊपर सब सँजोग सुभ साजा तेहि पर हाटक पार बिराजा।
लागे हीरा रतन अलखँ चाँपे दृष्टि सोह जहि दखँ ॥
मोति अनेक लाग जस ओला एक इक देस एक कर माला।

१—न्याय। २—श्रवण=कान। ३—लाभ। ४—शाह मिसना। चंदना
५—मुसलमानों का विश्वास है कि तारागण नहीं घूमते बल्कि आकाश या स्वर्ग ही घूमता है

तेहि पर बैठ छत्रपति गाजा, एक छत्र चहुँ खंड बिराजा ॥
छत्रिन्ह आइ छत्र सो पूजा, और छत्र जग रहा न दूजा।
कलपबिरिछ भा यह जग माहा, कोस सहस दस पसरी छाँहीं ॥
जग निचिंत सोवै जेहि छाहीं, चिउँटी काटि जगावै नाहीं।

विधिना सौं जाँचै जगत, पुहमी धरे लिलाट।
जौलहु धरती सरग दोउ, रहै छात औ पाट ॥ १९ ॥

तहाँ बैठि पुहुमी पति भारी देइ दान कर बार उघारी।
एकहि बेर एक कहँ दई, दूसरि बेरि न काऊ लेई ॥
पिरथी बली हात जो आजू, माँगत देखि दान कर साजू।
बादि मरजिआ समुँद धसाई बादिहि लोगि रतनगिरि जाई ॥
बादि सुमेरु लागि जग धावा, कस न बार जहँगीर के आवा।
देइ रतन जत मनसा होइ, सोन रूप कह बरज न कोई ॥
महूँ सुना कि अनेक भिखारी, कीन्हे साह नेवाजि[1] हजारी।

आयौं सोई बार सुनि, लिए गरीबी साज।
कहा जा माँगु गरीब है साह गरीब नेवाज ॥ २० ॥

शाह निजाम की प्रशंसा।

शाह निजाम पीर सिधदाता, दिष्ट तेज जिमि रवि परभाता।
नारनालि भीतर अस्थाना, उदै अस्त लइ सब कोइ जाना ॥
जा कहँ एक किरन सम जोवा जनम पाइ ते तिमि जिअ खोवा।
जौ खिन नैन मया कै खोला, पाहन मानिक होइ अमोला ॥
जा कहँ मया दिष्टि भरि हेरा, ते दूनहु जुग सौं मुह फेरा।
जासौं ज्ञान वचन अनुसारा[2], ता कहँ वचन सिद्धि देनिहारा ॥
भौसागर मँह है कन्हारा[3] दुखी सुखी सब पार उतारा।

१—नेवाज कर = कृपा कर। दान देकर। २—चलाया, कहा।
३—निकालने वाला। मरजिया।

गहि भुज कीन्हे पार जे बिनु साहस बिनु दाम।
कश्ती[1] सकल जहान के चस्ती साह निजाम ॥ २१ ॥

बाबा हाजी की प्रशंसा।

बाबा हाजी पीर अपारा सिद्ध देत जेहि लाग न बारा।
न मुख देखा ते सुख पावा परसि पाय तन पाप गँवावा ॥
हिंदू तुरक सबै कोइ आना निसि दिन जाँचहिं[2] इछा दाना।
हाछा देत न लावहि धोखा जहि जस तोष पवै तस पोषा ॥
जौ कोउ जिय निहच करि आवा श्रवन लागि तहि ज्ञान चेतावा।
प्रेम दीप तेहि देई जगाई, वहि उजियार चला सो जाई ॥
जासों वचन सिद्ध व कहा, ते सब तजि बिधि मारग गहा।

मोहि मया कै एक दिन, श्रवन लाग गहि मावा।
गुरमुख बचन सुनाय कै कलि महँ कीन्ह सनाथ ॥ २२ ॥

यह मन मथा मथा जग सारा, जो इह मथहि सो नर बरियारा।
जौ लहु गुरू न मनहि सिखावा बातनि कछु हाथ नहिं आवा ॥
मही माँहि नौ निधि छपाना बिनु गुरु काहु हाथ न आना।
करम बात अब कहा सुनु तोहा जस कछु गुरू सिखावा मोहा ॥
ज्ञान डोरि करु हिया मथानी साँस लेत डोरी लपटानी।
उलटी दृष्टि रहै टुक लाई सजग रहै जहि नतु न जाई ॥
तो लहु मथ बैठि दे जीऊ[5], निसरे छाछ मही तें घीऊ।

निजु सो मथनी एक दिन मथत मथत गा फूटि।
तत्वमसी पुनि तत्व सों, जाय नरक सब छूटि ॥ २३ ॥

१—नौका। २—मांगते हैं। याचना करते हैं। ३—इच्छा। आकांक्षा। ४—मनोरथ। ५—मन = त्याग। ६—जी लगा कर। ध्यान तक।
७—तत्वमसि = वह तू है, यह वेदान्त का महा-वाक्य है।

गाजीपुर वर्णन ।

गाजीपुर उत्तम अस्थाना देवस्थान आदि जग जाना ।
गंगा मिलि जमुना तहँ आई बीच मिली गोमती सुहाई ॥
तिरधारा उत्तम तट चीन्हा द्वापर तह देवतन तप कीन्हा ।
पुनि कलिजुग महँ बसगित[1] भई जानहु अमरपुरी बसि गई ॥
ऊपर कोट हठ सुरसरी देखत पाप निगा जहँ हरी ।
बसहि लोग बुध बहु विज्ञानी सैयद सेख बसैं गुरु ज्ञानी ॥
ज्ञान छाडि मुख आन न भाषा सुने सँतोष देखि अभिलाषा ।
ज्ञान ध्यान कहँ देवता, सुमर समै पुनि सूर ।
तप मह मौन सभा चतुर अरि मुख सिंह[2] सनूर[3] ॥ २४ ॥
पुनि तहँ लोग बसैं सुखवासी घर घर देखि इँद्रासन भासी ।
मोगल पठान बसहिं पँडवाहे, रन अमट जिन्ह साह सराहे ॥
पुनि रजपूत बसहि रन रूरे, और गुनी जन सब गुन पूरे ।
भाट कलावत बसैं सुजाना, जिन्ह पिंगल संगीत बखाना ॥
गुन चरचा बिनु आन न काजा जा देखो अपने घर राजा ।
जहँ तहँ नाच कूद पुनि हाई, ठुमुकत बाट चलैं सब काई ॥
जिन साजे जहि ठाँव अवासा, सोइ पुहुमी नाहीं कबिलासा[4] ।
ताजी तुरकी चढि चलहि जानहु उमरा मार ।
सब सुखबास नगर महँ परसन बासी तीर ॥ २५ ॥
हिंदू तुरक सराहों कहा, चारिहु बरन नगर भरि रहा ।
ब्राह्मन सब पण्डित औ ज्ञानी चारों वेद बात जिन्ह जानी ॥
हाम जाप अस्नान बिकाला[5], तजहि न एकौ तिनहुँ कहाला ।
खत्री बैस सबे पुनि धनी, नैन न फेरहि देखे अनी ॥
सुद्रन्ह घर घर बनिज पसारा, निस दिन करहिं धरम ब्यवहारा ।

१—आबादी । २—शादूल । ३—नग की एक जाति ।
४—कैलास = स्वर्ग । ५—द्विकाल = दोनों काल—प्रात सांय ।

विविधि बखान ज्ञान कर करहीं , तहनि बैठि सब रस उच्चरहीं ॥
केलि कालाहल चहुँ दिसि हाई दुख की बात न जाने कोई ।
घर घर नगर बधावरा, गलियन सुगँध बसाइ ।
एक दिस बाजत आव एक दिस बाजत जाइ ॥ २६ ॥

अपने पाँच भाइयों का वर्णन ।

कबि उसमान बसे तेहि गाऊँ, सेख हुसेन तनै जग नाऊँ ।
पाँचा भाइ पाचो बुधि हीये, एक इक भाँति सो पाँचो लीये ॥
सेख अजीज पढै लिखि जाना, सागर सील ऊँच कर दाना[1] ।
मानुलुह विधि मारग गहा, जोग साधि जो मोन होइ रहा ॥
सेख फैजुलुह पीर[2] अपारा गनै न काहु गहे हथियारा ।
सेख हसन गापन भल आहा, गुन विद्या कहँ गुनी सराहा ॥
शील उदधि पुनि सबै सुजाना जो कोउ मिला सोई पै जाना ॥
सुने नाउ उतसाह चित मिले हाइ जिय साँति ।
पाँच भाइ जनु पाँच मिलें, अपनी अपनी भाँति ॥ २७ ॥
आदि हुता विधि माथे लिखा, अच्छर चारि पढे हम सिखा ।
देखत जगत चला सब जाई, एक बचन पै अमर रहाई ।
बचन समान सुधा जग नाहीं जेहि पाए कवि अमर रहाहीं ॥
आ जा यह अमिरित साँ पागे, सोऊ अमर जग भए सभागे ।
माहूँ चाउ उठा पुनि हीए हाउँ अमर यह अमिरित पीए ॥
आपु पिये अब तिनहुँ पिआवै, जिन्हकी कथा सुरस रस गावे ।
भकु कोउ सूर पुरुष ससारा सँवरि बचन दै मोहिं निस्तारा ॥
पढि गुनि देखा मान कवि, बैठि खोइ ससार ।
और जगत सब थोथरा एक बचन पै सार ॥ २८ ॥

रूप, प्रेम और विरह का वर्णन ।

यह कलि दुर्मावलि[4] गुन भली, अनबन[5] भाँति बचन फल फली ।

१—फर बुद्धिमान । २—गुरु । ३—मिया = पण्डित । ४—दुमावलि = बाग । ५—अनेक = विविधि

कोऊ तीत कोऊ भा मीठा कोऊ कसाउ कोऊ जनु सीठा ॥
ग्यान रसन[1] सौं सब रस चाखा अत पाइ मन भा अभिलाषा ।
जेहि रस पेम सुफर भल डीठा गादर काँच सुपक भा मीठा ॥
आन मिठास जो नाम कहाई, चाखत पूज कि प्रेम मिठाई ।
आदि प्रेम विधिनै उपराजा प्रमहि लागि जगत सब साजा ॥
आपन रूप दखि सुख पावा अपने हीए प्रेम उपजावा ।

प्रेम किरन ससि रूप जेउँ, पानि प्रेम जिमि हेम ।
एहि विधि जहँ तहँ जानियहु जहाँ रूप तहँ प्रेम ॥ २९ ॥

जहाँ रूप जग बनिज पसारा आइ प्रेम तहँ कीय व्योहारा ।
जो विधि रूप मया करि दी ही, प्रेम चकोर नैन तिन्ह कीन्ही ॥
दीपक जोति प्रेम उजियारा प्रेम पतग आनि तहँ जारा ।
रूप वास भा केतकि केवा[2] प्रेम भौंर भो जिव[3] परछेवा ॥
मृगाबला मुख रूप बसेरा राजकुवर भयो प्रेम अहेरा ।
सिघल पदुमावति भो रूपा प्रेम कियो है चितउर भूपा ॥
मधुमालति होइ रूप देखावा, प्रेम मनोहर होइ तहँ आवा ।

रूप मुकुर जहँ विधि सरज्यो[4] निरमल एहि ससार ।
प्रेम सूर परतर कियो बिरह अगिनि उदगार ॥ ३० ॥

रूप प्रेम मिलि जो सुख पावा दूनहुँ मिलि बिरहा उपजावा ।
जहा प्रेम तहँ बिरहा जानहु, बिरह बान जनि लघु करि मानहु ॥
जेहि तन प्रेम आगि सुलगाई, बिरह पान होइ दे सुलगाई ।
प्रेम अँकुर जहँ सिर काढा बिरह नीर सौं दिन दिन बाढा ॥
प्रेम दाप जहँ जोति देखाई बिरह देइ छिन छिन उसकाई ।
प्रेम कुमुर जहँ बदन उघारा, बिरह आई तहँ मजन सारा ॥
एहि बिधि प्रेम बिरह एक सगा, एकमते[5] भौ मानहुँ रगा ।

१—रसना = नाम । २—कला । ३—जीव देने वाला ।
४—रचा सँवारा । ५—सम्मिलित ।

रूप प्रेम बिरहा जगत मूल सृष्टि के थम्भ ।
हों तीनहु क भेद कहु कथा करौ आरम्भ ॥ ३१ ॥

प्रस्तावना ।

कथा एक म हिए उपाई कहत माठ भौ सुनत सोहाई ।
कहां बनाय जैस मोहि सूझा जहि जस सूझ सो तेसे बूझा ॥
बालक सुनत कान रस पावा तरुनहु क तन काम बढ़ावा ।
बिरिध सुनै मन होई गियाना यह ससार धधा जाना ॥
जोगी सुने जोग पँथ पावा भोगी कहँ सुख भोग बढ़ावा ।
इच्छा तरु एक आह सोहावा , जहि जस इच्छा तेस फल पावा ॥
मनुल मुकुर विमल कर लेखा जो देखै सो आपुहि देखा ।
मान रात ससार की कह सुने सब कान ।
लागै माठी सोइ पै जाई सोहाती आन ॥ ३२ ॥

सन सहस्र बाइस जब अह तब हम बचन चारि एक कहे ।
कहत करेज लोहू भा पानी सोई जान पीर जिन्ह जानी ॥
एक एक बचन माति जनु पोवा , कोऊ हँसा कोऊ सुनि रोवा ।
बहुतन्ह सुनि के दुख मन लावा , के कवि कहि जग दोष नसावा ॥
मोरा बुद्धि जहाँ लहु अही जहँ लहु सुझि कथा म कही ।
हर हर बचन कहा अति रूखा दूषन कहँ सेराय न दूखा ॥
जाकी बुद्धि होइ अधिकाई आन कथा एक कह बनाई ।
कवितन्ह आगे दीन होइ बिनति करौं गहि पाय ।
अच्छर टूट सँवारहु दोषन लिपहु छपाय ॥ ३३ ॥
यह कलि स्याम रैन जनु आई , सोई पुरुष जु जागि बिहाई[3] ।
जागतहूँ पुनि आह विचारा , बहुत भाँति जागे ससारा ॥
जागै राउ राजसुख करई , सेवक जगि सेवा चित धरई ।
जागै चोर जो परधन चहा , बिरही जगि बिरहानल दहा ॥

१—व्यवहार । खल । २—दोष । ३—पहचान किया ।

जागै जुवारी खेलत जूआ, काहु एक काहू मन दूआ।
जागहिं सिद्ध ध्यान धरि हीए, जागहिं दुखी दु खमन दीए॥
जागहिं पंडित पढत हरिबानी जागहिं बालक कहँ कहानी।
मँ अजान जग बाल सम आन न कछु सोहाय।
कहौं कहानी प्रम की जहि निसि जाय बिहाय॥३४॥

---

(२) कथा खंड।

आदि नगर नैपाल अनूपा, तहाँ राउ धरनीधर भूपा।
धन सो देश धन नगर सोहावा धन राजा जिन आनि बसावा॥
अति बलवंड न जाई बखाना, भानु समान चहूँ खंड जाना।
मंडुकवंद सब सेवा करहीं सेवा माँझ रैनि दिन हरहीं[1]॥
कटक असूझ[2] अनेक अपारा आव न लेखे सहस हजारा।
देस बहुत कछु अहे न थोरा गनत न आव हस्ति औ घोरा॥
आइ समुंद मह खडग पखारा, अरि न रहा जो नगर सँभारा।
अनघन हम जो लच्छमा सैन अनक अपार।
एक दीप सतति बिना, राजभवन अँधियार॥३॥
सुन चिंता राजा चित माहीं, राज काज मन भावै नाहीं।
दिन एक सबै बुलायो नेगी अज्ञा राज आय चल बेगी॥
सभा जोरि के मंत्र बइठा कहस न मोहिं कछु अस्थिर डीठा।
यह जग जस पानी कर धावा[4], जा कछु गा सो बहुरि न आवा।
काल्ह हिं यह तन होइहै छारा, काऊ नाउँ नहिं लेवनहारा॥
बीती रैनि भोर बिगसाना, कागारार आइ नियराना।
को गहि लकुटी पथ देखाइहि, को पिंडा दै पाछु पुराइहि॥
राज पाट धन देस सुख, सुत बिनु कौने काज।
अब सब लेहु राज तुम, लेतु अहौं शिवसाज[5]॥३६॥

१—प्रतात हू। २—जिसका आर छार दख न पड। ३—अनघ।
४—बहाव। ५—योग।

मन्त्रिन कहा सुनहु मति राजा राज पाट तुमही कहँ छाजा।
कौन सुनै अस का मति देई हस्ति क भार क गदहा लेई॥
जौ तुम्ह काहि लेब सिवसाजू आजुहि हम छाडब यह राजू।
राज करहु प्रतिपालहु परजा, सेवत साईं कौन तुम बरजा॥
तन सों भोग जाग मन सेती, बात इहै ओ बातें जती।
जौ यह दरब चहौ तुम्ह छाडा कोन सुफल जौ छाडि अगाडा॥
दिन सब करहु राज सुख भोगू रैनि गुपुत साधहु तुम्ह जोगू।

जेहि निमित्त धन दीजिये ओ कीन्ही सब हानि।
सो ईच्छा विधि आपु निजु, बेगि पुराये आनि॥ ३७॥

पूत निमित्त धरम अब कीजै धरमसाल कै भोजन दीजै।
दिय[1] बिना कछु काहु न पावा दिया आनि सब इच्छ पुरावा॥
दिया धरे तम करे न जोरा दिया हुते घर मुसै न चोरा।
एहि जग माँह सार यह दीआ जे न दिया ते अमिरथा जीआ॥
दिया हुते निसि आगे सूझा, दिया हुते पर आपन बूझा।
दिया हुते घर पाव सोभा, आइ पतंग दीप पर लोभा॥
दीया बाजु मग जाइ न जोवा दिया हाइ ता पाये खोवा॥

यह कलि स्याम बिभावरी बिकट पंथग्रह[2] साथ।
निजु भूले बनमाह सो, जिन न दिया कछु हाथ॥ ३८॥

सुनि कै राजा हिये सँभारा, लाग देइ तब खोलि भँडारा।
जो ईच्छा कै मन कोइ आवा दीन्ह बोलाइ बार नहिं लावा॥
ओ जिन अह देश क दुखी, दीन्ह दान सब कीन्हें सुखी।
भूखा भोजन कापड नाँगा, निसि बासर पावै बिनु माँगा॥
धरमसाल पुनि बार सवाँरा, जहाँ न कोऊ बरजन हारा।
पथी आइ तहाँ सुख पावहिं भोजन मिलि निसि सोइ गँवावहिं॥
जती सन्यासी जो कोउ आवे, सुनत नाउँ राजा उठि धावे।

१—उर्दू की प्रति मे यह नहीं है। २—बटमार।

अपने[1] नगर बुलाइ के आन पखारे पाय।
कर जोरे बिनती करै, आग्या सीस चढ़ाय॥ ३९॥

एहि विधि बरष एक जो बीता रहा न काऊ जग महँ रीता।
कीरति दान चहूँ खँड गई पार समुद के चरचा भई॥
दान निसान चहूँ खँड बाजा, करन कुबेरु बेनु बलि लाजा।
पुनि कैलास गई यह चाहा, बली बात जहँ सकर आहा॥
गिरजै कहा सुनहु हो देवा, के नर कीन्ह ऐस जग सेवा।
धरनीधर नृप यहि ससारा सुत निमित्त सब दीन्ह भँडारा॥
जौ अस करै दान कर साजू चहै तो लेइ इंद्र कर राजू।
चलहु जाय तेहि देखिय कइस सत्त कस धर्म।
सत्त होइ सुत दीजिये नहिं तो खोइए मर्म॥ ४०॥

---

(३) महादेव खंड।

करि दोऊ तपसी कर भेसू, चले भवानी और महेसू।
धरमसाल धरनी धर केरा, सध्या आइ कीन्ह तहँ फेरा॥
सुना राउ आये दुइ तपा[2] धाय आय बहु अस्तुति जपा।
लै जल पहिले पाँव पखारा दोउ कर जोरि बिनति औधारा॥
जो इछा सो अज्ञा होई, पुरवनहार बिधाता सोई।
पूरब पुन्य आजु फल पावा जेहि तुम्हार बिधि दरस देखावा॥
यह सब ताकर जो जग राजा हौं सेवक सेवा कहँ छाजा।
अन्न धन्न मे सकल निधि बिधि मोहि दीन्ह अनेग।
जो इछा सो माँगिये, आनि पुरावौं बेग॥ ४१॥

तपन्ह कहा तेँ धर्म सँगाता[3] सत हरिचन्द दान बलि जीता।
तोहि सरि पुहुमि न राजा दूजा, हम नित करहिँ सम्भु की पूजा॥

१—अपने कर लोटा लिये आप पखारे पाय—पाठा। २—तपस्वी।
३—स्वीकार किया।

महादेव हम परसन आहा पुरवत बगि इछ जा चाहा।
सेवा सुकृत दव रिसाना पूजा पाती कबहुँ न माना॥
बहुत बिलाप कीन्ह तहि आगे सपने आइ कहा रिस त्यागे।
महि मंडल धरनीधर राजा, धर्म रूप बिधि न उपराजा॥
ताकर माथ चढावहु आनी तब परसन भा इस भवानी।

आन हिच्छ[1] नाह दूसरी, देहु कलपि करि सीस।
हम परसन परसाद तुव हाहँ भवानी ईस॥ ४२॥

राजा सुनत अचक भै रहा सोच गहा कछु उतर न कहा।
पुनि मन महँ अस कीन्ह गयानूँ जोगी जन मागै जिउ दानू॥
सनति आस जाय जिउ दीय धर्म नसाइ लाभ पुनि कीय।
सुत को जान पाइ किन पाइ, जानि बूझि क सत्य नसाइ॥
सत्य समान पूत जग नाहा, सत सों रहै नाउँ जग माहाँ।
कोखि—पूत[2] एक देस बखाना सत्य पूत चारा खड जाना॥
निहचय सत्य अमर की मूरी प्रगट दखिय हरिचंद पूरी।

आजु पुरावहु इच्छ कह, जग जाने यह भेउ।
आजु देउँ सिर कलपि के जा जाचा जग देउ॥ ४३॥
तब नृप गाव घाल करगही[3], आगे आइ बात तब कही।
इहाँ कलपि देउँ जौ माथा, रकत चुखाइ न मान नाथा॥
चलहु गोसाइँ गाँव गहि डोरी, देवस्थान हिउ जह पूरी।
तहहिं कलपि सिर रकत बहाऊँ हाछा सहित दव अन्हवाऊँ॥
मकु परसन होइ इछ भवानी, इछ तुम्हारि पुरावहु आनी।
चलहु बगि नहिं बिलंबहु देवा होउ सनाथ आजु पद सेवा॥
तब हँसि गिरिजा हरि मुख हेरा कहसि सुमेर सत्त एहि केरा।

एहिक सत्त जस धुव अचल तुम पति सारगपान।
परसन होवहु इछ एहि बगि पुरावहु आन॥ ४४॥

१—इच्छा। २—औरस पुत्र। ३—प्रगह पगहा।

तत्खन परसन भए महेसू परगट कीन्ह सबै निजु भेसू।
सुरसरि सीस कमलिनि माथे फनपति ग्रीव बसह कर नाथे।
चहुँ दिस जुथ जटा छहरानी आठहुँ अंग भसम लपटानी।
रुंड माल गल डमरू हाथा औ पुनि सिखर सुता धनि साथा॥
कुस्टी अंग कठ बिष बाघ लोचन तीनि दुरदतुचर[3] काथे।
लोचन मध्य अगिनि अगारा, जहि ते मदन भसम सम जारा॥
आक पान पुनि मुखहिँ चबाहीं बाउर जानि धतूरा खाहीं।

सिद्ध पुरुष पहिचानि कै परा पाउ सो राइ।
दयावन्त होइ सास गहि सकर लीन्ह उठाइ॥ ४५॥

हर हँसि कहा सुनहु अब राजा भयो तोर दोउ जग कर काजा।
पुहुमी राज पाट सुख गाता सरग मुकुति तोहि दीन्ह बिधाता॥
सत्त तार जस अचल पहारा सत्त भयो ताहि सुत देनिहारा।
जो बिधि यह सब सृष्टि सँवारी, सुखी दुखी जग ईस भिखारी॥
तेहि के देत न एकौ खागा, मैं तोहि लागि पूत अब माँगा।
देखु देत हौं आपन असा अब तोरे ह्वैहौं निजु बसा॥
जोगी अस जो जग आतरई दिन दस साज जोगि कर करई।

पुनि पुत सतति लच्छमी, राज पाट सुख भोग।
अब जिय रहस अनद करु, जनि मानसि कछु सोग[4]॥ ४६॥

दै असीस तत्खन जस जानी भए अलोप महेस भवानी।
राजा रहा अचक तहँ खरा जैसे पहरु काह जह हरा॥
कहेसि कि निहचै यहि जग माहीं मोहि अस आन अभागा नाहीं।
बिधिना नग अमोल हुत दीन्हा दुष्ट हिये मैं रतन न चीन्हा॥
अब जो रतन हाथ कर खोवा, काजौं सभु माल पर दोवा[7]॥

१—तत्क्षण = उसी समय। २—पार्वती। ३—द्विरद बच् = हाथी का चर्म।
४—कमी है। ५—शोक दुख। ६—रतन। ७—शिव शिव कह माला डुहना व्यर्थ है।

सेवा समु हिये धौं लागी दीपक ग्यान उठा तब जागी ॥
सकर यह चेटक देखरावा, गुरू हाइ हिय ग्यान जतावा ।

जैसें भए सनाथ हम, हत जो दो चख आहि ।
रहि मूरख यह आइ जग, ऐसे जानि निबाहि ॥ ४७ ॥

हिरदे (क) भवन धरी दुइ जारा दीपक ग्यान कीह उजियारा ।
पुनि जो माया पौन झकोरा बुझा दीप मिट गया अँजोरा ॥
राज पाट घर बार सँभारा, करे लाग जस सपन बिचारा ।
जैसे नर मिरतक क देखें यह ससार न आनै लखे ।
हीय सुनत ध्यान धरि रहिय, मुख तज ग्यान आन नहि कहिय ॥
जबहाँ भोजन पेट समाना, कहाँ क ध्यान कहाँ कर ग्याना ।
मानुस सिर औंधीखोपरी, रह न निकसि तहाँ जा परी ॥

पेम हुतासन दीप कर धरी सुखन्ह दै बारि ।
जा जग अधे हाइ पहि जोत सकै नहिं टारि ॥ ४८ ॥

---

(४) जन्म खड ।

सिव असीस विधि भयो मयारा, धरनीधर घर सुत औतारा ।
निहकलक ससि परगट भएऊ, सगरे कुल अँजोर भे गएऊ ॥
निसि अँधियार सूर जनु भेंटा निमिष माँहि सब दुख पर मेटा ।
आधी राति भयो औतारा, तहनिन्ह रचा मगलाचारा ॥
पँडितन्ह बठि नषत करि साखी उदै विचार लगन गनि राखी ।
अत पच्छ पुनवसु गुरु वारा मिथुना लगन सभु औतारा ॥
राजा हिए रहस अस जागा, टूटे बद फाटिगा झागा[1] ।

(क) यहा से ४९ दोहा तक हिन्दी प्रति मे नहीं है ।

१—चामा ।

सुत सुनि राजा मन भयो रोम रोम संतोष।
रानी रहसी[1] देखि मुख भई संपूरन कोष ॥ ४९ ॥

भोर होत आए जोतषी पोथी गरह कढ़ली लिखी।
मिथुना लगन असु ओनोसी उदै पुनर्वसु अति सुभ दीसी॥
तिसरे सुजे चंद्रमा नवें, दुसर बुद्ध सुक्र संग लएँ॥
सनमुख सूर सनी पुनि देखा चारु चरन सतभिषा सरेखा।
राहु जनम दसएँ पुनि सनी जिउ[2] एगारहें जासौं धनी॥
भौम एगरहे पुनि सुख देखा, गुरुपति हन बिकट गढ़ लेखा।
राहु केतु दोऊ अपने ऊँचा सीस छत्र गए सर्ग पहूँचा॥

मनि माथे हरदै नषत गनि गुनि कीन्ह बखान।
होडा चक्र बिचारि कै राखो नाउ सुजान ॥ ५० ॥

कुम्भ राषि धन नाउ सुहावा, जनम पत्र लिखि बाँचि सुनावा।
आयू सौ बरषन्ह अधिकाई बिरध होइ तरुवाँ लहुँ पाई॥
पुहमी होइ छत्रपति राजा, पार दान कर बाजन बाजा।
सुंदर तिया लागि दुख सहई, जोग पंथ पुनि दिन दस गहई॥
प्रेम करावे जगम भेसा बिरह फिराव देस बिदेसा॥
पर भुइँ जाइ खग पुनि करई छत्री जाति छत्र सिर धरई।
आ जेहि लागि सहै दुख जता, तेन्ह मिलि पुनि मानै सुख तेता॥

तेहि पाछे पुनि जनम भइ सुत संपति सुख देखि।
राज पाट पुहमी अचल, अस कछु लगन बिसेखि ॥ ५१ ॥

छठीं राति बाजन गह गहे, बाजे आ सब गाजत रहे।
पुरपह इंद्रसभा जनु सारा तरुनिन्ह गाइ कीन्ह भिनुसारा॥
भोर भए होइ लागि बधाई छत्तिस पौनि दीन्ह पहिराई।
नृप कर कुस पानी जब लीन्हा दछिना सकल बिप्र कहँ दीन्हा॥
गाय सोन मुँदरी नग जरी, पाटंबर जरकसा पाँवरी॥

१—आनंदित हुए। २—बृहस्पति।

भाटन दै तुरग पहिराये भटिनी पहिरे नीति सुहाये।
और भिषारी जने आए इच्छा पूरि सबै पहिराए॥

सोन रूप नग माइ भुइँ पाटबर गज धार।
राजा खोलि भँडार सब, देत न लाव भोर॥ ५२॥

बरहँ दिन सब कुटुँब जेंवावा घर घरहीं ते नेवति पठावा।
अमिरित पाच रसोंइ सानी सुनतेहि नाउँ भूख तिन भागी॥
देत देस जहि बर न हाई, का बरनौ तेहि राज रसोई।
जहि जस भाएउ गँधा कोरा नेगि ह देत न लाएउ भोरा॥
अपने छीर माइ सुत पाषा अपने हिय लाइ सतोषा।
निसि दिन हिये लाए सुख लहही चारि नैन मुख लागे रहही॥
प्रथमहिँ जैस पियाइअ छीरा बस भाव पुनि देइ सरीरा।

और न दूध पियाइपे पडे छाव[1] सो ततु[2]।
तेहि कारन बुधिवत नर प्यावहिँ छीर सुततु॥ ५३॥

रहहिँ हितू सब कोरा लीएँ, माथे स्याम चाखँडा दीएँ।
दूध छाडि बेगहि भा ठाटा, दिन दिन लाग करह जिमि बाटा॥
देखि सबै कोइ पूछे धाई, लागै तोरि बात सोहाई।
पाँच बरिस का भया कुमारा बुद्धि बचन सब मुख उच्चारा॥
तब विद्याधर पँडित हकारा, आवा जस सुर गुरु मलियारा[4]।
मानिक रतन धार एक भरा राजा गुर के आगे धरा॥
गहि भुज कुँअर पाय तर मेला, कहसि कि तुम गुरु यह तुम चेला।

जहँ लहुँ विद्या तुम्ह पढा औ जिय भा सतोष।
आपन सुत सम जानि के देत न लाएहु धोष[5]॥ ५४॥

पडित रहसी असिष दीहा अन्या राज परछि सिर लीन्हा।
अस चित लाइ गुरु समुझावा थोरे दिवस गुन हिरदै छावा॥

१—शावक = बालक। २—स्वभाव। ३—अरथा। ४—कलभ = हाथी का बच्चा। ५—प्रकाशमान्, विद्वान। ६—क्षोभ। भ्रम। सकोच।

अमरकोश व्याकरन बखाना जोग वैद्यकन्हि कै सब जाना ॥
पिंगल रघु दारघ दिढनासी, कठहि माँझ छद चोरासी।
पढी सँगीत ताल देखरावा एक सुर मँह दस राग सुनावा ॥
जोतिष मह कोइ बाद न आटा एक पल सहस बार के काटा।
अस भुगोल बखानि सुनावा पल महँ मनु पुहमी फिरि आवा ॥

पढि गुनि चौदह बरष लगु दस औ चारि निधान।
निपुन दुवा दस भाव महँ सब पढि गहु सुजान ॥ ५६ ॥

सरा करत पुनि भा बरिआरा योरहि दिन महँ मल्ल पछारा।
व्याम[1] करत पुहमा जा हली पीठि न लाइ सकै काउ बली ॥
फरी दाँड गुन अस ओहि आवा, खेलत पाव पुहमि नहि नावा।
अनुप बान गह दुसर न कोई सबदबेधि कहिए ह सोई ॥
तमकि तुरै[2] जब हाइ असवारा अस्तु अस्तु सब काई पुकारा।
कैसउ कट्टर तुरै करारा काँपा सूत बाँधि मुह फेरा ॥
अस अहेर कह मन चित बाँधा निसि दिन रहहि पारधी[3] राधा[4]।

पहिलेँ पारधि जाई बन घात करै चहुँ फेर।
सपरि कुँअर तब कटक लै खेलै जाइ अहेर ॥ ५७ ॥

दिन एक पारधि आय सबेरा, कहेसि कुँअर हे घात अहेरा।
सुनतहि कुँअर भयउ असवारा चला कटक पुनि सग खभारा[5] ॥
औ जते गयद पुनि आये, भाते निमते सबै चलाये।
गाडिन्ह गाडिन्ह चीत चले, बहुत सेयाहगोस तहँ रले ॥
किये डोर सब सोनहा[6] ताजी, भल भल गुरजी आर सिराजी।
तिन्ह सौं हरिन जाइ कहँ पाव, पोनहुँ चाहि जा आगे धावै ॥
औ सब सग पारधी लीन्ह, जो बघमार सा आगे कीन्हे।

१—व्यायाम = कसरत। २—तुरग = घोड़ा। ३—शिकार का पता लगाने वाला। ४—आराधा = बुलाया हुआ = हाजिर। ५—अधिक। ६—श्वान = कुत्ता।

कुअर कटक सब जुरि चले जहँ लौउ राउत रान।
सुनि सुनि पुहुमीपति डर कायर राउ रिसान ॥ ५८ ॥

देखि कटक सब सावज डरे, कुसल जानि तेहि घरे पन।
झखे झाख रोझ पछताने, बिधि हम एहि बन काहे आने ॥
देखि देखि चातन्ह की धारा मानहिँ हरिन आपनी हारा ॥
धाइ धाइ जस खेती चरी अब तसही भलि चाकरी ॥
गैंडा सबै भए सत—छाडे नहि निकास तेहि चहले[1] गाडे।
जूथन्ह खडे जहाँ तहँ हरना झारहिँ सीस जानि निजु मरना ॥
बीहनि बठ खरहा लोवा चहुँ दिसि जनुक फिरि फिरि रोवा।

परा सोग सावज घरहिँ, काग गीध कर नाच।
कानन परला[2] आजु हे, सावज नाउँ न बाच ॥ ५९ ॥

कुअँर कहा यह कानन साई जहि कर मरम न जानइ कोई।
हम अस बहुत खेलारी भए, इहवहिँ आइ खेलि सब गए ॥
जो कर जियत सिंह मुख मला आइ अहर सो एहि बन खेला।
खले जान होउ सो आगे नाहिँ ता आवहु पाछ लागे ॥
अगुआ कहै करहु पै सोइ, खेलि गए पछताव न होइ ॥
अस के घरहु जान न पाव, मारहु सोई घात जहि आव।
बैठहु मूल बान जो मारा। आर तरे जो करहु पुकारा।

आवहि सावज घात जब, मारहु खाँड पचारि[3]।
चवरि[4] जो आगे ह्वै चल, छाडहु सोनहा झारि ॥ ६० ॥

सावज घरि लिए चहुँ ओरी चीता सोनहा दीह उरारी।
चीतन्ह रोझ मृगा बहु मारे, सोनहा बहुत बराह पछारे ॥
चारिहुँ ओर बान तब छूटे, गैंडन्ह पीठ फोंक लहु फूटे।
कहूँ महिष लोटहिँ बिष भारा, कहूँ रोझ डारहिँ खुरथरा[6] ॥

१—कीच, पंक। २—प्रलय, नाश। ३—प्रचारि क—ताल क।
४—शिकारगाह। आखेट स्थल। ५—सात। ६—खुरहर—खुर का चिह्न।

चीतन्ह गोन अनेकन्ह मारे ससा लोम[1] बहु गनत न पार।
बहुत खडग परतीत के साधा, मारें महिष हाइ दुइ आधा॥
कीन्ह अहर कुँअर मन माना पहर एक भा गीध मसाना।

पुनि ते राखे बिलग कै, भूजि कटक जत खाइ।
और पठाइन्ह नग्र कहँ हस्तिन्ह पाति भराइ॥ ६१॥

पहर (क) बिसार आन कहँ हरा, लागे खेले पछि अहेरा।
अस कै जोहँ दिस जाल पसारा पछी नाउँ न लिखरै पारा॥
परी परेवा चाटक मोरा बाज न तीतर साँवर गोरा।
धरें बटेर बडे औ छोटे भान बिचार दूबरे मोटे॥
खाखर लावा घरे पर जाल माहँ परगट सब धरे।
और बगेर कदरू जावा व्याध न छाडै एक न छावा॥
आये सरग जब चरिचरि चारा, यह दिन कठिन न काहुँ बिचारा।

तब जो चरे निचिंत हाइ, परी सोइ अब काँथ।
समुझि हिये रोप सबै छोरि चले गुन गाँथ॥ ६२॥

आधे दिवस दुपहरी बेरा भा अति तेज तेज रबि करा।
बैठे जाइ तपत क छाहीं, छाने खोल पवन सब खाहीं॥
सेवकन्ह मास भूँजि के कहा, आपन मीठ मोछ कर गहा।
हँसि हँसि करहिं अहेर बखाना, नैना हिएँ न हावे ज्ञाना॥
आपन सुभ न सकी उपरजा[2], कैसें जारि आन कर बजा[3]।
कटब जाय सभानक माहा मारें काँ न बिसारा काहीं।
जा कहँ बधहिं देहिं तेहि ज्ञाना, आन क जीव आप अस जाना॥

काटहिं आइ रूख सब, देहिं अगिन सुलगाइ।
पाय पराई खोपरी, जानहिं भुस मँ जाइ॥ ६३॥

१—लोमश। (क) यहा से ६५ दोहे तक हिन्दी की प्रति मे नही है।
२—उत्पन्न करना, सपादन करना। ३—ठीक।

बैठा कुअर सिंह अस गूँजा लाग जहाँ तहँ हाइ मँसभूजा ।
भूजहिँ मांस जीभ रस लाहू आपन मांस न सूझ काहू ॥
भूजत चुव सरागन पानी राउ मांस हि अस जानी ।
हम खर खास निचत जो सोइ एहिसँ गात सराग पराइ ॥
फिरि फिरि जारहि छाडहिँ नाहीँ हाइहि कहा मांस जो खाहीँ ।
जस हम इन कहँ दारुन जाना इनहूँ पर दारुन है आना ॥
देखि देखि मारो रन माखे[1] खुली निगाह भइ के आँखे ।

मास खाइ जल अँचवहि आ चितवहि पुनि ओर ।
कहन्ह आज दिन लेख मँह काहि न सूझै टोर ॥ ६४ ॥

रूखन छाह जो पाई सीना पहर एक पुनि तहँवहि बीता ।
कहूँ जागि कहुँ सोइ गवावा चौथहि पहर सीतर[2] आवा ॥
राज निसानहि डका लागा सोवन लोग सब सुनि जागा ।
कुँअर तुरग भयो असवारा कटक चहूँ दिसि परी पुकारा ।
जागत अहा सग उठ लागा सोवत पाछूँ परा अभागा ॥
हल बल जाहिँ न तुरी बिलाने का हाई अब के पछतान ।
कोऊ मिले बीच मिल जाई बहुत बाच पुनि पर भुलाइ ॥

पथी भोजन पेट भर, छाँह सुहाई पाय ।
होइ निचिन्त जो सोए सो पाछ पछताय ॥ ६५ ॥

आधे पथ पहूँचे आई, उठी बाउ आँधी पछुआई ।
स्याम घटा आँधी अधिकाई, भया अँधेर सरग छिति छाई ॥
ऊबट बाट जाइ नहिँ बूझा निअरहिँ दूसर जाइ न सूझा ।
परी धूरि लोचन मुख माहीँ दुहु कर बदन छिपाए जाहीँ ॥
तब सब मन गुन भए अवाके सनमुख तुर नग्र कह हाक ।

१—मि बकरी पाती खात ह ताका काटा खाल ।
जा नर बकरी खात ह तिनकी कवन हवाल ॥ (कबीर)
२—मध्य, बीच । ३—शातचता । ४—शीघ्रगामी ।

विधि परसाद कुँअर एक मरा, बाँव पथ तजि दाहिन परा।
अगुआ भयो करम की डाठी, जस कोइ गहे अंध की लाठी॥
ल पहुँचायो तास दस, जहँ गिरि त्रिखम उजारि।
धरी चार निसि बात पुनि भया नगत उजियार॥ ६६॥

गयो अँधेर दृष्टि भइ आना, कुँअर देवपर्वत पहिचाना।
कहसि कि यह पर्वत जहँ देऊ, नगर लोग सब मानहिं सेऊ॥
नगर दूरि औ नियरे गाऊँ थाका तुर कहाँ अब जाऊँ।
पवत हेठ अहा देवहरा रहाँ तहा निसि जौ एकसरा॥
कुँअर मढी महँ बैठ्यो जाई बाँधा तुर डार तरु लाई।
सग न कोई दुखी चितगहा आई नींद सोई तहँ रहा॥
भूख न माने लावन सेती नींद न माने सौरि[1] सपेती[2]।
नींद न आवै नैन जेहि सेज कुसुम भरि नित।
बेल परे सुपुहुमि महँ, साव परा निचित॥ ६७॥

---

(५) देवखड।

देवहि मन महँ परा विचारा रहौं आजु एहि कै रखवारा।
मोरि सरन सापउ एहि ठाऊँ, जौ खति[4] हाइ तौ कुलहि लजाऊँ॥
इहा गयद सिह बन माहीं मानुषखवा बहुत पसु आहीं।
भीतर कुँअर नींद चित लागा बाहर देव बार गहि जागा॥
एहि अतर जो पहर एक बीता, आवा देव देव कर मीता।
भयो हुलास देखि जिय भारी, दूनहुँ मीत भई अँकवारी॥
कहसि कि बहुत दिवस पर आए, आजु कहा तुम चरन दिखाए।
कहसि कहत बिछुरन कथा सूल उठत सब गात।
और सुनहु चित कान दै एक अपूरब बात॥ ६८॥

१—श्याम = राति। २—सफदी = दिन। ३—अवसर। ४—क्षति = हानि।

गाइ गुनिन पुनि राग सुनाए, वरतमान जस कलि महँ आए।
भैरा कोसिक मेघमलारा, हिंडाला दीपक उजियारा॥
सिरीराग रागन्ह कर साई पुनि तिन्ह की रागिनी सुनाई।
एह मत राग सब कोउ जाना, तातें मैं नहिं कीन्ह बखाना॥
हनुमँत मत जो राग बखाना जे सगीत पन्ना ते जाना।
भैरा पचम मध मलारा, नट गौरा मालवा सुधारा॥
पारबती मत जो कोउ गावा छओ राग एहि भाति सुनावा।

सिरी राग भेरा कहा ओ पुनि कहा बसत।

पचम मेघमलार पुनि, नटनारायन मत ॥ ७४ ॥

सिरी राग की रागिनि अहीं, कहौं बनाइ जो गिरिज कहाँ।
गौरी मधुमाधवी कदारी, तरिवन ओ मालवी बिहारी॥
भैरो की रागिनि भैरोई पारवती अपने मन जाई।
रव बगाली औ गूजरी पुनि गाए बहु ले गुन करी॥
देसी देवगिरी घेराटी, पुनि बसत कह जा तिअ बाटी॥
पुनि टोडा हिडोलहि गाई, भोरहिं गाई ललित साहाइ॥
पचम कहँ बिभास भूपाली बडहीसी करनाटी माली॥

पचम की पुनि रागिनी, पचम के सँग गाइ।

मेघ राग की रागिनी, अब सुनु कहौं बनाइ॥ ७ ॥

गधारी सोरठ मल्हारी, सादेरा पुनि हरिसिगारा।
तब छट्ठे कोसिकी सोहाई, बिबिधि भाति क गुनियन गाई॥
पुनि नटकी रागिनी बखानो, नटिका कामादी कल्यानी।
नट हम्मीर अहीरी गाइ, सारगी पुनि गाइ सुनाई॥
तीनि ग्राम गाइनि सुर बरना, ऊडौ खाडो सरल सँपुरना।
खरज रिषब गधार सोहावा चोथें सुर मध्यम पुनि गावा॥
पचम धैवत और निषाधा सोई गुनी सातो सुर साधा।

(पुस्तकालय)

अस कहु सभा सिंगार भा ओ पुनि राग बखान।
हाहा हूहू[1] सुनि चपे, सुरपति देखि लजान ॥ ७६ ॥

नाचहिं पेरिन्ह मन उपराहीं गहँ पान जनु अंतरिख जाहीं।
जहिं गति चलहिं तेहा मन[2] हरहीं, मानहुँ पाइ पुहुमि नहिं धरहीं ॥
नेनन्ह रूप श्रवन धुनि रागा सबको मन पायन्ह रह लागा।
पाय लागि मन रहे न पावे दै दै ताल पाय झहरावै ॥
सगर रन रहस सुख लीन्हा अगनित दान मोतिनग दीन्हा।
उडसा[3] नाच भयो भिनुसारा भया दिवस सब भा जेवनारा ॥
जवन अधिक अबूझ रसाई पर आपन जनै सब कोई।

जेस रात बीती सभा, आजु तस पुनि साज।
मँ आयउँ तोहि लेन कह, चलहु छाडि सब काज ॥ ७७ ॥

तहाँ मीत एक प्रान पियारा आनन मार एहि ससारा।
मातहि हाई मात की चिंता, चारि भाति जग कहिय मिता ॥
नैन मीत एक जग आवा नन देखि कै मात कहावा।
मुख फेरत भा ओर लेखा, गयो भूलि जनु सपना देखा ॥
इच्छा मीत हाइ एक दूजा, ता लहु मात इच्छ जब पूजा।
हाछा पूजी गई मिताई बहुरि बार नहिं झाँकै आई ॥
बैन मात बन रस रसा, बैनहि लागि रहै मन बसा।

प्रान मात वहि कहिन है, पर न सकै निरबाहि।
सो दुख आने आप जिय, जा महँ सुख हो ताहि ॥ ७८ ॥

म निसि तहा बहुत सुख पावा, कहौ कहा कछु कहत न आवा।
अब जो तोहि हाइ सुख देखौं, मोरे सुख आवे तब लेखौं ॥
उठु चलु बेगि होत है बारा रूप नगर बहु सुख देनिहारा।
सुनि यह कथा देव अकुलाना जनु हिय लागु प्रेम कर बाना ॥

१—हाहा, हूहू दो प्रधान गन्धर्व। २—मान = मर्यादा, ढग। ३—नष्ट हुआ, तिमटा।

कहसि कि सुनु ए मित पियार दुखी प्रान कहँ सुख देनिहारे।
सुनि अमिरित यह बात अनूपा मन लागेउ चित्रावलि रूपा॥
पै एक लाज काज हौं गहा उठि नहिं सकौं अचक मन रहा।

महाराज नपाल पति, धरनीधर जग जान।
तेहि कर सुत कुल दीप इक सूर सुबुद्धि सुजान॥ ७९॥

औ पुनि उहै एक सुत आवा, साइ बहु सवा क जहि पावा।
बहुत पुन्य औ बहु तप कीन्हा, महादेव परसन होय दीन्हा॥
आजु सा एहि बन करत अहेरा, परा भूलि जब भया अँधेरा।
एकसर आइ मढी महँ सोवा ढूँढत फिरहिं रतन जनु खोवा॥
एक (क) एकसरि औ रनि अँधारी, हौं तेहि बेठि अहौं रखवारी॥
एहि बन बहुत जनु सुख खोवा, औ बिग खाहि जो मानुष ठावा[1]॥
तेहि कारन तजि सकौं न ठाऊँ जनि नसाइ धरनीधर नाऊँ।

मात पिता दोऊ मरहिं, सुनि कलप सब कोइ।
हम तन पुनि हत्या चढे, जहि क सरन सो सोइ॥ ८०॥

बोला मित बचन सुनु मोरा, इह सस जिय मानहु थोरा।
एहि पुनि तहाँ सग ल जाहीं, अस ल चलहिं जा जानै नाहीं॥
चित्रावलि की है चितसारी बारी माँहि विचित्र सवारी।
एहि ले जाइ सो राखब तहाँ, हम तँ दखब कातुक उहाँ॥
देखि कुअँरि औ देखि अखारा, ले आउब होतहि भिनुसारा।
सुनि मन रहसा देव सयाना जनु तम गए कँवल बिगसाना॥
सोवत कुँअरहि लीन्ह उठाई निमिष माँह तहँ पहुँचे जाइ।

चित्र सार मँह कुँअर तजि जहाँ न दूसर कोइ।
आपु सिधार नगर महँ (ख), जहा सो कातुक होइ॥ ८१॥

(क) यह अकसर औ निसि अँधियारी—पाठा।

१—शावक = बच्चा।

(ख) कह—पाठा।

(६) चित्रदर्शन खंड ।

वे भूले तेहि कौतुक जाइ, इहाँ कुँअर जागा अँगिराई।
नैन उघारि देखि चितसारी रहा अचक उठि बैठ सँभारी॥
देखा मँदिर एक बहु भाँती चित्र सँवार पाँतिन्ह पाँती।
कनक खंभ आ कनक कवारा लागे रतन कपाँहिं उँजियारा॥
ऊपर छात अनूप सँवार करि कटाव सब कचन ढारे।
कीन्ह उरेह सूर ससि जाती आर नषत सब मानिक माती॥
हठ अपूरब डासन डासा, जहँ तहँ आउ सुगँध की वासा॥

भयो कुँअर चित अचक[1] एक, मनहीं माँहि गुनाउ[2]।
काकर लोन मँदिर यह औ माहि को लै आउ॥ ८२॥

बहुरि कुँअर जा पाछे देखा अपुरुब रूप चित्र एक पेखा।
जानि सजीउ जीउ भरमाना, भया ठाढ उठि कुअर सुजाना॥
देखि रूप मुख परचै खरा, बिधि एह चुरइल क अपछरा।
किए सिँगार सग नहिं कोई, धरँ भेष भावन हे साई॥
जग न होइ मानुष अस रूपा, को पाव अस रूप सरूपा।
निहचे अहाँ सरग पर आवा, सुरकन्या भौ दिष्टि मेरावा॥
निहचै एह सुरपति अपछरा, देखत मोर चित्त जिन हरा।

हा तो मडप दरस क, सावा अहा सुभाउँ।
होइ परसन कोउ देवता ले आवा एहि ठाउँ॥ ८३॥

भया भाग्य मम दाहिन आजू जहि बिधि दीन्ह आनि यह साजू।
क वहि जन्म पुन्य कछु कीन्हा तेहि परसाद दरस इन्ह दीन्हा॥
के बेनी सिर करवट सारा के कासी तन तप महँ जारा।
कै मथुरा बसि हरि जस गावा, ताहि पुन्य यह दरसन पावा॥

१—अचभा। २—शोच। चिन्ता। ३—चकित हुआ।

कै काहू की इछा पूरी, बल बैसाउ[1] कीन्ह दुख दूरी।
कै सुदिष्ट अपने बिधि देखा आनि देख वह रूप सुरेखा॥
सुनत अहा कबिलास सोहावा, (क)सो बिधि मोहिं आन देखरावा।

मन रहसहि चितवै चितहि रहा मौन हाइ भूप।
रसना भरम न बोलई लोएन[2] भूले रूप॥ ८४॥

छिन एक गुनि मन महँ बहु भावा पुनि ढाढस क आगें आवा।
नियरे होइ जो बदन निहारा रह निहारि मीन जिमि तारा॥
तब जानेसि यह चित्र अनूपा हरयो चित्र लखि बदन सरूपा।
नेन लगाय रहउ मुख बोरा[3] चित्र चाँद भा कुँअर चकोरा।
सुधि बिसरी बुधि रही न हीये, गा बोराइ प्रेम मद पीये॥
कबहूँ सीस पाइ तर धरही, कबहुँ ठाढ हाइ बिनती करई।
कबहूँ चाहै अचल गहा, हाथ न आव अचक मन रहा॥

कबहूँ परै अचेत भुइँ कबहूँ होइ सचेत।
रूप अपार हिएँ समुझि, मुख जोव करि हत॥ ८५॥

निरषत जोति नैन जो पाई परी डाठ आला पर जाई।
देखा आहि लिखे कर साजू जाते हाइ चित्र कर काजू॥
साँवर अरुन पीत औ हरा, जो रँग चाहिय सो सब धरा।
कहसि बिचारि बूझि मन माहीं, काहि आजु अस होइ कि नाहीं॥
आपन चित्र लिखौं एहि ठाऊँ, मुकुरहिं जाति जोति कछु पाऊँ।
आपनि जोति सूर उँजियारा, सूर कि जोति चद मनियारा॥
हिएँ बिचारि चित्र तब लिखा, वहि क चरन तर आपन सिखा।

साजि सो मूरति आपनी ले सब रँग वहि केर।
कै सुजान सो जानई कै सुजान यह फर॥ ८६॥

१—व्यवसाय। (क) सुर कन्या भी दीस मरावा—पाठा। २—लोचन। आख। ३—बउरा। गूँगा।

चित्र लिखा पूजी पुनि धरी निद्रा आइ कुँअर चखु भरी।
कुँअरक चाहत पलक न लावा बरबस बैरिन नींद सोआवा॥
इहे नींद जासौं बन खोवा इहै नींद जो करै बिछोवा।
इहै नींद मगु चलै न देई इहे नींद सरबस हरि लेई॥
इहै नींद जेहिं नैन समानी, पलकन्ह भीतर दृष्टि समानी।
जो जग माहँ नींद बस होई, रहै बीच मग सरबस खोई॥
जे यहि नींद आपु बस कीन्हे इहै नींद तेहि नौ निधि दीन्हे।

मान गवाए सोई सब, जो सपति हुति साथ।
अजहू जागु न घर बसे, भकुरे है कछु हाथ॥ ८७॥

देवन्ह कौतुक अति जिय भावा, चित्रिनि दरस अमर भइ काया।
होत भोर अदित परगासा, उठी सभा औ नाँच उडासा।
चित्रावलि कहँ निद्रा आई, ले पलग पर सखिन सोआई॥
औ जहँ तहँ सब सोवन लागीं सगरी रनि अही सुख जागीं।
देवन्ह कहा होत है बारा चित्रसारि जनु कोऊ उघारा॥
चलहु कुँअर लै चलहि सवेरा, मगु कोइ आइ मही मँह हेरा।
एहि न पाउ औ तुरै जो पावा, जानइ कुँअर जनु कोउ खावा॥

जन पुरजन माता पिता, जहँ लहु हित सुनि पाउ।
मरिहाहँ छाती फाटि सब तब कछु हाथ न आउ॥ ८८॥

पुनि दोउ एक सग चितसारी आइ उघारेन्हि पौरि क बारी।
सोवत कुँअर आन तहँ पावा, लीन्ह उठाइ बार नहिं लावा॥
निमिष माँह लै मही उतारा, गए छाडि सोवत दुख मारा।
सूरुज किरन जब कुँअरहि लागी, करवट लेत उठा तब जागी॥
देखै कहा चहूँ दिसि हेरी भई आनि रचना बिधि केरी।

१—भूख, अज्ञानी।

ना वह(क)मँदिर नहिँ कबिलासू, ना वह चित्र न वह सुख बासू ॥
सपन जान चित उठा मरोहू[1], औटि करज पानि भा लोहू।
पुनि जो निहारे आपु तन, चिन्ह आह सो सग।
बस्तर औ कर पर वही, लिखत लाग जा रग ॥ ८९ ॥

षन एक कुँअर अचक मन रहा, कौतुक सपना जाइ न कहा।
पुनि जो बिरह लहरि तन आई, थाँभि न(ख) सकेउ गिरेउ मुरझाई ॥
दोउ नेनन जनु समुँद अपारा, उमँडि चले राखै का पारा।
फारै भँगा औ लोटे परा बधुन कोऊ हाथ को बरा ॥
भरि गै खेह सीस औ देहा सेवक नाहिँ जो झारै खेहा।
सग न कोऊ हितू पियारा, को उठाइ बैठाइ सँभारा ॥
षिन चेतै षिन होइ बेसभारा[2], घरी घरी सिर भुइँ दइ मारा।
बिरह दहनि कोउ किमि कहै, रसना कहि जरि जाइ।
सोइ हिय माँहिँ सँभारै जहि तन लागै आइ ॥ ९० ॥

कटक जो आइ नगर नियराना, देखिन्ह सग न कुँअर सुजाना।
वह औ कहँ वह औ कहँ पूँछा कटक जानु बिनु जिउ तन छूँछा ॥
सब मिलि कहा कुँअर जो नाहीँ, राजा पास काह ल जाहीँ।
पूछत उतर देब हम काहा, छूँछ लजाइ रहब मुँह चाहा ॥
जहिँ बिनु तब जाइहि मुँह गोवा कसन अबहिँ जो खोजिअ खोवा।
सोवत जानु सबै सुनि जागे आपु आपु कहँ ढूँढन लागे ॥
जल जल थल थल मेह पहारा एक एक तरु तर सा सा बारा।
स्याम रन बिनु पथ पुनि, अगुवा सग न कोइ।
दूरि दूरि सब धावहिँ नियर जाहिँ नहि कोइ ॥ ९१ ॥

(क) वह मदिर ना वह कैलासू—पाठा । (ख) कापत गिरेउ भूमि सुरझाई—पाठा ।

१—मरोर = मरोस । २—सभारहीन = बेहोश ।

३—का गायाई = वाचालता ।

खोजत खोजि कटक सब हारा बीती रैनि भयो भिनुसारा।
सूरज उदै पथ तब सूझा, भयो दिवस पर आपन बूझा॥
बाजी चरन खोज पुनि पाए खोजत खोज मढी महँ आए।
देखाहँ कुँअर परा बिकरारा हाथ पाँव सिर कछु न सँभारा॥
ऊभ[1] उसास लेइ औ रावा, देखत सैन प्रान जुन खोवा।
खेह झारि ले बैसे कारा, रोव कटक देखि मुख ओरा॥
पूछे बातन उतर न देई पिन पिन ऊभ साँस पै लेई।

अरुन बदन पिराइ गा, रुहिर[2] सूखि गा गात।
रहा झापि लोयन दोऊ, कहै न पूछे बात॥ ९२॥

कोऊ कहै मृगी एहि आई, होइ अचेत परा मुरछाई।
कोउ कह डसा साप एहि मढा, सूरज उदै लहरि है चढी॥
कोउ कहे अहा राति का भूखा, नाँवरि आइ रुहिर तन सूखा।
कोउ कह रैनि रहा एकसरा, कै दानौ कै चुरइलि छरा[3]॥
इहवाँ घरी बिलँब भल नाहीं, बेगहि हाहु नगर लै जाहीं।
ततूषन राज सुखासन आना लै पौढाए कुँअर सुजाना॥
नाउँ सुखासन लै दुखबाहा, बिरह क जरा दून कै डाहा।

जाइ सुखासन आसुभा, बाजु गीत औ नाद।
चला पाछु सब आवै, कटक भरा बिसमाद[4]॥ ९३॥

केऊ कहा जाइ जहँ राजा कुअँर आव कछु औरै साजा।
सगन सुनिय गीत औ दाना सिगरी कटक देखि बिसमाना[5]॥
सुनि औगुन राजा उठि धावा व्याकुल हाइ भुइँ पाव न लावा।
रानी सुनि सिर परी बिजागी[6], सुनतहि जरी कोप की आगी॥
आई धाइ कुअँर जहाँ आवा, रोइ सुखासन लेइ कँठ लावा।

१—ऊभ = ऊचा। २—रुधिर = रक्त। ३—छला = आवेश किया।
४—विसाद। ५—विस्मित हुआ। ६—वियोग।

देख पीन तन मुख पियराना राजा रानी तजहिं पराना ॥
कंठ लगावहिं पूँछहिं बाता उतर न देइ बिरह मद माता ।

पुनि ते पूँछा बोलि कै जे संग हुत सयान ।
जहँवा कुँअर बिछुरि मिला तिन्ह सब कीन्ह बखान ॥ ९४ ॥

राजमँदिर महँ कुँअर उतारा जानहु आनि अगिन महँ डारा ॥
कल न परै पल अति बिकरारा, हाथ पाँव सिर दै दै मारा ।
राजैं ततखन जन दौराए बद सयान[1] गुनी ल आए ॥
गहहिं नाडिका[2] बूझहिं पीरा नारि माँह निरदाप सरीरा ।
ससि सूरज दोऊ निरदोषी अपुने अपुने घर सतोषी ॥
अब नाडिका माँह नहिं पीरा प्रगट पियर मुख पीन सरीरा ।
कहि न आव हम हियँ बिचारा ई जस बिरह घाउ कर मारा ॥

पीर सोई जो नहाँ कछु औषद मूरि उपाय ।
एहि कर हितू जो हाइ कोइ सो पूछे फुसिलाय ॥ ९५ ॥

उठि अकुलाइ मात दुख भरी, कुँअर पास आई एकसरी ।
सीस लाइ क बैठी कोरा पूछै बात देखि मुख आरा ॥
नैन उघारु पूत कहु पीरा केहि कारन भा पीन सरीरा ।
काहे पीन भयो मुख राता कहहु बात बलिहारी माता ॥
(क) तहाँ एक दिनमनि कुलकरा, नैन मूँदि कस करहि अँधेरा ।
हम सब घट[3] तुइ जीव सनेही कस कुँभिलाइ देसि दुख देही ।
पूत पीर कहु कस जिउ तोरा नैन खोलु करु जगत अँजारा ॥

तोरे पीर कि औषद, जौ एहि जग महँ होइ ।
अर्थ द्रव्य जिउ दइ के बेगि मँगावो सोइ ॥ ९६ ॥

१—प्रतविद्या जाननेवाला । २—नाड़ी ।
(क) तहाँ दाप एक कुल करा—पाठा ।
३—होते हुए ।

कहु जो उपजी विथा सरीरा, करा सोई जेहि नेवरइ पीरा।
जो है मढी देव कर भाऊ[1], लै पूजा सो देव मनाऊ[2]॥
जो काहू के दरसन भूला मांगौ होइ दुनौं कर फूला।
और जो मन कछु हाछा होई कहु सो बेगि लै पुरवौं सोई॥
दुहु जग माँह तुहीं एक आसा आस तारि(क) का करसि निरासा।
को काटै इह दुख दिन राती अबहीं मरब फाटि मैं छाती॥
सुनि कै कुँअर मातु कै बोला ऊभि साँस लीन मुख खोला।

माता पीर सो ऊपजी, ताहि न मूरि उपाइ।
लोयन अटक तहाँ पै मन न सकै जहँ जाइ॥ १७॥

कहि कै कुँअर मोन भै रहा लोयन दुहू गिरे जल बहा।
बहुत पूँछि रानी जब हारी कहि न बात नहिं पलक उघारी॥
पहि महँ बिरह लहरि पुनि आई (ख) थंभि न सका परा मुरछाई।
धाह मेलि तब रानी रोई सुनत लोग धावा सब कोई॥
राजा रोवे डारि सिर पागा जन परिजन सब रोवइ लागा।
राज मँदिर कर सुनत अँदोरा[3] घर घर परा नगर मह रोरा॥
जो जैसहि तसहि उठि धावा हाथ हाथ लै कुँअर उठावा।

कोइ मलै पानी मुख, कोऊ मूँदै नाक।
मेटे कैसेहु नहिं मिटे, माथ लिखा जो आँक॥ १८॥

विद्याधर गुरु पंडित महा, तेहि कुल सुमति पूत एक अहा।
नाउ सुबुद्धि सकल गुन जाना पढा पाठ सँग कुँअर सुजाना॥
विद्या जानु जहाँ लगि गुनी नाटक चेटक आखर धनी॥
मानत हत कुँअर तेहि सेती कहत सुनत जिय बातें जेती।
सुनि कै विथा कुँअर पहँ आवा, कुँअर अचेत आइ तहँ पावा॥

१—मनोनीत है। २—अनुकूल कर। ३—आंदोलन हल्ला।

(क) आस तारि जन करसि निरासा—पाठा०।

(ख) कांपत भूमि परा मुरछाई—पाठा।

नारी देखि बिचारेसि पीरा, दीप न पाइस कुअँर सरीरा।
बदन पियर लोचन न उघारा निहचे कहसि बिरह कर मारा॥

प्रेम मत्र पाला सुबुधि श्रवनन लागि पुकारि।
सावन जागा कुअँर पुनि देखिसि पलक उघारि॥ ९९॥

तब एकसर भे पूछसि बाता कहहु कहाँ कासों मन राता।
कौन रूप तुम देखा जाई दखत जाहि पर मुरझाई॥
मँ तोर हितू जान सब कोई कोन बात तुम मोसों गोई[1]।
आ मँ गुन आकरषन पढा स्वर्ग बसे सोऊ कर चढा॥
नाउँ ठाउँ जाकर जौ होई, करि उपाउ पुनि आनउँ सोई।
जो तुम्ह काज आज नाहँ आवाँ, बुधि बिद्या सब कुलहि लजावाँ॥
प्रेम पहार स्वर्ग ते ऊँचा, बिनु रघ[2] काउ तहँ न पहूँचा।
कहु सो बात अब जीउ की, बगहि करौं उपाइ।
ना तो बीर कुअँर निज, सब मरिहँ बौराइ॥ १००॥

सुनि सुनि मन सब बात बिचारी रोइ रोइ कहन कथा अनुसारी।
जैसँ खेले गए अहेरा आँधि आइ औ भया अँधेरा॥
औ जेसे सब चले पराई परयो आपु जस एकसर जाई।
औ जैसँ बीती सो औगी सोवा मढा तुर तरु बौगी॥
औ जेसँ वह सपना देखा, अपुरब रूप चित्र जस पेखा।
औ जेसँ मनगा बउराई, दिष्टि परत चित लीन्ह चोराई॥
आपन चित्र लिखा रँग लागा, सोवत मढी माह जस जागा।
जैसँ देखा सपन सब, सांमुह[3] पाए चीन्ह।
कुँअर कहा सब सुबुधि सों जस कौतुक बिधि कीन्ह॥ १०१॥

कहा कहौं कछु कही न जाई हिय साँरत बुधि जाइ हराई।
कहत न बनै जो कछु मैं देखा गूँग क सपन भयो मोर लेखा॥

१—छिपाता है। २—आश्रय लिये। सहारा लिये। ३—सम्मुख।
४—मि गूँग का सपना भयो समुझि समुझि पछताइ।

नाउँ न जानौं पूछौं काही पटतर नाहिँ देखावौं जाही।
देस न जानौं केहि दिसि आही पथ न जानौं पूछौं काहा॥
मन चहुँ दिसि धावै बैरागा[1] फिरि आवै बोहित[2] ज्यों कागा।
करहु उपाय करे जो पारहु नाहि ता कहा मुए कहँ मारहु॥
गहिर सिंधु जाइ जिउ खोवा अब मैं हाथ आपु सो धोवा।
मोहिँ जियत नहिँ सूझइ पुनि वह रूप मिलाउ।
मुएँ कबहुँ सुरमौन मँह हाथ आउ ता आउ॥ १०२॥

जबहिँ कुँवर यह बात सुनाई सुबुधि बुद्धि सब गई हराई।
परेउ जाइ मन तेहि अवगाहा तीर न देखि पाव नहिँ थाहा॥
कछु बिचार हिए नहि आव कुअँर पीर जेहि आपद जावै।
कहँसि कुँअर यह पथ हुइला[3] निराधार खेलैं तिन्ह खेला॥
कहसि उपाइ एक मति मारी मू दिय और बाट चहुँ ओरी।
जहवाँ सोइ सपन अस दीसा ओही ठाँव हनहुँ पुनि सीसा॥
मकु[4] बिधि सोवत कर्म लगावै, बहुरि सोई सपना सो पावै।
लेहु कुँअर उपदेस यह चतहु चेत सँभारि।
आन पथ नहिँ दूसरा दीख न हिएँ बिचार॥ १०३॥

(७) मढी खंड।

सुनि कै कुँअर पथ पहिचाना, हिएँ बिचारि सुमति मन माना।
हुत जा निरास आस कछु पाई बूडत कहँ जनु थाह बताई॥
राजा रानी दोउ हकराए, सुनि सुचेत रहसन दोउ आए।
कुँअर ठाढ भा दोउ कर जोरी, मात पिता बिनती एक मोरी॥
अग्या देहु हिए मति चढी, दिन दस रहौं देव की मढी।
जाकर जाइ जहाँ कछु खोवा, जहवाँ खोउ तहाँ पै जावा॥
ढूँढौं जाइ सुबुधि लै साथा, मगु ढूँढत आवै कछु हाथा।

१—उचटा हुआ। २—नाव। ३—कठिन।
४—कदाचित्।

अग्या देहु ता दिवस दस, रहौं मढी महँ जाइ।
हम तन पीर सो ऊपनी, जाहि न आन उपाइ ॥ १०४ ॥

राजैं कहा जहाँ सुख हाई, रहहु (क) जाई तुम्ह बरज न काई।
रहिह कटक पुनि तुम्ह सँग जाई, उहँहिं देब मै नगर बसाई ॥
अर्थ दव जत लागै लावहु, तुम्ह सुबुद्धि सँग जिउ बहलावहु।
बगि बोलाइ चहूँ दिस केरा, थवई खाती गुनी चितेरा ॥
दीन्ह अनेक कनक औ रूपा हाइ लाग तहँ मँदिर अनूपा।
मारुतसुत सम लाग कहारा रहसत आवहि लिए पहारा ॥
खँड उपर खँड हाई बनानी[1] कै गच ढारहिं कँचन पानी।

खँड उपर पुनि खँड करहि, जहँ तहँ गुपुत चढाउ।
बाहर भीतर दुहूँ दिसि, हाइ अनेक कटाउ ॥ १०५ ॥

बाहर चहुँ दिस कोट बिराजा, भीतर सब नौ मदिल साजा।
देवमढी पुनि फेरि बनाई हीरा फटिक[2] लगाइ उँचाई ॥
ईंगुर पीसि साजि जनु सोना कीन्ह कटाउ चित्र बहु लोना।
लिखि लिखि चित्र बिचित्र सिँगरा जनु पुहुमीक बिलास उतारा ॥
सुरपुर सुर गन नहि अब लेखे, पुहुमी साध[3] हाइ तेहि देखे।
मढी सँवारि[4] देव जौ आवा, मढा न पावा चहुँदिस धावा ॥
धावत फिरै न पाव वासा, बिधि यह पुहुमी के कविलासा।

भूलि सुदामा ज्यों फिरै, न हँसी आव न रोइ।
भटकत फिरै चहू दिसि, गई मढेया खोइ ॥ १०६ ॥

कुअँर सुबुद्धि दोऊ एक साथा, आइ देव कहँ नाइन्हि माथा।
ले जल पानि देव कहँ पूजा चित्र ध्यान चित आन न दूजा ॥
बिनती कीन्ह सुनाइन्ह सेवा, हाहु दयाल बहुरि हा देवा।
जो मनसा चित पुरवहु आनी, कलस चढावौं बारह पानी[5] ॥

(क) रहहु तहा कछु हरज न काइ—पाठा । १—तय्यारी। २—स्फटिक।
३—इच्छा, अभिलाषा। ४—स्मरण कर के। ५—बारह बरस का सूअर।

कै विलाप सोवा तेहि ठाऊँ सँवरै रूप न जानै नाऊँ।
बरबस नैन झाँपि जा सोवा बिरह जगाव त्यों त्यों रोवा॥
बिरह अगिन बस जेहि तन माहीं भूख पियास नाँद तेहि नाहीं।
हियरें भीतर दुख बसे नैनन मूरति सोइ।
नैन नाँद तब आवई, ठौर कहँहुँ जो होइ॥ १०७॥
दिन दस जौ बीते पहि भाँती कुँअर जीउ पावै नहि साँती[1]।
बिरहा अगिन अधिक उदगरी प्रगट होइ मढी तब जरी॥
मढी जरी जानहु धै जोरी, चित्र अँगार भए जरि हारी।
देव देखि नैनन नहि भावा मानहु सिघ होइ चाहै खावा॥
मँदिर भीति जनु दै उदगारा कनक अगिन नग भये अँगारा।
बसन सोहाइ न अग जो आहा जिय तजि देह चलै जनु चाहा॥
उमडे नैन आँसु तस तूटे, भादौं मघा धार जनु छूटे।
कहसि सुबुध चेतहु न चित इहो गई अब आस।
नीँद न नैनन आवई, सपनेहु भयो निरास॥ १०८॥
बूड अहौं समुँद मँझ नीरा, नाउ न बेडा थाह न तीरा।
निअर न कोई माया मोही, बूडत धरि भुज काढे मोंही॥
दानव बिरह आइ जो लीला, रहा गाढ होइ देह न ढीला।
कोउ नाहीं अस बधै मोरा, होइ हनुवँत जमकातर तोरा॥
गयो चित्र नैनन्ह ते धोई जस दसरथ सुत सीय बिछोही।
को सेवक हनिवत[2] समाना बल बौसाइ[3] वाहि को आना॥
कासों कहौं बिथा जिउ रोई, औषद पीर न जानै कोई।
रैनि अँधेरी अगम अति, अगुवा नाहीं सग।
पथ अकेला बापुरा किमि कर पावै मग[4]॥ १०९॥

(८) धरमसाल खड।

सुनि कै सुबुधि साँस उर काढा, कुँअर कि पीर पीर जिअ बाढी।

१—शान्ति। २—हनुमन्त। ३—लगा क। ४—भद्। पता।

करी ग्यान जिय रचा उपाई कहेसि कुँअर सुनु बात(क) सोहाई॥
गिरिवर प्रेम विकट अति ऊँचा धाइ चढा सो तहाँ पहुँचा।
धीरज धरि जो लेइ पग हरी, चढ जाइ जहँ शृंग सुमरी॥
सपने चित्र जहाँ देखि आए सोंमुख सबै चान्ह तहँ पाए।
अहे चित्र सो पहि जग माहाँ, जनि जिय जानसि जौ कछु नाहाँ॥
जातें जति सन्यासी कोई जा जग माँह फिरा बहु हाई।
धरम साल एक बार के, जोगिन्ह बैठि ज बाउ।
पूँछहु बात जगत की जो काउ चाह सुनाउ॥ ११०॥
सुनि मति कुँअर पत्र कहँ पाया स्वाति पानि चातिक मन लावा।
धरम साल एक बार सँवारा जन सहस्र राखे रखवारा॥
चारिहुँ दिसा भोर उठि धावहिं, जोगी जती ढूँढि लै आवहि।
बोलाहँ मया देखावहिं सेवा लुब्धे फिरहि भोर जस कवा॥
पाउँ पखारहिं ढारहिं पानी कहहिं बचन सब अमिरित बानी।
पहिले आनि जवावहिं भोजा, पाछे करहि देस कर खोजा॥
कहहिं कथा जो जो कछु जानें भाँति भाँति पुनि दस बखानें।
चित्र बात कछु पूछही, कहै जो देखा हाइ।
सुनि सुनि बात सुहाय मह पटतर लावे सोइ॥ १११॥
दुहुँ जग जाकी उपमा नाहाँ रे मन सोइ बसै तोहि माहीं।
का ढूँढहिं जहँ तहाँ उदासा मृग ज्यों तृन तृन ढूँढत वासा॥
जब कीरात नाभी कटि लेई मृग पछताइ तहाँ जिउ देई।
मृगमद माह बास ज्यों रहई, त्यों घट माँह निरजन अहई॥
तैं अबही घट आप न साधत, जब लों जम बाधा नहि बाधत।
ग्यान अंत घट माहँ थिराई, निरमल रूप निहारहु जाई॥
धरम पथ छाडौ जनि काई, धरमहि सिद्धि परापित[1] हाई।

(क) हमारी—पाठा।

१—प्राप्त।

मान इहा जो धरम पँथ, डोरी लावै राउ।
रूप नगर अब जाइ कै चित्रावलिहिँ जगाउ ॥ ११२ ॥

(६) चित्रावली जागरण खंड।

चित्रावलि चषु नाँद जा लागी, दिनकर उगा तबहु नहिँ जागी।
कौंल न खिला अली अकुलानी भा बिहान कुमुदिनि कुँभिलानी ॥
सखी वेग जा दरस न देखा, आपन जनम अकारथ लेखा।
जनी चार जिन्ह बिरह बिउावा, आईँ तहाँ कौंल जहँ सोवा ॥
जिन्ह सों हत रहा अधिकाई, तिन गहि पावँ पलोट जगाई।
नैन उघारि नारि अँभुआनी दोऊ भुज पसारि अँगिरानी ॥
बदन सरूप देखि जग मोहा जनु मयक पारस मधि[1] सोहा।
छूटहिँ अलकावलि बदन, भौंहँ चढी कमान।
जाल रापि कुसमेखु जनु मारन चाहति प्रान ॥ ११३ ॥

ससि समीप कुमुदिनि मुँह खोला, सुनु चित्रावलि बचन अमोला।
तें सुबुद्धि औ चतुर सयानी ऐसे सोवत का जिय जानी ॥
अस निचिंत पै सोवै सोई जा कहँ इहाँ रहन नित होई।
एह नहियर औ पितु कै राजू ससुरे गएँ आव नहिँ काजू ॥
दिन दुइ चार इहाँ कर रहना खेलन हँसन सोई पै लहना।
खेलहु खेल बूझि मन माहीँ आजु जो आहि कालिह सो नाहीँ ॥
काहिह पीउ बोलिहि चितधरी, राखि न सकिहि कोऊ एक घरी।
काढि देब हम एकसरी चलिहिँ न काऊ साथ।
कह न पाउब बात कछु रहब मरोरत हाथ ॥ ११४ ॥

कठिन रहन ससुरे कर आई, तबहीँ कुसल कंत जब चाहै।
सकुचहि तें बीती पल जेती, छुटत न छिन अचल कर सेती ॥
लाज त्रास पुनि गुरुजन केरी, सौंहँ न सकब काहु न तरेरी।

१—मध्य। २—कामदेव।

बोलत ऊँच सासु देइ गारी ननँदी नीच बोल बेवहारी ॥
रिसि आइहि राखब जिय मारी, रिस कीन्हे आवै कुल गारी ।
ऐसे पर पुनि जान बिधाता पिउ कस चाह जो जनम सघाता ॥
सब(क) दुख सुख औ पै पिउ चाहा, ना तरु जनम अकारथ आहा ।

सुख सरवर इह पिता घर, लहर तरग अपार ।
खेलि लेहु जो खेलिबे, कोऊ न बरजनहार ॥ ११५ ॥

तुम्ह तौ इहाँ नींद चित लावा तुम्ह बिनु सरवर सोभ न पावा ।
कँवल मराल हस तुम्ह सेती, औ मृनाल सोभा सर जती ।
(ख) तुम्ह बसन्त लइ सोवहु बारी, तुम्ह बिनु खाखरि सब फुलवारी ॥
तुम्ह सरीर पुनि चपक फूला आध गुलाल मधुमती फूला ।
फुलपछी तुव सग पियारी जहि बिनु सोभा पाव न बारी ॥
तुमहीँ डारि औ तुमही सूआ तुमहीँ ते सर फूल अछूवा ।
तुमहिँ आप जो सरस अमोला, तुम्हही ते जो काकिल बोला ॥

तुव बिनु सूनी चितसरी, चित्र सबै बिनु रग ।
जल थल सोभा उठि चलहु, सखी सहेली सग ॥ ११६ ॥

चित्रावलि रचि कीन्ह सिँगारा गरे सोह मनि मोतिन हारा ।
सखी सहेली लीन्ह हँकारी आई सब जानहुँ फुलवारी ॥
पाँति पाँति निकसीं सब बाला गूँथी जानु पुहुप की माला ।
अलिकावलि अलि माला जैसी उडि उडि जानु पुहुप पर बैसी ॥
जेहि जेहि पथ चली ते जाहाँ ठौर ठौर तेहि मधुप लोभाहा ।
खेलत सब निसरी जेहि ओरी हात बसत आव तेहि ओरी ॥
मधु कर फिरहि पुहुप जनु फूले देवता देखि रूप सब भूले ।

एहि बिधि सब क्रीडा करत आईँ सरवर तीर ।
खोंपा[1] छोरिन सीस के, गात उतारिन चीर ॥ ११७ ॥

(क) यह कवल एक ही प्रति मे है । (ख) तुम बसन्त सोभा पुनि बारी—पाठा ।

१—जूड़ा ।

(१०) सरोवर खंड ।

तीर धरिन सब चीर उतारी, धाइ धसाँ सब नीर मँझारी ।
कनक लता फैलीं सब बारी, पुरइनि तीरि जानु जल डारी ॥
मानहुँ ससि सँग सरग तराईं कलि करत अति लाग सोहाईं ।
हंस देखि जलहर तजि गए पदुम सबै दिन कुमुदिनि भए ॥
आइ चकार देखि मुख रहा सरवर नाहिं गगन सब कहा ।
भूले गगन अचक रहे तहाँ अब निसि नषत कहहि दिन कहाँ ॥
चित्रावलि तन मल्या धानी[1] अलकावलि नागिन लपटानी ।

कंच बिषधर सरवर डसा, मूरि नगारुरि सग ।
नख सिख सेतीं लहरि जनु, बिथुरि गई सब अग ॥ ११८ ॥

हसि बोली चित्रावलि बारी सुनहु सखी एक बात हमारी ।
यह सरवर जा आहि सोहावा, एहि क अत बिरला जन पावा ॥
तुम सतत पालहु मम नेहू आज मोर परतिग्या[3] लेहू ।
हौं छिपाउँ एहि सरवर माहाँ तुम खोजहु काउ पावकि नाहीं ॥
मोहि खोजत जो आइ उचावै, हारउँ बचा माँग सो पावै ।
जाएँ घाट गहिर जल जानी, तहँ छपि रही काँल गहि पानी ॥
काहु न जाना केहि दिसि गई, सरवर मथन करत सब भई ।

बूडि बूडि हेरहिं सबै जेहि जस भाग सो पाउ ।
कोउ घोंघा कोउ मोति लै कोउ छूँछे बहराउ ॥ ११९ ॥

सरवर ढूँढि सबै पचि रहीं, चित्रिनि खोज न पावा कहीं ।
निकसाँ तीर भईं बैरागी, धरी ध्यान सब बिनवै लागी ॥
गुपुत तोहि पावहिं का जानी, परगट मँह जो रहहि छपानी ।
चतुरानन पढि चारो बेदू, रहा खोजि पै पाव न भेदू ॥

१—आप्राण कर । २—साप का मंत्र जानने वाला । ३—प्रतिज्ञान, परीक्षा ।

सकर पुनि हारे कै सेवा, ताहि न मिलिउ ओर का देवा।
हम अपी जेहि आपु न सूझा भेद तुहार कहाँ लौं बूझा॥
कौन सा ठाउ जहाँ तुम नाहीं, हम चखु जोति न देखहिं काहीं।
पाव खोज तुम्हार सो जहि देखलावहु पथ।
कहा हाइ जोगी भए आ पुनि पढ गरथ॥ १२०॥

ततषन सरद चाद परगासा, विहँसि कुमुदिनी कीन्ह हुलासा।
चित्रावलि जनु पकज कली सरवर जीउ काढि ल चली॥
पहिरि चार जल चिहुर[1] निचावा मानहु घन मुक्ताहल बोवा।
रचि भूषन पुनि कीन्ह सिगारू पहिर कठ मुक्ताहल हारू॥
पुहुपमाल पुनि ह्वै सब बारी, फूलीं आइ माँझ फुलवारी॥
जब लगि आहि आइ सब देखी, फूल माहिं पुनि कौन बिसेषी॥
तारहिं कुसुम नवावहिं डारा, कोऊ गेंद कोउ हार सवारा।
उर उर मेलहिं हार गहि, मौर कवॉल तेहि सग।
मानहु दोऊ मिलि चलीं कालिंद्री आ गग॥ १२१॥

(११) चित्रावलोकन खड।

सखी एक आई तहँ धाई कहसि कि अचरज देखहु आई।
चितसारी जहँ चित्र तुम्हारा पुरुष एक कोउ लाइ सँवारा॥
अस विचित्र नहि जाइ बखाना, पटतर दइ न जाइ ससि भाना।
अपुरुब रूप चित्र वह दीठा राजकुँअर जनु आह बईठा॥
देखत चित्र गई हम आऊ कहूँ चित्र अस देख न काऊ।
नैनन देखत हिये समाई, जनि पतियाहु तो देखहु आई॥
अचरज इह जो इहा को आवा इहाँ पान नहिं सचरै पावा।
मानुष इहाँ न आवइ देवता लिखै न कोइ।
विधि ने अपने हाथ जो, लिखा हाइ तो हाइ॥ १२२॥

१—प्रकाश।

सुनि चित्रिनि चितसारी आई, देखि चित्र मुख रही लुभाई।
सहस कला होइ हियें समाना, निरखि रूप चित चेत भुलाना॥
नेन लाइ मूरति सौ रही डोलि न सकी प्रेम की गही।
चित्रिनि कह सुनु सखी पियारी तुम्ह मोरि पीर सिरावनिहारी॥
यह सरूप मोहि सुख देनिहारा जोबन भयो जीउ-लेनिहारा।
करहु बिचार इहा को आवा ओ कैसे सो आवै पावा॥
केहि क चित्र ओ को अस लीखा, अस नै लिखै कहाँ दहु[1] सीखा।

करहु खोज ता कर सखी जहिक चित्र यह आह।
नाहिं तो मरिहो बूडि में बिरह समुद्र अगाह॥ १२३॥

सखिन कहा तुम्ह चतुर सुजाना, जो तुम्ह जान सो काहु न जाना।
नाउँ ठाउँ जाकर नहिं आही धावत केस पावै ताही॥
हम सब मिलि खोजब एक साथा खोजत खोज आउ पै हाथा।
तुम घर चलहु करहु कुल लाजा, जान यह बात सुन कहुँ राजा॥
तुम कहँ रिस के धरहि लुकाई हमहि जियत लै गाड भराबै(क)।
दुजन लोग करहिं सब हाँसी बालहिं बोल करहिं कुल नासी॥
जौ अपना हे प्रेम, पियारी गुपत सहहु दिन दस दुख भारी।

बरजहिं आपन साथ सब अहित सुनै नहि पाउ।
कै तुम्ह कै हम कै बिधी, जे यह कीन्ह उपाउ॥ १२४॥

चित्रावली चित्र रँग राती, लिए बुलाइ निपुसक जाती।
ओ यह भद कहा तिन्ह सेती, तुम्ह जानहु कि सहेली जेती॥
जो यह बात चलाइह कोई आपन कीन्ह पाव पै सोई।
मूँड मुँडाय निसारौं देसा, कारा मुख गु जा कर भेसा॥
निस दिन इहाँ रहहु रखवारी, अहित न आव पाउ चितसारी।
दिये पाट राखहु निसि दीना, कोउ न उधार आइ मोहि बीना॥
जनम सेइ जे माहिं न बिसारा, यहि सेवा मैं होब मयारा।

१—दहु = घे। २—उत्पन्न। (क) हमहि जियत धरि ठाढ गडाव। पाठा।

सिख दइ निकसी चित्रनी रही चित्र चित गाडि ।
छूँछी काया ले चली जिउ चितसारी छाडि ॥ १२५ ॥

दिवस गया निसि आइ तुलानी परी जाइ धोराहर रानी ।
कहैं कहानी सखा पियारी, चितन ठाउँ को देइ हुँकारी ॥
नींद न परै प्रेम चित जागा कछु न साहाइ चित्र अनुरागा ।
कुसुम सेज जानहु चित[1] जोरी देह लाइ दीन्ही जनु होरी ॥
जागत बरष एक दिन जाई पलक उलटि सम पहर बिहाई ।
चित अकुलाइ चलन कहँ चाहा लाज आइ पग साँकर बाहा[2] ॥
निसि जनु जम होइ जीउ हरि लीन्हा, पलनि भोर जानहु जिउ दीन्हा ।
बिहसित भोर अरुन उदै चितिनि चित्र सँभारि ।
हितू सहेली सग ल, रहसि चली चितसारि ॥ १२६ ॥

चित्रावलि आई चितसारी, रहसि उघारेसि पारि केवारी ।
कौल बदन जो अहा कुम्हिलाना दिनकर दरस देखि बिगसाना ॥
रह जो नेन बियोग जराए चित्र रूप जल आनि सिराए ।
टक टक रही चेत चित खोवा मानहुँ चित्र चित्र मुख जोवा ॥
एक टक लाइ रही मुख आगा (क)चित्र चाँद मा कुँवरि चकोरा ।
एहि बिधि दिन बीता निसि आई सखिनि आइ गहि बाँह उठाई ॥
सखी सब जो एकमत भईं बरबस लै धोराहर गईं ।
निसि दुख देखा चित्रिनी, सब निसि एक एक जाम ॥
जस असोक तर जानकी बिरह सहा बिनु राम ॥ १२७ ॥

एहि बिधि बीते जो दिन चारी निसि धोराहर निज चितसारी ।
प्रीति आइ उर अंतर बसी प्रेम जाति माथे परगसी ॥
रूप मलीन बदन पियराना अचल दीप न रहै छिपाना ।

१—चिता । २—ढाला ।
(क) मनहु सरद ससि पाव चकोरा—पाठा ।
३—प्रकाशित हुई, चमकी ।

आनन पियर तेज बिनु गाता लखि चरची मुख हेरा माता ॥
पारखि होइ मन परखी हीरा, परगट दोष न देख सरीरा।
खेलत हँसत रैन दिन जाई का तें आहि बदन पियराई।
जिउ उदास आनन कुँभिलाना बाज प्रेम यह दीसत आना ॥

पूछि एक एक सखी सन औ निपुँसक जत साथ।
चित्रावलि जनु सुरसरी कहा सबन छुइ माथ ॥ १२८ ॥

अहा जो एक निपु सक जाती चित्रावलि सेवा दिन राती।
एकचित करत रहत निन पूजा आन न ओहि सर सेवक दूजा।
निसि दिन प्रेम दृष्टि भरि हेरा हिये ध्यान चित्रावलि केरा ॥
फिरे भाग औ भइ मति हानी, भा भिमान[1] सेवा बहु जानी।
चित्र रूप जब चित्रिनि राती ताहि देखि सुठि बिहरी छाती ॥
जिमि जिमि चित्रिनि चित्र निहारा कहै आगि भरि भया अँगारा।
जिय न बिचार अभागा ऐसा राक होत राजा सो कैसा।

जेहि सेवा जिउ दीजिये नित उठि ताहि असीस।
जो जिउ जानै सो करै ता सौं कैसी रीस ॥ १२९ ॥

जाइ नहाँ जहँ हीरा रानी चित्र बात वह कहिसि बखानी।
बारी माहँ जो हे चितसारी, तहँ चित्रावलि खेल धमारी[2] ॥
रैनि काहु एक चित्र सँवारा परगट भयो भयें भिनुसारा।
को लिखि गा कछु जानिय नाहीं जेहिक चित्र सो को जग माहीं ॥
ताहि देखि सो भूली बारी, फूली हियें प्रेम फुलवारी।
भौंर न मिला कौल कहँ आई, भौंर छाँह लषि रही भुलाई ॥
चित्र प्रेम चित्रावलि हीयें, माती रहै प्रेम मद पीयें।

जानहिं सब सखि सग की, औ निपुँसक दुइ चार
जा मोहि कहिबे सो कहा, करहु जा आव बिचार ॥ १३० ॥

१—अभिमान। २—एक खेल।

सुनि रानी मन कीन्ह विचारा उपजत बीरा जो न उपारा ॥
भएँ विरष पुनि हाथ न आवै, जो बल करै सोई दुख पावै।
अबहीं कस न जाइ सो धोवाँ, प्रेम अंकुर मरे तें खोवा ॥
जब लगि सुनै पाव नहिं राजा, करा सोई कुछ होइ न लाजा।
बहु दुख पहरन पर हली[२], तब लीन्हो संग चारि सहली ॥
पहिले जाइ कही रखवारा लै कुंजी पुनि बार उघारा।
देखा चित्र एक मनियारा, जगमग मंदिर होइ उजियारा ॥
जिमि जिमि देखै रूप मुख, हियँ छोह अति होइ।
पानी पानिहिं लै रही चित्र जाइ नहि धाइ ॥ १३१ ॥

(१२) चित्र धोवन खंड।

सखी एक जो अही सयानी कहिसि कहा बिलवावह रानी।
यह सो चित्र जासों जग हाँसी दुहिता पाव नाँउ कुलनासी ॥
धोवहु वेगि आहि जो लोना कान टूट का करिये सोना।
सुनि मति हीरा रानी जागी लै जल कर सों धोवन लागी ॥
जिमि जिमि चित्र जाइ कछु धोइ राहु गरासि जानु ससि होई।
जिमि जिमि मिटै रूप मनियारा होत आउ नैनन्ह अँधियारा ॥
गई मेटि सो मुरति रसीली, जनु मनि आइ भुअगम लीली।
मेटि चित्र रानी चली, हिये दुन्दु दुख खाइ।
एतन न जाना विधि लिखा मेटि सक नहि कोइ ॥ १३२ ॥
चित्रावलि तिसि बिरह दुखारी होत भोर आई चितसारी।
चित्र न देखि अचक होइ रही, चाद सरूप गहन जनु गही ॥
अन्तक[४] बिरह आइ जिउ हरा धर बिनु जीउ पुहुमि खसि परा(क)।
सुनै न कछु कहे जा कोई जनु मनि खोई भुअगिनि सोई ॥
काइ सखि दसन खोलि जल नाव, कोउ गह नाकि साँस जहि आव।

१—बीरुध = बिरवा। २—टहला। ३—हाथ। ४—नाश करता हा। ५—यमराज।
(क) सखा सँभारहिं पूँछहिं बाता, उतर का देइ जीव नहि गाता।
हि दो प्रति मे यह अधिक है।

कोइ अचल गहि पोन डुलावै कोइ करतल पातल सुहाव ।
कोइ चदन बसि पोते काथा बरत अगिन जानो घिउ नाया ॥

परी चारि बीते बहुरि भयो चेत कछु तासु ।
नैन उघारि निहारि तब कहेसि ऊभि ले साँसु ॥ १३३ ॥

भयो काह सो रूप अमाला जहि बिनु गात पात जिमि डोला ।
भया कहा सो सूर उजियारा जेहि बिनु भयो जगत अँधियारा ॥
कहहु सो जाति कहाँ अब गई, जेहि बिनु पूनु अमावस भई ।
गई कहाँ सो मुरति पियारी जहि बिनु आजु सून चितसारी ॥
कै जिन लिखा मेटि तिन गवा, कै छिति छाँडि सरग अपसवा[1] ।
कै जम अहा जीउ लेनिहारा आइ जीउ है सरग सिधारा ॥
के कतहूँ माता सुनि पावा लाज जानि निसि आइ मिटावा(क)।

ताहि बोलि के लाइ सुधि जो हुत निसि रखवार ।
को आयो निसि सूरसुत[2], जिउ लै गयो हमार ॥ १३४ ॥

आवा बोलि रैनि रखवारा सीस नाइकै किहिस जोहारा ।
कहेसि राति रानी हुति आई लै जल से कर गई मिटाई ॥
मात चरित सुनि हियें सँकानी[3] पिता सक पुनि अधिक लजानी ।
कहेसि ताहि अब खोजहु आला, ज अस बात मातु सों चाली ।
अस को आहि कुटीचर सगा के कुटचारि[4] कीन्ह रस भगा ॥
बेगि खोजि आनहु पे सोई, करौं सोई जो मनसा होई ।
हाइ लाग चारिहुँ दिसि खोजू घर घर परा तिहूँ पुर खोजू ॥

सुर नर मुनि गन सब डरे, सुनि चित्रिनि चित राष ।
ताकर आहि अभाग बिधि, जाहि लाग यह दोष ॥ १३५ ॥

मैं का कहौं जगत सब जाना यहि कलि पाप न रहै छिपाना ।

१—स अपसरण = उड गया । २—सूर्यसुत = यम ।
३—सकोच किया । सहमी । ४—चुगुलखोर चवाव करने वाला ।
५—चुगुला चवाव । (क) निसि आनि नसावा । पाठा ।

जा खिन गोप कर ससारा आय प्रापु ज्योंर हट पुकारा ॥
छिपत जो किय कूप आ बापी काउ न जगत कहावत पापी ।
पाप न रह छिपाएँ छिपा छिपे पुन्य जो अहनिसि जपा ॥
पापहि गोप कहा काउ सोवा आपहिं पाप जनम तेहि खोवा ।
तजहु पाप पथहि जिय जानी करहु पुन्य जो रहे कहानी ॥
पुन्य करन जानि लावहु आखा जा सो हाइ दुहूँ जग मोखा[2] ।

मान करहु जा करि सकहु कथनी अकथ अपार ।
कथे न कर कछु आवई करनी करतब सार ॥ १३५ ॥

खोजत खोज कुमीचर जाना बाधि सखिन्ह चित्रिन पहँ आना ।
पग साँकर हाथन हथकरी दिपहि स्याम[4] जा आनी जरी(क) ॥
ततषन बेगि हँकारा नाऊ नेरिउ अस जनि हाइ बिपाऊ[6] ।
मूँड मुडाइ लाइ मुख कारी पाछ(ख) रही देही रतनारी ॥
खर चढाइ कै नगर फिरावा बाला जैस कीन्ह तस पावा ।
नगर फेरि पुनि देस निकारा फिरे आइ पहुचावनिहारा ॥
गुन सेवा पति निमिष न हरा किंचित (ग) दाप लागि मुँह फरा ।

आपन करनाहू जानिये अति मयार जो राज ।
ठाकुर अज्ञा मेटि कै काकर भा न अकाज ॥ १३७ ॥

चित्रावलि कह सो चितसारी जानहु भई भुअगिनि कारी ।
फूल अँगार भए फुलवारी किछु न सोहाइ बिरह की मारी ॥
बेगि आइ धौराहर चढा बिरह बिथा तियाग उर बढी ।
लोयन जल जनु घन बरषाई दह दहे जानहु दो लाई ॥
मलय मद घनसार मिलावा सखी आनि चाहँ उर लावा ।

१—पाना निकालन का एक यत्र । २—छिपाकर । ३—मान ।
४—स शकु = साँकर, जजीर । (क) दहि स्याम चा औगुन जरी—पाठा ।
५—कारिख = स्याही । ६—विपति । (ख) पाछु रहीर दहि रतनारी—पाठा ।
(ग) तनिक दोष पाठा । ७—दावाग्नि ।

अस तन तवै बिरह नल[1] पागा , निकट सुखाइ(क) अग नहि लागा ॥
पदुम गूँधि मेलहिँ उर हारा टूटहिँ जरि जरि होइ अँगारा ।

रोइ कहै तब सखिन सौं , हम तन तपनि सो लाग ।
जौ तुम्ह हिमगिरि आनहु तउ न बुझ यह आग ॥ १३८ ॥

करहु उपाय साँई चित जानी हिरदै आगि परै जेहि पानी ।
को अस बिधनै जग उपराजा , जो चित हरन चित्र अस साजा ॥
करहु खोज सो कहाँ चितेरा मकुरा जीव बहुरि लेखि फेरा ।
कै जेहि मिलै सो करहु उपाई कै बिष देहु मराँ जहि खाई ॥
रँगमति नाउँ सखी एक अही , त समुझाइ बात तब कही ।
करि गियान चेतहु चित माहीँ आहि सो आहि नहिँ सो नाहीँ ॥
आहि कोऊ सो पहि ससारा जेहिक चित्र यह काहु सँवारा ।

कस न खोज तेहि लीजिय जाकर चित्र अनूप ।
एक न ऐसा रूप भौ हे कुलीन काउ भूप ॥ १३९ ॥

तासौं कहा प्रीति तुम्ह लाई जा जल धोवत गयो मिटाई ।
दिन दुइ कर चटक देखरावा गयो मेटि पुनि बहुरि न आवा ॥
कस न ताहि जिउ दीज जानी जेहिक चित्र तुम्ह देखि भुलानी ।
बूझि बिचारि देखु मन माहीँ कया सजीव चित्र परछाहीँ ॥
कया सूर दीपक परछाहीँ होइ पतग जरहु तुम्ह काहीँ ।
जाकर परछाहीँ चित हरई सो दहुँ कया काह धौं करई ॥
जो अति चित्र लेन लिख कोई सभु सरीर न पटतर होई ।

चित्र चित्र चित सौं हरहु धरहु ध्यान मन सोइ ।
तुम्ह ज्ञानी औ सुबुधि अति का समुझावै कोइ ॥ १४० ॥

सखी बात सुनि तपनि सिरानी उपनत अमिलि परा जनु पानी ।
परमवचन[2] सुनतहि मन जागा , तजि छाया चित कायहि लगा ॥

१—बिरहानल । (क) अगिनि तन लागा—पाठा । २—सदुपदेश ।

चित्र सबै सो नास्ति के जाना काया अस्ति सोइ परमाना।
कहेसि सखी तैं हितू हमारी भूला पथ देखावनिहारी॥
अस्ति प्रेम उपजउ चित आइ नास्ति सबै अब गई हेराई।
हौं असूझ बन जात अकेली तें गहि बांह पार सिर मेला॥
हिय क नैन पथ अब सूझा आन विचार सभु तन बूझा।
कहु कैसे तेहि खोजिये, कै एकसर के साथ।
करु उपाय अब सोइ निजु जहि जिउ आवै हाथ॥ १४२॥

सुनु सु दरि अब बचन सोहावा बिनु खोज कछु हाथ न आवा।
नियरहि जाहि न चीन्हैं काई जागहिं कोस सहस दस सोई॥
दूरि नाहिं जेहि होइ चिन्हाई नेन न आवै मन तहँ जाई।
जन दुइ चार चित्र जिन्ह चीन्हा ता बुधि होइ गियान तिन्ह दीन्हा॥
भसम लाइ तन जागी भेसा पठवहु जाहिं देस पर देसा।
लेहिं सो राउ रंक घर फेरी पुर पट्टन सब देखहिं हेरी॥
मकु[1] तुव भाग जागि के जाई सो तुख होइ चढ़ कहु आई।
जेहि काहू खोजै काऊ एक मन एक चित्त लाई।
होइ दूरि जा अति तऊ नियरहि मिल सो आइ॥ १४५॥

---

(१३) परेवा खंड।

कै सिव साज निपु सक चारी जिन्ह सो आहि सो चित्र चिन्हारी।
बेगि चलाए चारिहु ओरा, ढूँढन चले सूर ससि जोरा॥
औ समुझाइ कीन्ह पुनि बाता जानत अहौं जाहि मन राता।
ताकर चाह कहै जो आइ जो मांगहि सो देउँ बधाई॥
चारौ चले चारि दिस भए आपु आपु कहँ ढूँढन गए।
जल थल सायर मेरु सुमेरा रन बन पुर पाटन सब हेरा॥
जहँ तहँ भवहिं[3] गहँ बैरागा, दहु इन महँ कोइ होइ सुभागा।

१—शायद, कदाचित्। २—सम्मुख प्रगट। ३—भ्रमण कर।

बन घन गिरि सायर पटन जहाँ सुनहिँ नर नाम।
फिरि फिरि हेरहिँ रैन दिन, छिन न लेहिँ बिसराम ॥ १४३ ॥

तिन्ह महँ अहा जो नाम परेवा हिएँ सँवरि चित्रावलि सेवा
उत्तर दिसा दीप अति भला धौलागिरि पर्वत कहँ चला ॥
प्रथमहिँ (क) नगर कोट कर फेरी काशमीर पुनि तिब्बत हेरी।
हरद्वार गै गंग अन्हावा, माँगी होछा सिभु मनावा ॥
सिरीनगर गढ देखि कुमाऊँ खसिया लोग बसहिँ तेहि गाऊँ।
पुनि बदरी केदार सिधारा ढूँढा फिरि फिरि सकल पहारा ॥
दुरगम देखि मगन कर देसा, चला ताकि नैपाल नरेसा।

बाक कोट बसगित बहुत, औ चारिहुँ दिसि ताल।
अमर पुरी जानहुँ बसी नाउ धरा नैपाल ॥ १४४ ॥

अतिहि अपूरब ताल सुहावा इसिकदर जुलकरन खनावा।
घाट बँधाए गच चिकनाई चहुँ दिसि फेर आरसी[1] लाई ॥
तिरहिँ[2] हाइ पानी कर धोखा देखि पिआस पाव सतोखा।
पुनि दुइ नदी सुहावनि बहीं, उत्तम वेदव्यास जस कही ॥
नागमती अहि मुख ते आई, बागमती नाहरमुख पाई।
तीरथ जानि जगत चलि आवा, अग धोई सब पाप नसावा ॥
बारह मास पटन पुनि घिरी, बरहो मास जातरा भिरी।

नर नारी सुंदर सबै, ससि मुख अधर रसाल।
नैन परेवा थकित रह देखि नगर नैपाल ॥ १४५ ॥

घर घर नगर लीन्ह तहँ फेरी राउ रंक देखे तहँ हेरी।
रूप सरूप लोग सब आहा, सो न मिलै जा कहँ चित चाहा ॥
जहँ न होइ सो प्रान पियारा बसत देस सब जानु उजारा।

(क) तूर नाहि जहि नेत चिन्हाइ। गा सुमरु पुनि तपान हेराइ—पाठा।

१—सीसाबन्दी, सीसा। २—डाडे। किनारे।

चला नगर तजि परबत ओटा परी दिष्टि एक कंचन कोटा ॥
हीरा रतन पदारथ मोती जगमगाइ सब मानिक जोती ।
कहसि जाइ देखौं एहि ठाऊँ, लागत अतिहि सुहावन गाऊँ ॥
हियें चाउ भइ पाव न लावा, जोगी जाइ न नगर नियरावा ।
आइ सीव[1] दिन नियर भा(क) लीन्ह अतीथ बोलाइ ।
धरमसाल जहँ हुत रचा तहँ ले गए लिवाइ ॥ १४६ ॥
गै जोगी तहँ देखै काहा, अतिथि सहस एक बैठे आहा ।
ठाढे सबै राउ औ राना सेवा करहिं जस मन माना ॥
भाँति भाँति पकवान जेंवावहिं औ अपने कर पान खियावहिं ।
जो इच्छा मन मागै कोई बेगिहि आन पुरावैं सोइ ॥
देखि अतीथ सबै रहँसाए[2] सेवा कहँ चलि आगे आए ।
आदर सहित आनि बसारा पहिलें लै जल पाँव पखारा ॥
ता पाछें लाए पकवाना, जेंउ गोसाईं जो मन माना ।
जोगी कछू न जेंवई पूछें कह न बन ॥
चरचै[3] आनन चहूँ दिस कीन्हें चंचल नन ॥ १४७ ॥
जोगि न जेंवा रह जेंवाइ, काहू कन्त कुँअर पहँ जाई ।
धरमसाल एक जोगी आवा चित चंचल बराग जनावा ॥
नहिं जानहिं तुहुँ का चित जानी, अन्न न खाइ पिय नहि पानी ।
पूँछे कह न एकौ बाता पियर बदन जस काहुक राता[4] ॥
चंचल नैन चहूँ दिस हेरा चरचै पुनि आनन सब फेरा ॥
पलक न लाउ जानु नहि सोवा ढूँढत फिरै जानु कछु खोवा ।
धरमसाल की नीत न होई भूँखा जाइ इहा हुत कोई ॥
भइ आयसु ऐसी कहा, बेगिहि आनहु सोइ ।
मैं चूक्यों सेवा कछू तातें रिसि जिय होइ ॥ १४८ ॥
कुँअर पास तब जोगी आना जोगी कुँअर देखि पहिचाना ।

१—सीमा, सिवान । २—आनंद हुए । ३—नाचता था । ४—अनुरक्त । ५—स ।
(क) आइ सीव बैठहु नियर—पाठा ।

चित रहसा जानहुँ निधि पाई कथा महँ जोगी न समाई।
पीत बरन जु अहा भा राता अति हुलास कपेउ सब गाता॥
देखि कुँअर आदर बहु कीन्हा निकट पाट बैठन कहँ दीन्हा।
बिनती कीन्ह सुनौ हो देवा कस न धरम कै मानहु सेवा॥
हम सेवक तुम्ह देव गोसाईं सेवक हुते चूक बहु ठाईं।
रिस तजि जेंवहु जेंवन दवा होउँ सनाथ आज तुम्ह सेवा॥

कहेसि कुँअर सुनु धरम तरु अस लगेउ तुअ भाग।
जरि पताल पालो सरग, होंछा फल तेहि लाग॥ १४९॥

जा दिन तें हम गुरू बिछोवा, अन्न न जेंवा नींद न सोवा।
भूख नाहिं औ नाहिं पियासा, नाँउ अधार रहइ घट साँसा॥
दक्खिन देस जान जिन्ह देखा, रूपनगर कबिलास बिसेखा।
बसे गुरू तेहि नगर सोहावा चेला देस बिदेस फिरावा॥
जोग अगिनि जब हिए प्रचारी[1] पल महँ कीन्ह भसम रिसि जारी।
काया जोग अहै रिसि रोगू, जो रिसि करै सो नासै जोगू।
कुँअर कहा कस देस तुम्हारा, औ को देस बसावनहारा[2]॥

मो सौं देस बखान करु कैस नगर कस भूप।
कौन लोग तहवाँ बसैं, पुनि गुन कौन अनूप॥ १५०॥

जोगी कथा कहन अनुसारी सुनहु कुँअर यह बात रसारी।
रूपनगर सो उत्तिम देसा जनु कबिलास आइ भुइँ बैसा॥
(क) धन सो नग्र धन उत्तिम देसा, चित्रसेन जहँ राउ नरेसा।
ऊँच नीच घर ऊँच उँचाए चित्र कटाउ अनेक बनाए॥
राउ रंक घर जानि न जाई, एक ते एक चाह अछवाई।
बेल चँबेली कुंद नेवारी, घर घर आँगन फुलि फुलवारी॥
लीपे चंदन मेद अवासा[6], भीत बैठि लेहिं अलि बासा।

१—परचाया, सुलगाया। २—राजा। ३—रसाली। ४—बैठा।
(क) यह उदू की प्रति मे नहीं है। ५—फूली हुई। ६—आवास, घर।

मृगमद चोवा कुमकुमा खोरि खारि महकाइ ।
सुर नर मुनि गधरब सब रह सुबास लुभाइ ॥ १५१ ॥

चित्रसेन अति राउ भुवारा जस रवि तप तेज मनियारा[1] ।
जेहि घर बिषम दिष्टि परि राइ बैरी तम जिमि जाइ बिलाइ ॥
बड परताप अखंडित राजू अगनित हस्ति घोर दल साजू ।
गुन बिद्या सरि भोज न पावा पंडितन्ह हियँ हत बहु लावा ॥
दुखी न कोऊ सब सुख राता जह तह चलै धरम का बाता ।
सब सुखिया काउ दु ख न जाना ढूँढत फिरहिं लेइ को दाना ॥
देस देस के राजा आवहिं ठाढ तँवारि बार[3] नहिं पावहिं ।

महथ गरब अति मान तहँ रहे न एकौ अक ।
रूप नगर की खोरि महँ राउ होहिं सब रक ॥ १५२ ॥

तेहि घर पुनि चित्रावलि बारी मात पिता की प्रान पियारी ।
रूप सरूप बरनि नहि जाई तीनिहुँ लोक न उपमा पाई ॥
दिनकर दिन पावै नहि जोरा इन्द्र लजाइ देखि मुख मोरा ।
अमरकोष गीता पुनि जाना चोदस बिद्या कर निधाना ।
सतति आन न तेहि घर आवा वाही एक ते सब चित लावा ॥
भौंह चढाइ जो कबहुँ रिसाई मात पिता कर जिउ लेसराई ।
ओ जो चाह कर पुनि सोई, लेत देत कछु बरज न कोई ॥

दखिन दिसा पुनि नगर क, सरवर एक खनाइ ।
सखिन साथ चित्रावली तह नित जाइ नहाइ ॥ १५३ ॥

कहा सराहौं सरवर तीरा पानि मोती तह काँकर हीरा ।
अति अगाह[4] थाह नहिं पाई, बिमल नीर जहँ पुहुमि देखाई ॥
अति अमोघ औ अति बिस्तारा सूझ न जाइ वारहु न पारा ।

१—मनिवाला । २—प्रतीक्षा करे, अगार । ३—बार = गुजर — प्रवेश ।
४—महत् = बड़ा । १—अवगाह = अवगाह = गहिरा ।

घाट बँधाए कचन ईंटा, सरग जाइ जनु लाग्या भीटा ॥
ऊपर ताल पानि जहँ ताईं ठाव ठाँव चौखडि बनाईं ।
औ जहँ तहँ चौरा कै लीन्हें निसि दिन रहहिं बिछावन कीन्हें ॥
जहाँ एक छिन करै निवासा सोई ठाव होइ कबिलासा ।

सुख समूह सरवर सोई जग दूसर कोउ नाहिं ।
मानुष कर का पूछिय, देवता देखि लोभाहिं ॥ १५४ ॥

भीतर सरवर पुरइन पूरी देखत जाहिं हाइ दुख दूरी ।
फूले कँवल सेत औ राते अलि मकरद पियहिं रस माते ॥
बासर पदुम कुमुद रह फूला सब निसि नषत चाँद रह भूला ।
तेरि कँवल केसर झहराहीं[1] कसरि बास आव जल माहीं ॥
हस झुण्ड कुरिलहिं[2] चहु ओरा चकइ चकवा पौरहिं जोरा ।
सवरत ताहि सिरायो हीया चातक आइ पानि सो पीया ॥
औ जिन पंछी जलके आए कलि करत अति लाग सोहाए ।

रहसहिं क्रीडा बन्द बस भौंर कँवल (क) फहराहिं ।
निसि दिन हाहिं अनँद तहँ देखत नैन सिराहिं ॥ १५५ ॥

सरवर तीर पछिम दिसि जहाँ चित्रावलि की बारी तहाँ ।
सीतल सघन सुहावन छाहीं सूर किरिन(ख) तहँ सँचरै नाहीं[3] ॥
मजुल डार पात अति हरे औ तहँ रहहिं सदा फर फरे ।
तुरँज जँभीरी अति बहुताई नेबू डारन गलगल जाई ॥
अमिरित फर औ दाडिम दाखा सलति जिये निमिष जो चाखा ।
नरियर और सोपारी लाई कटहर बडहर कोऊ न खाई ॥
आँब जमुनि लै एक दिसि लाए, बर पीपर तहँ गनत न आए ।

मूर सजीवन कलपतरु फल अमिरित मधु पान ।
देउ दइत तेहि लगि भजहिं देखत पाइय प्रान ॥ १५६ ॥

१—चलत ह । २—गिरना । ३—ठढा हुआ ।
(क) विकसाहिं पाठा । (ख) तरनि किरनि पाठा ।

काकिल निकर अमिरित बोलहिं कुंज कुंज गुंजत बन डोलहिं ॥
सारी सुआ पढै बहु भाखा कुरलहिं बैठि बठि तरु साखा ।
पवई आपन आपन जारी छकी फिरहि कुरलहिं चहु ओरी ॥
खंजन जहँ तहँ फरकि देखावैं दहिअल मधुर बचन अति भावैं
मार मोरनी निरतहिं बहुनाई, ठार ठार छवि बहुत सोहाई ॥
चलहि तरहिं तहँ ठमुकि परवा पंडुक बोलहि मृदु सुख दवा ।
बहु करनास[२] रहहिं तेहि पासा, देखि सा सग भाग जहि बासा (क) ॥
भगराज आ भुड़ी, हारिल चाचिक जूह ।
निसि बासर तेहि बारि महँ कुरलहिं पछि समूह ॥ १५७ ॥
आ पुनि रहै माँझ जहँ बारी चिनावलि लाइ फुलवारी ।
सोनजरद नागेसर फूले देखि सुदरसन दिष्ट जा भूले ॥
जाही जूही अति बहुताई अनबन भाँति सवती लाई ।
बनबेला सतबर्ग चँबेली रायबल फूली सुखबली ॥
करना केतकि बास नेवारी चपकली जनु कुदि उतारी ।
कदम गुलाब लाग बहु भाँती ओ बसाहि बकुचन की पाँती ॥
मोलसिरी फूली ओ मूँदा जनु सिंगार हरावलि गूँदी ।
पोन बसेरा लेहि निसि तहि फुलवारी पास ।
भोर भए जग प्रगटइ तिन्ह फूलन्ह की बास ॥ १ ८ ॥
ललित लवग लता जहँ फूली भौंरा भौंरि कुसुम तहि (ख) भूली ।
नगर नगर तहँ डगरै जूही गधराज फूलहिं सबूही ॥
कस्तूरी सुगध बिगसाहीं ठोर ठोर सो अधिक बसाहीं ।
भुइँचपा फूली बहु रगा, मानहु दरसा रूप अनगा ॥
सूरज भाँति भाँति अति राते देखत बने बरनि नहिं जाते ।
उडहिं पराग भौंर लपटाहीं जनु बिभूति जोगिनि लपटाहीं ॥
भरकडी[५] भौंरन सग खेली, जोगिन सग लागि जनु चेली ।

१—भ्रमैं । २—नालकट । ३—एक शिकारी चिड़िया जुर्रा । (क) बहुकर बास रहहिं तहि माहीं देखि सा सकहिं भाग जहि पास —पाठा० । ४—सर्य्यमुखी । (ख) रस । ५—एक कीड़ा ।

केलि कदम नवमल्लिका , फुल चपा सुरतान ।
छ ऋतु बारह मास तहँ ऋतु बसंत अस्थान ॥ १५९ ॥

औ पुनि जहा माँझ[1] फुलवारी तहँ चित्रावलि की चित सारी ॥
चदन मेद कपूर मिलावा इन्ह तिहुँ मिलि कै कीन्ह गिलावा ।
हीरा ईंट लगाइ उँचाई[2] देखत बन बरनि नहिँ जाई ॥
चुनी चूरि[3] कै कीन्हो खोहा मोती चूरि गच जग मोहा ॥
अति निरमल जस दरपन कीन्हा तहाँ जाइ पुनि आपु न चीन्हा ।
मँदिर एक तहँ चारि दुआरी नगिन जरी पुनि लागु केवारी ॥
कनक खभ तहँ चारि बनाए हीरा रतन पदारथ लाए ।
ठोर ठौर सब नग जरित , अस होइ रहेउ अँजोर ।
जहँ न रनि दिन जानिए औ न साँझ नहिँ भोर ॥ १६० ॥

तेहि महँ चित्रावलि गुन ग्यानी आपुन चित्र लिखै अस जानी ।
जो लौं सखी दरस नहिँ पावहिँ भारहिँ आइ सीस तेहि नावहिँ ॥
और जो चित्र अहहिँ ताहि माहीँ सो चित्रावलि की परछाहीँ ।
अस विचित्र केहि लावौं जारी अस्तुति जोग जीभ नहि मोरी ॥
वही रग अपने रँग माहीँ ओहि के रग और कोउ नाहीँ ।
सोह न जाइ चित्र मुख हरा धन सो चित्र औ धन सो चितेरा ॥
मानुष कहा सो देखै पावैँ , देवता जाहिँ जोहारे आवैँ ।
कोटि चित्र चितसारि महँ , देखत एको नाहिँ ।
जौं दिनकर उद्योत ही , नषत सबै छिपि जाहिँ ॥ १६१ ॥

लखो लिलाट दूजि कर चदा दूजि छाडि जग वो कहँ वदा ।
भौंह धनुष बरुनीँ बिषबाना , देखि मदन धनु गहत लजाना ॥
बरुनी बान गडै जहि हीये बहुरि न निकसै जब लहुँ जीये ।

१—मध्य । २—उँचाना = उठाया बनाया । ३—पीस कर, चूर्ण करक ।
३—मानिक—माठा । ४—नमस्कार करन क लिये ।

लोचन विमल जानु सम जोवा निमिष जो देख जनम भर रावा ॥
अधर सुरँग जनु खाए तँबोला अबहाँ जनु चाहै हँसि बोला ।
लक छीन जेहि भृ ग लजाहीं कोउ कह आहि कोऊ कह नाहीं ॥
फीली चरन सराहौं काहा अबहीं रहसि चले जनु चाहा ॥

गुपुत रहै चित सारि महँ जग जाने सब काइ ।
सपने जो काइ देखई सौंतुक जागी होइ ॥ १६२ ॥

सुनी कुँअर जो चित्र की बाता हिए हुलास कँपेउ सब गाता ।
सचक भया चित औ मन गुना सपन जो देखा सौंतुक सुना ॥
सोवत भाग अहे सो जागे, श्रवन भए सुनि आहि सभागे ।
मोहिं परतीति करम की नाही कहत आहि काउ सपने माहीं ॥
जौ निहचय हौं सोअत अहौं, जनि जगाउ विधि हाहा कहौं ।
कौन घरी यह आह सुभागी, देखेउँ सोइ सुनेउँ सो जागी ।
कोन बार यह आह सरेखा सरवन सुना नैनन जो देखा (क)॥

यहि अतर जनु बिरह अहि मधन देइ छुडाइ ।
बिथुरि गयो विष सकल तन लहरि चढा जनु आइ ॥ १६३ ॥

गुपत पीर परगट पुनि भई सुलगत आगि फूँकि जनु दई ।
उठी आगि सिर पालहु जरा धाइ कुँअर जोगी पग परा ॥
रहि न सकेउ हिय गह भरि[1] रोआ नैन नीर जोगी पग धोआ ।
बिरह अनल जल भे चखु ढरा लोचन नीर जोगि तब जरा ॥
दुहूँ हाथ गहि सीस उठावा पूँछन बात बकुर[2] नहि आवा ।
साँप डसा जनु बिष छहराना, घूमत रह सुनै नहिं काना ॥
दिष्टी भुअँग बद जनु कीन्हीं ते पढि मत्र खोलि जनु दीन्हीं ।
तब जोगी कर नीर ले, मुख छिरकसि करि हेत ।
पहर एक बीत भयो बहुरि कुँअर चित चेत ॥ १६४ ॥

(क)—यह उर्दू प्रति नहीं है । १—शक्ति भर जहाँ तक हो सके । २—शब्द । ३—फैला । ४—चक्कर खाता, मत्त । ५—हितार्थ ।

बहुरि जो कुँअरउ सोइ कै जागा(क) बैठ सँभारि गहिस सिर पागा ।
तौ पुनि कहिस ऊभ लै साँसा ए देनिहार निरासहि आसा ॥
वाह सा चित्र जा मोहि दुख दीन्हा बरबस जीउ मार हरि लीन्हा ।
जीउ लेइ तन दूरइ डारा हौं तो वही चित्र कर मारा ॥
वही चित्र म सपने दीठा, चित्त माँहँ वहि चित्र बईठा ।
वही चित्र बिनु जीउ बिहूना[1], जिउ हरि लीन्ह कीन्ह तन सूना ॥
वही चित्र जो नैन समाना सा तुक सपन जाइ नहिँ जाना ।
वही चित्र हम हिय महँ जो तैं कीन्ह बखान ।
हौं अब रहा सरीर होइ, वह मैं जीउ समान ॥ १६ ॥
जहि दिन ते नैनन भा लाहा बहुरि न पायाँ कतहूँ आहा ।
पथ न पावउँ कहि दिसि जाऊँ, पूछौं काहि न जानउँ नाऊँ ॥
मैं निरास भा बिनु जिउ आहा आस रहइ तौ जिउ घट आहा ।
आजु आस तैं पुरएसि मोरी, तन मन धन न्योछावरि तोरी ॥
अब कहु पथ गवन जहि पाऊँ चलउँ लगि खिन बिलँब न लाऊँ ।
तुम्ह जहँ चहहु सिधारहु तहाँ मोहि अब कहहु पथ सो कहाँ ॥
कै अब जाइ चित्र सो पावौं कै अपान वहि पथ लगावौं ।
जिउ चितसारी महँ रहा देह रही हम साथ ।
देहु सोई उपदेस मोहिँ, जहि जिउ आव हाथ ॥ १६६ ॥
जागी कहा कुँअर सुनु बाता, अबहीँ देखि चित्र तूँ राता ।
वह सो चित्र तैं देखा नाहीँ जाकर ऐस चित्र परछाहीँ ॥
चित्र देखि तैं चित्रै जाना ता महँ अहा सो नहिँ पहिचाना ॥
चित्रहि महँ सो आहि चितेरा, निर्मल दिष्टि पाउ सो हेरा ॥
जैसेँ बूँद माँह दधि होई गुरु लखाव ता जानै कोई ।
जा कहँ गुरू न पथ देखावा, सो अंधा चारिहुँ दिसि धावा ॥
मूरख सो जो चित्र मन लावै सेमर सुआ जैस पछतावै ॥

(क) फरकि कुँअर सोइ अस जागा । पाठा । १—विकल । यह पद उर्दू की प्रति में नहीं है । २—डाला । ३—मि सेमर सेइ सुआ पछताना । मारिसि ठोर भुआ डघिराना ॥

यह मूरति औ चित्र जग जो बिधि सरा सुजान ।
परगट देखहि नैन यह गुपुत जा पूजहि आन ॥ १६७ ॥
अति सरूप चित्रावलि बारी जनु बिधिन कर चित्र सवारी ।
चित्रहिं कहा जाति छबि आती यह सजीव यह बिनु जिउ जाती ॥
चित्र अधर हाइ जनु गूँगा बोलहि क बाल जस मानिक मगा ।
चित्र कटाच्छ भाव बिनु नना बोलहि क नन सब माहन सना[1] ॥
चित्र अडोल न डोल डोलावा चाहि गोनत जनु हस सोहावा ।
सायक बरुनि भोह धनु ताना सोरत जाहि लागु उर बाना ॥
चद बदन तन चपक सारी अलि सँग फिरहिं जानि फुलवारी ।
काहि लगावौं उपम तेहि अच्छर पूज न छाँहिं ।
सुर नर मुनि गन पचि मरहिं दरसन पावहिं नाहिं ॥ १६८ ॥
बदन जोति कहि उपमा लावौं ससिहर पटतर[2] देत लजावौं ।
ससि कलक पुनि खडित हाइ ह निकलक सपूरन सोई ।
ससि बदी जब दूजिक[3] दीसा ओहि बदी नित देहिं असीसा ॥
जो मुख खोलि करै उजियारा नषन छपाहि हाइ ससि तारा ॥
नैन कुरग कह नहि पारौं खजन मीन ताहि पर वारौं ।
तीन रग जा महँ नित लहिय तहि कुरग[4] कहु कसे कहिय ॥
जाकहँ नन एकौ उन हरा सा बिष बान क भया अहेरा ।
ऐसन चित्र अहरिया मारि न खोज करइ ।
जेहि उर लागे बान सा रहसि रहसि जिउ देइ ॥ १६९ ॥
आ तहि सग अनेग सहेली सब सरूप अनूप नवेली ।
उन्हक रूप बिधि अपुरुब कीन्हा करि करि चित्र जानु जिउ दीन्हा ॥
कोउ कुमुदिनि काउ पकज कली एकतें एक चाह अति भली ।
अबहीं सबै कली मुँह मूँदी भौंर चरन तें पलिन खूँदी ॥
सब चिरिनि औ पदुमिनि जाती सेवा करत रहत दिन राती ।

१—सयन = कटाक्ष । —उपमा । ३—मुसलमान लोग द्वितीया के चाँद का दर्शन कर वन्दना करते हैं । रमजान के महीने में मास भर रोजा रख कर द्वितीया के दिन ईद मानते हैं । ४—बेदाजन । ५—कुत्सित रंग का = बदरंग ।

अग्या होइ करहिं पै सोई मेटि न सकै रजायसु कोई ॥
आ जिहि ठाँव करहिं बिसरामा, जपत रहहिं चित्रावलि नामा ।

निसि बासर ठाढ़ा रहहिं लीन्हे आपन साज ।
जो पठवहिं सिप एक कहँ धाइ करहिं दस काज ॥ १७० ॥

पुनि सो चित्र लिखै भल जाना उनसौं जगत न कोऊ सयाना ।
आपन चित्र अपु पै लीखा आर को लिख जान ? नहिं सीखा ॥
जगत चितर रहे पचि हारी ओकर चित्र न सकैं सँवारी ।
जो कोई आपन चित आने अंतरजामी तबहीं जाने ॥
आपन चित्र छीन कै लेइ औ तेहिं देस निकारा देई ।
आपन चित्र जाहि लिखि दीन्हा ते सो घालि हिये मा लीन्हा ॥

एहि डर कोऊ न बीसरै, अह निसि आठौ जाम ।
लिये रजायसु नित रहहिं जपत फिरहिं सो नाम ॥ १७१ ॥

औ तेहिं सग निपुसक जाती पठवै जहा जाहिं ले पाती ।
गुन विद्या सब जाना बूझा निरमल दिष्टि पथ भल सूझा ॥
अन्न न खाहिं पानि नहिं पीयहिं, नाउँ अधार रैनि दिन जीयहिं ।
काम क्रोध तिसना मन माया, पचभूत सौं तिन्ह की काया ॥
अग्या काज बिलंब न लावा करहिं सोई जहिं दोष न पावा ।
सब की बात जनावहिं जाई अग्या होई कहहिं सो आई ॥
अग्या बिना पैग जो धरहीं अनल तेज सिखा लहि जरहीं ।

दूरि रहहिं तेहिं गनति नहिं, निकट रहहिं ते चारि ।
रचना सिरजनहार की, नावै पुरुष न नारि ॥ १७२ ॥

हौं तेहि माहँ पेरेवा नाऊँ सेव करौं चित्रावलि ठाऊँ ।
वह सो गुरू हौं ओकर चेला, वहिक नाउ हम मुँदरा मेला ॥
वही पथ माहि दीन्ह देखाई वेहि क वचन सिद्धि मैं पाई ।

दل بدست اور کہ حج اکبر است * از ہزاراں کعبہ یکدل بہتر است ۱—مि

औ सुमिरन दीन्ही वेहि केरा वेहि क नाउँ सुमिरौं हरि फेरी ॥
भूख नाहिँ औ नींद पियासा चित्रिन सुरति ध्यान घट आसा ।
भा अग्या करि साज महसू, दिन दस फिरहुँ देस परदेसू ॥
जौ लगु फिरत होइ नहिँ रागी, ता लगि सिद्ध होइ नहिँ जागी ।

भसम अँग पग पाँवरी, सीस कलपि करि केस ।
कथ पहिरि ले दंड कर, देखन निसरयौं देस ॥ १७३ ॥

सुनत कुअँर जोगी के बेना उघरे दोऊ हिय के नैना ।
मन महँ कहसि साँचु यह साजा, वह सो कौन जाकर उपराजा ॥
जहिक चित्र अस जिउ लेनिहारा, दुहुँ[1] कस होइहि सिरजनहारा ।
साजा होई मेटि पुनि जाई सिभू[2] सरीर न काऊ मिटाई ॥
जो न आपु आपहि पहिचाना, आन क पेम कहाँ हुत जाना ।
जसे कुबुध जानि कै देवा, बहुत करहिँ पाहन की सेवा[3] ॥
पाहन पूजि सिद्धि किन पाई, से मर सेइ सुआ पछिताई ।

कस न बूझि खोजौं साईं जहिक चित्र सब कीन्ह ।
जीउ देई जो चाहई, लेइ जो चाहे लीन्ह ॥ १७४ ॥

कुअँर कहा अब सुनहु परेवा, मँ तार सीष[4] मोर तैँ देवा ।
मैँ तजि पथ जात बौराना तैँ गहि बाँह पथ पर आना ॥
बूडत मोर नाउ मँझनीरा तू खेवक हाइ लाइसि तीरा ।
सोअत हौं जो अहा सो जागा, मन तजि चित्र चितेरहिँ लागा ॥
चित्र देखि न चितेरा जाना, बिनु चितेर अब दिष्टि न आना ।
अब फिरि कहु चित्रावलि बाता, जेहि के रूप आजु मन राता ॥
सुनतहि नाम दूरि भइ दाहा दहुँ मुख देखत हाइहै काहा ।

मरत जियाए जाइ कहि फिरि फिरि कहु सो बात ।
सुनिबे कहँ अमिरित कथा श्रवन भए सब गात ॥ १७५ ॥

१—कौन जानता है । २—स्वयं भू = जो बिना किसी के उपाय बना हो ।
३—मि प्रतिमा स्वल्पबुद्धीनाम् । ४—शिष्य, चेला ।

जोगी सँवरि कहै पुनि बाता वह चित्रावलि जेहि रंगराता।
बदन मयंक मलयगिरि अंगा चंदन बास फिरहिं अलि संगा॥
जो अलि अंग बास वह पाई, सो तजि आन फूल नहिं जाई।
बहुतन्ह सिर करवट गहि सारा, इच्छा करि मधुकर आनारा॥
बहुत नाउँ सुनि जोगी भए मूँड मुँडाइ देसंतर गए।
ससि सूरज औ नखतन पाती बरने होहिं दिवस औ राती॥
भूषन सोभ पाव तेहि अंगा, नाते निसि दिन छाँड न संगा।

चाँद न सरवर पावै, रूप न पूजै भानु।
अब सुनु तन मन कान दै नख सिख कहौं बखानु॥ १७६॥

प्रथमहिं कहौं केस की सोभा, पन्नग जनौं मलयगिरि लोभा।
दीरघ बिमल पीठि पर परे लहर लेहिं बिषधर बिषभरे॥
कच अहि डसा जनम नहिं जागा मंत्र न मानै मूरि न लागा।
बिथुरी अलक भुअंगिनि कारी कै जनु अलि लुबुध फुलवारी॥
कै जनु बदन तराने जौ तपा, सिंगिटि सुमेरु पाछु तम छुपा।
किमि कच बरनौं राजकुमारा मति न समाइ देखि अँधियारा॥
मृग मदवास आव तेहि केसा पौन जाइ लइ देस बिदेसा।

सिरजी तब बिधि स्यामता, जब जग सिरज कीन्ह।
ते कच सिरजे सार लै सेष बाँटि कै दीन्ह॥ १७७॥

सीस सँवार माँग बिधि कीन्ही तातें छाँड़ माँग पर दीन्ही।
सूर किरन करि बालहि धारा स्याम रैनि कीन्ही दुई फारा॥
पंथ अकास बिकट जग जाना, का न जाइ जाहि पथ भुलाना।
तहाँ देखि अलकावलि[२] फाँसा, पथिन्ह परा जीउ कर साँसा॥
जिउ परतेजि चलहिं तेहि माहीं और बाट नहिं केहि दिसि जाहीं।
बेनी सीस मलयगिरि सीसा माँग मोति मनि माथें दीसा।
सूर समान कीन्ह बिधि दीया, देखि तिमिर कर फाट्यो हीया॥

१—मलयागिरि चंदन। २—अलकावली। ३—स परित्यज्य = त्यागक।

स्याम रैनि महँ दीप सम नहि अँजार जग होइ ।
अछज भुअँगम माहि बसि दिया मलीन न होइ ॥ १७८ ॥

पुनि लिलाट जस दूजि क चंदा दूजि छाडि जग वो कहँ बंदा ।
पटतर दूजि होति जो होती दूजि माँह पुन्यो क जाती ॥
भाग भरा अस दिप लिलारा तीनहुँ भुवन होइ उजियारा ।
होइ मयंक खीन जहि रीसा सो लिलाट कामिनि पहँ दीसा ॥
कुंदन तिलक सोभ कस पावा मनहुँ दुइज माँ जीउ मिलावा ।
मुकुता पाँति चहूँ दिसि पाई मानहुँ मिली किरितिका आई ॥
जाहि लिलाट भाग मनि होइ अस सँजोग सुभ देखै सोई ।

सुभ सँजोग वहि एक छिन जा कहँ सनमुख होइ ।
जौ जग लागै गरह जिमि बार न बाँकै कोइ ॥ १७९ ॥

कुटिल भौंह जानहुँ धनु ताना इंद्रधनुष तेहि देखि लजाना ।
जानहु काल जगत कहँ कढा निसि दिन रहै पंचन[2] जनु चढा ॥
भौंह फिराइ जाहि तन हेरा देखत काल होइ तेहि केरा ।
एही धनुष जुध मनमथ लीता क परनाम काम तन जीता ॥
भौंह धनुष लखि इंद्र सँकाना, सब जग जीति सरग कह ताना ।
कौन सो बली जो न गै मारा तीनहु लोक एक हुंकारा ॥
ऐस धनुष जग आर न दूजा (क), देवतन्ह आइ बाहुबल पूजा ।

अहिपुर नरपुर जीति क सुरपुर जीता जाइ ।
अब दहु कछू न जानिय का कहँ धर चढाइ ॥ १८० ॥

बाँके नैन तीख अति दोऊ जगत जाहि सर पूजि न कोऊ ।
राते कौंल मधुप तेहि माहीं, कहत लजाउँ तेउ सर नाहीं ॥
कौंल देखि ससिहर कुम्हिलाने, ए ससि सग सदा बिगसाने ।

१—मृगांक, चन्द्रमा । २—कुलिका = कचनचिया । —सत्य चा ।
४—यह उर्दू की प्रति मे नहीं है । (क) अस धनुधारी और न दूजा । पाठा ।

स्याम सेत अति दोऊ सोहाए खंजन जानु सरद रितु आए।
के दुइ मिरिग लरत सिर नीचे काजर रेख डोर गहि खींचे॥
नाउ समुद्र जनु उठहिं हलोरा पल महँ चहत जगत सब बोरा।
तीछ हेर जाहिं चपु आऊँ चली मीन जनु आगें पाछें॥
बर कामिनि चपु मान सम निमिष हर तन जाहि।
बहुरि जनम भरि मीन जिमि पलक न लागै ताहि॥ १८१॥
बरुनी बान तीख अरु घने सोई जानु जाहि उर हने।
मद सिराय न भाल सँवारे जाके हने सबै मतवारे॥
तापर बिष काजर सों बाँधा सोइ मरै जाहि तन साँधा।
लाग न बरुनि बान जेहि हीया, सो जग माँह अमिरथा जीया॥
जतै अहैं जीव जग माहीं साधन जाइ बान सो खाहीं।
जगत आइ हार रहा निसाना मकु हौं सौंह मारि तहि बाना॥
गलि गलि हाड रह जो आई पठ जो लागि जाइ ता जाई।
एक मूँठ[1] कै छाडनै लागे बान अलेख।
जग महँ ऐसन पारधी[2], दूसर काहु न देख॥ १८२॥
सुभग सरप सुरंग अमोला जनु नारँग बरनारि कपोला।
ईंगुर केसर जानु पिसाए दोऊ मिलाइ कपोल बनाए॥
और सो देखि कपोल लुनाई मती हीन कछु बरनि न जाई।
तेहि पर तिल सो देइ अस सोभा, मधुकर जानु पुहुप पर लोभा॥
कै बिधि चित्र करत कर धर (क) करत उरेह बूँद खसि परे।
बदन सिंगार सोभ जो पावा रहेउ न दिन पुनि सो न उचावा॥
वह तिल जाहि दिष्टि तल परा, भयो स्याम तस तिल तिल जरा।
नहि चीन्हत कोउ काहु कहँ जा जग माहिं न होति।
परछाहीं तिल एक की, सब नैनन्ह महँ जाति॥ १८३॥

१—जितना एक बार छोड़ा जाय। २—तीर चलानेवाला।

(क) क चित्र करत कर धर। पाठा।

किमि बरनौ नासिका सोहाई नासिक सुनि मति नियर न जाई ।
खग्ग धार कहि आवै हाँसी कौन खग्ग जहि उपमा नासी ॥
तिल कफूल कबितन्ह चित धरा उहो लजाइ पुहुमि खसि परा ।
(क) इह उआँर पुनि ऊँच कठोरा उपम दूत मन मान न मोरा ॥
उह सुर भान जगत उपराइ ससि सूरज जहँ उगै कराइ ।
तेहि पर हरि रही मति मोरी उपमा नहिँ कहि लावौं जोरी ॥
केसरि जा पहिर रहसाई नग कुंदन छवि पाउ सोहाई ।

मुकुता डालन निरखि मन सुर नर इह गुनाहिँ ।
कहत सोहागिनि नासिका तिहुँ पुर पटतर नाहिँ ॥ १८४ ॥

अधर सुधा निधि बरनि न जाइ बरनत मति रसना पनियाइ[२] ।
छुए न काहु अछूते राखे प्रथम दिष्टि मुख अजहुँ न चाखे ॥
बिहुम[३] अति कठोर औ फीके सुरँग मृदुल दुख दायक जीके ।
बिंब अरुन सो सरि न तुलाना अति लजान बन जाइ दुराना ॥
बदन मयंक जगत उँजियारा अमिरित अधर प्रानदेनिहारा ।
का बरनौ का मति भइ मोरी उत्तम अउम लगाएउ जोरी ॥
ससि अमिरित देवतन्ह कै जूठा जगत जान यह अधर अजूठा ।

लोयन जाहि कटाछ्छ सर मारि प्रान हरि लीन्ह ।
अधर बचन तत खिन दीऊ अमिय सींचि जिउ दीन्ह ॥ १८५ ॥

दसन जानु हीरा निरभर बदन आनि मुख सपुट धर ।
इक इक नग दुहुँ जग कर माला जा जिउ देइ कहै सो खोला ॥
पान खान कछु भए उघारे दिष्टि पर मंजुल रतनारे ।
जनु दुइ लए मुकुता रँग भरे मंजन लागि आइ मुहँ धरे[४] ॥

क सरस तकउ प्रति मानी है ।

१—विचारत है । —पानी आता है । ३—बहुत मगा ।
४—मंजन लागि अमी मुह धरा पाठा । ५—अमिरित छियो आनि कर पाठा ।

कै देवनन्ह सँसे कीन्ह कियारी अमिरित सानि बारि अनुसारी।
दाडिम बीज तहा ले बोए, रखवारे राखे अहि पोए॥
निसि बासर ते निकट रहाहीं मकु सुक पिक खजन चुनि जाहीं।

इक दिन बिहसी रहसि कै जोति गई जग छाइ।
अबहूँ सोरत वह चमक, चौंधि चौंधि जिय जाइ॥ १८६॥

तेहि भीतर रसना रस भरी कौंल पाँखुरी अमिरित भरी।
दसन पाँति महँ रही छिपानी बोलत सो जनु अमिरित बानी॥
बोलत बैन अमी जनु चूआ सुनत जियै बरषन कर मूआ।
ज मन अहि कुतल[1] ले खाए बोलि लि धन सबै जियाए॥
जाके सवन बचन उन डारा ताकर बचन जीउ देनिहारा।
उकतिन[2] बोलन रतन अमाली आँब चढी जनु कोइल बोली॥
व्याकरना जानै सगीता, पिंगल अमर पढहि सुनि गीता।

रहहिं रैनि दिन बाद मह, चिचिलि चखु औ बैन।
त्यों त्यों रसन जियावई ज्यों ज्यों मारहिं नैन॥ १८७॥

आँब सूल सम ठोढी भई वह आमिल यह अमिरित भई।
तेहि तर गाड अपूरब जावा पाक आब जनु अँगुरी टोवा॥
पाका आँब गात पियराना, वह कुमकुम जनु ई गुर साना।
चिबुक कूप अति नीर गँभीरा, जिव अधर सँजीव जेहि नीरा॥
अमिरित कुंड अगम औगाहा, जा तहँ परा निकास न चाहा।
ताहि कूप ढिग रहस न जाहीं, बूडन कहँ मुनि लालच[4] कराहीं॥
परहिं जाइ मन रहइ न देई, कुतल काँट काढि कै लेई।

नैन पियासे रूप जल पीवत जेहि न अघाहि।
कूप चिबुक जो मन परै, बूडि बूडि रहसाहिं॥ १८८॥

१—कश, बाल। २—उक्तिन = युक्ति से। ३—नोक।
४—चाउ, इच्छा।

सिंधु सुता सम[1] सवन अमोला, जल सुत[2] बचन लागि बिधि खोला।
ज अमाल नग जगत बखाने नारि सपन महँ सबे समाने॥
ग्यान बात बिनु आन न सुना, सुनत मोनि तबहीं सिर धुना।
निसि दिन मुकुता इहे गुनाहीं खजन झाँकि झाँकि जिमि जाहीं॥
कचन खुटिला जा न बखाना गुह सिष देइ लाग ससिकाना[3]।
राहु जुद्ध कहँ सपरि निसंका दुहुँ कर लीन्हे सेलि मयंका॥
औ पुनि सोभै खुभी सोहाई अबही तरिवन चढा न जाई।

कलभ दसन खँभिया दोऊ सोऊ पट तर नाहिं।
एक छिन देखें जनम भरि खुभी रहें जिउ माहिं॥ १८९॥

अब सुनु बरनौं गीव सुहाई बिधि कर चाक भँवाइ[4] चढाई।
अँगुरिन बीच रही जो रेखा सोइ चीन्ह रेखा तहाँ जा देखा॥
केलि सम कौतर[5] की रीसा तत पिन चलो लाइ भुइँ सीसा।
नाचत मोर गीव सर जोवा, तबहीं सीस पाइ धरि रोवा॥
सख न सम भा साँझ सँकारा तातें जहँ तहँ करै पुकारा।
तबही छरन[6] जान अपछरा भूषन लाग न बाँधै छरा॥
वोहीं कंठ जानु जिन्ह दीठी अमिरित चाहि न पूर मीठी।

सोहत हाँस जराउ गर बदन हठ निकलंक।
सर[7] न मयंक सूर जनु दुरत राहु क संक॥ १९०॥

दीरघ बाहु कलाई लोनी अति सुंदर जग भई न होनी।
दुहुँ पौनार[8] सोऊ सर नाहीं, तातें रंध[9] कलेज माहीं।
सुभ्र भुजन पर टाँड[10] सोहाई, टाँड तहाँ छबि पाव सवाई॥
देखि भुनहि गन गंधब माथा, एक सो इंद्र बज्र पुनि हाथा।

१—सीप। २—माती। ३—चकल से चक्का टकर अथवा सङ्ग। ४—चुभी हुई गई। ५—घुमा कर। ६—कंकृतर। ७—छरण = विनाश, हीनता वा भूल। ८—हसुली, गल का एक आभूषण। ९—बराबरी कर सका। १०—रंध = छेद। ११—एक बाहु का आभूषण।

देखि सो मजुल सुभ्र कलाई, का न गयौ बनफलै सिधाई(क) ॥
वहि सग देखु जा जुरी हथोरी[1] कौल पाँखुरी ईंगुर बोरी।
विद्रुम बेलि सो अँगुरी दीसी वह कठोर यह मूँगफली सी ॥
अँगुरिन मुँदरी जरित की सोह छला प्रति पोर।
अमीकरन नग आखि जनु गाठि कनक कै जार ॥ १९१ ॥
हात उतग सिहन[2] निरमरे, एक डारि दोइ नारँगि फरे।
कनक कटोरी दुइ गुन भरीं, सकर पूजि उलटि जनु धरीं ॥
झीने पट महँ झलकन दीसी जनु भीतर द्वे कँवल कली सी।
मुकुताहल बिच सोभा कैसी, चकवा छवा बिछुरि जनु बैसी ॥
हात उतग दोऊ अति लोने, जनु द्वे बीर छत्रपति होने।
अबहीं छत्र सीस नहिं छाजू छत्रिन जहाँ तहाँ कर साजू ॥
दान दुद जारी गुन भरी दुई जनु डँका[3] उलटि कै धरी।
गढपति हयपति दुरदपति सुनि कुच कथा अकाथ।
होइ भिखारी सब चहहिं, जाइ पसारन हाथ ॥ १९२ ॥
रोमावलि अबहीं उर छीनी बरनि न सकै दिष्टि मति हीनी ॥
सधि सुमेरु लही अहि पोवा, सीतल ठाँव पाइ जनु सोवा।
अमिरित अधर बास सुनि माती, उर जनु चढो पपील क पाँती ॥
द्व नृप सौंच लागि रिस बाढी रतिपति आनि लीक जनु काढी।
सौरत रोमावली सोहाई, हेवर जाय दरलि सी खाई ॥
पाँहन हिये जोरि वहि दीसी होइ लीक वह पाहन की सी।
नींद न परी जनम भरि जागा, जिन्ह नैनन्ह होइ रही सरागा ॥
खैंची लीक हदीस की विधिना हियें विचार।
तिहुँपुर रोमावलि सरी, आन न दूजी नार ॥ १९३ ॥
नाभि कुण्ड पुनि अति गहिराई, जब चित चढै बूडि जिउ जाई।
सिधु भौंर जहँ पानि फिरावा, तह परि जनम निकास न पावा ॥

१—हथेली। २—फा सीना = छाती। ३—टका। ४—छाती।
क—को न कियो बल बली सिहाई। पाठा०।

बिगसत पकज कली सोहाई, अजहूँ भौंर बास नहिं पाई।
छीर सिंधु मथनी जब काढी, नाभि भोर आही जहँ ठाढी॥
नैनूँ[1] त कोमल सो ठाऊँ जीभ कठोर लेउँ का नाऊँ।
रोमावलि सोभा तेहि पासा, नैनूँ ते जनु बारि बिकासा[2]॥
जासों ग्यान हाथ भा हीना, जनमत धाइ नार किमि छीना।

नारि पेट जेहि अंत नहि, बारिधि गहिर गँभीर।

नाभिकुंड मन जा पर बहुरि न निकसे तीर॥ १९४॥

पातर पेट कह का काई जनु बाँधी ईंगुर की लेई।
मनहु महाउर दूध सौं पागा, सतत[4] रहै पीठि सो लागा॥
छीर न पियै अतिहि सुकुवारा, कै तँबोल के फूल अपारा॥
बिनु रस पान आन नहि खाई, सोऊ बिकल कर अधिकाई।
तेहि तर त्रिबली अति सुख देई, गढी बिधातै काम पसेई[5]॥
सोभित तीनौ रेख सोहाई, तीन भुवन नहिं उपमा पाई।
सिसुता जाति तरुनता मिली तीनौं रेख खाँचि कै चली॥

सिरजत भार नितंब के, मिलत न कीन्ह सँबधि।

मनु कटि राखे बाँधि के, त्रिबली बँधन बधि[6]॥ १९५॥

अति सुकुँवारि लँक पुनि छीनी, दिष्टि न परै बारहु तब खीनी।
देखत सकुचै देखनहारा टूटि न परै दिष्टि के भारा॥
काम कला दुई साँचे भरी सकल सोहाग जोरि जनु धरी।
बिधिनै तारि जोरि पुनि लीन्हे, तातें नाउ निगम कनि कीन्हे॥
अपने थल भूखे कहरी कोऊ कहँ कटि तिन्ह की हरी।
देखि लंक भृंगी[7] कटि टूटी, भँवति फिरै जनु सपति लूटी॥
तहँ सोहै किंकिनि कटि कसी काछे जनु आहे उरबसी॥

१—नवनात = मक्खन। २—निकसा। ३—लोंदा। ४—सतत—नित्य सदा।
५—पसाकर, सत्त निकाल क। ६—गठ। ७—एक कीडा, बिलनी।

सोभित किंकिन निकट कटि, मान उपम जी आइ।
हस पाँति तजि मानसर, परबत बैठे जाइ ॥ १९६ ॥

सुभ्र नितब नितबनि केरे, गए हेराइ सोई जनु हेरे।
जनु सगम दुइ परबत अहहीं एक बार न बाँधे रहहीं ॥
तेहि पर कटि सोभित निरमरी जनु सिंहिनि गेरि ऊपर धरी।
दुइ गिरि सम दोउ मगु जहँ नाहीं चित के चरन चढत बिछलाहीं ॥
मति नितब बरनत झिझकाई, मति की दिष्टि न आगे जाई।
परगट सा कवि कीन्ह बखाना गुपत सो अतरजामी जाना ॥
जहाँ जात मन पिडुरी काँपी, तहँ की बात रहा सब झाँपी।

गुपुत जो रचना बिधि रची परगट नहिं हानिहार।
ग्यान तहाँ नाह सचरै, जानै सिरजनिहार ॥ १९७ ॥

पुनि जघा अति सु दर साजी जुगल जघ तिहुँ लोक बिराजी।
केरा खभ कलभ कर हेरी जघ निकट वे दोऊ करेरी।
अति सु दर सम तूल[1] सुहाए जनु बिधि अपने कर चिकनाए ॥
सुरति करत सुख सपति हरी मन की दिष्टि थलकि तहँ परी।
गौन समै जनु चमकत चूरा, हस गयद गरब धरि चूरा[2] ॥
सीस धुनै गज लज्जित भए हस मानसर बूडन गए।
छवाछीन भूषन छबि हरी पायल आइ पाय लै परी ॥

चकइ जराऊ जेहरी जेहरि जिउ लै जाइ।
सुर नर ह झाँझर भए देखि सो झाँझरि पाइ ॥१९८॥

चरन कँवल पर मन बलि गए जहि मगु चले तहाँ रज भए।
मकु तेहि पथ गौन पुनि करई, भूलि पाँव इन्ह नैनन धरई ॥
तरवा ऊधरेख[5] सुभ बाँची सुरनर हियँ लीक जनु खाँची।

१—सुडाल। २—नाश किया। ३—एक आभूषण। ४—झाँझ, एक पैर का आभूषण। ५—ऊध्व रेखा पैर मे होना सामुद्रिक मे शुभ माना जाता है।

जेहि जेहि पथ चरन त चले कैते हिये पांय तर मले ॥
रकत लाग रह पायन लगा जानहिं लोग महाउर रगा ।
चलत चरन भुइँ परे न देहीं सुर नर मुनि नेनन पर लेहीं ॥
अनवट बिछिया अगुरिन भरे मेन सोनार रतन नग जरे ।
जेहिं चित चित्रावलि चरन चित्र किए बिधि आनि ।
ते चषु मगु बाहर कियो हियें सरावर पानि ॥ १९९ ॥
वह चित्रावलि आहै सोई तीन लोक वदै सब कोई ।
सुर पुर सबै ध्यान ओहि धरहीं अहिपुर सबै सेव तेहि करहीं ॥
मृतुमडल[1] जो देखा हरी घर घर चले बात तेहि केरी ।
पछी वोहि लगि फिरहिं उदासा, जल के सुत[2] आहि नाउँ पियासा ॥
परबत जपहिं मौन होइ नाऊँ आसन मारि बैठि एक ठाऊँ ।
पुहुमी दहु जो सरग लहु बढी सेवा करतहिं एक पग ठाढी ॥
जानि बूझि जो ताहि बिसारा सो मनु जियतहिं मरा अडारा ।
अति सुरूप चित्रावली, रवि ससि सर न करेइ ।
धन सो पुरुष औ धन हिया ओहि क पथ जिउ देइ ॥ २०० ॥
भए सुनत चित्रावलि बरना कुँअर नैन पवत क झरना ।
गयो चेत चित रह्यो न ग्याना जनु पहि सागर लच्छ हराना(क) ।
माथें चढी लहर जनु आई बिसम्हरि[3] परा पुहुमि मुरझाई ।
गहि जोगी पुनि कुँअर उठावा खेह झारि सन्मुख बैठावा ॥
कहेसि कँअर कस भए अचेता बहु सम्हारि हियें करु चेता ।
एकौ बात कहै नहिं पूछी, जनु गा जीउ देह भइ छूछी ॥
मूँदे नैन साँस पुनि लेई सुनै न कछू उतर नहिं देई ।
प्रेम मत्र जोगी कहै, कुँअर स्रवन महँ तत्त ।
सुनत नाउ चित्रावली निजन[4] गया विष सत्त ॥ २०१ ॥

१—पृथिवी । २—जल जन्तु । (क) जनुएहि दसा मरगनियराना । पाठा ।
३—बेहोश हो के । ४—निरधन = नाश ।

जबहि कुँअर जागा जनु सोई गहिसि पाउ जोगी कर रोई ॥
सो तुम रूप बखाना देवा भइ मनसा होइ उडउँ परेवा ।
पुनि मन महँ अस होइ गियाना जाउँ कहाँ जो पथ न जाना ।
कहु सो केहि दिसि नगर अनूपा जहाँ बसै वह नारि सुरूपा ॥
चलौं न करौं बिलँब एक घरी निष्फल जाइ घरी जो टरी ।
और न मोरे हियें बिचारा सीस मोर ओ चरन तुम्हारा ॥
किंचित रेनि जाइ तहँ ताईं चरन लाइ लै चलहु गोसाँईं ।
लोचन रह चकोर होइ हिया सकल उनमाद ।
मकु ससि मुख चितावली देखौं तुव परसाद ॥ २०२ ॥
कहेसि कुँअर यह पंथ दुहेला अस जनि जानु हँसी औ खेला ।
अगम पहार बिषम गढ घाटी पखि न जाइ चढे नहि चाँटी ॥
खोह घराट जाइ नहिं लाँघी देखि पतार काँप नर जाँघी ।
जाइ सोई जो जिउ परतेजा सार पाँसुली लोह करजा ॥
तैं अबहीं घट आप न बूझा बार देखि पिछवार न सूझा ।
बेटे देइँ सेंध पिछवारे मूँसहिं तसकर घर अँधियारे ॥
तैं दै बार रहा गहि कूँजी रही न एको घर महँ पूँजी ।
निसिबासर सोवहि परा जागेसि नहिं पल आध ।
घर न सँभारसि आपना का लेवै एहि साध ॥ २०३ ॥

एहि मगु केर करै जो साधा चलत निचित न होइ पल आधा ।
चाहै चरन चुभै जो काँटा चलै बराइ मारग नहिं छाँटा[1] ॥
जौ पल एक कोऊ बिलँमावै, साथ जाइ पुनि पथ न पावै ।
एहि मगु माहँ चारि पुनि देसा, जस जस देस करै तस भेसा ॥
चारिहु देस नगर हैं चारी पथ जाइ तेहि नगर मँझारी(क) ।
चारिहु नगर चारि पुनि कोटा, रहहिं छिपे एक एक क ओटा ॥
जो कोउ जान न चार[2] बिचारा, बीचहिं मारि लेहिं बटमारा ।

१—छाड । (क)—बीचहि मारि लाहँ बटपारी । पाठा । २—आचार ।

चारि देस बिच पथ मो अब सुनु राजकुमार।
बेगर बेगर बरन गुन जस कछु तहँ ब्यवहार ॥ २०४ ॥

प्रथम भोगपुर नग्र सोहाया भोग बिलास पाउ जहँ काया।
दुइ दुआर कर कोट सँवारा आवागमन यही दुइ बारा।
पुनि दूनहुँ दिसि अपुरुब हाटा अनबन भाँति पटन सब पाटा॥
जा कछु चाहिय सबै बिकाई मिरतक देखि जीभ ललचाई।
कहूँ पचअमिरित जेवनारा कहूँ सुगंधि करै महकारा॥
कहूँ नाच कहुँ कथा अनूपा कहुँ मिरदुल अति ससिहर रूपा।
इंद्रपुरी जनु चहुँ दिसि छाई जो आवा सो रहा लुभाई॥
घर घर मोहन जानहीं पथहिं बस कै लेहिं।
माया रूप देखाइ कै आगे चलै न देहिं ॥ २०५ ॥

बसै सोई ओहि नगर मँझारी लेखा जानि होइ बेपारी।
सूधे मारग आवै जाई माँटी लेखें बिपै पराई॥
सो देखै जेहि दोष न पावा सुनै सोई जो पंडित सुनावा।
खाइ सोई जेहि ऊठ साँसा फिरै न माथ लेइ सो बासा॥
मिलि क पाँच देहि जउनारी, भुगत ताहि साई बपारी।
आपन अस मागि कै लेई राज अस बिनु माँग देई॥
पाँच जूनि कै राजजोहारू करत रहै जस जग बेवहारू।
धरे छोह चित नेह सों एँस की ठार रिसाइ।
ऐसी चलन चलावहि तेहि भल पाँच कहाइ ॥ २०६ ॥

पथी जहि आगे है जाना सो ब्यवहार कहौं करु काना।
अंध होइ तस मूँदै नैना बहिर होइ तस सुनै न बैना॥
रसना मोन होइ नहिं भाषा, घट रस अमी न पावै चाषा।
मूँदै नास साँस नहिं आवै काम क्रोध के छार जरावै॥
दुष्ट के हनत न पाछे टरई पगु जो उठाइ आगु मन धरई।

१—अलग अलग। २—राजा का वदना = निमान। ३—मि ।

گوش بند و چشم بند و لب بند * گردنکشی سر خس نر ص بند

बिलँब न लावै मन जग मदा निसरै तोरि मीन जिमि फदा ॥
पथी जो ग्रोहि बार लहु जाई आगु कवार उघारि कै जाई ।

चित रहसत पट ऊघरत , मिटै नैन अँधियार ।
जैसें बाते स्याम निसि होइ निमल भिनुसार ॥ २०७ ॥

आगे गोरखपुर भल देसू , निबह सोई जो गोरख भेसू ।
जहँ तहँ मढी गुफा बहु अहहीं जोगी जती सनासी रहहीं ॥
चारिहु ओर जाप नित होई , बरवा आन करै नहिं कोई ।
काउ दुहुँ दिसि डोलै बिकरारा काऊ बैठि रह आसन मारा ॥
काहू पचअगिन तप सारा कोऊ लटकइ रूखन डारा ।
कोऊ बैठि धूम तन डाढे कोउ बिपरीत रहे होइ ठाढे ॥
फल उठि खाहिं पियहिं चलि पानी , जाँचहि एक बिधाता दानी ।

परम सबद गुरु देइ तहँ जहि चेला सिर भाग ।
नित जेहि डोढी लावई रह सो डोढी लाग ॥ २०८ ॥

नाहि देस बिच आहि सो पथा , चल सोई जो पहिरै कथा ।
तेल नाहिं सिर जटा बरावै रजक नासि ज बसन रँगावै ॥
भसम देह पग पाँवरि होई , एहि मग बिकट चलै पै सोई ।
मेखलि[1] सिंगी चक्र अधारी , जोगौटा[2] रुद्राप[3] अँधारी[4] ।
भल मँद बसें तहाँ इक भेसा होइ बिचार न राँक नरेसा ॥
एही भेष सिद्ध बहु अहहीं एही भेष बहुत ठग रहहीं ।
एही भेष सों बहु ठग आए , एही भेष सों बहुत ठगाए ॥

जो भूले एहि भेष जग , खुले न तेहि हिय आछ ।
आगे चलैं न तहँ रहैं , बरु फिरि आवैं पाछ ॥ २०९ ॥

जो काउ आगे चाहै चला , परगट देह भेष सो रला ।

१—मखला । —सृङ्गा = एक बाजा जिस गोरखपंथी रखते हैं । यह सोग का होता है और इसे पूजा में बजाते हैं । ३—मोरा । ४—रुद्राक्ष । ५—डंड ।

पै अनर सब जानै धधा भष पत्याइ[1] सोई जग अधा ॥
घटही माँहि भेष सो लेख हिय क लोचन मारग देख ।
काया कथा ध्यान अधारी सोंगी सबद जगत प्रधारी ॥
लोचन चक्र सुमिरनी साँसा माया जारि भस्म कै नासा ।
हिय जोगोट मनसा पाँवरी प्रेम बार लै फिरि भाँवरी ॥
परगट भेख तहाँ दइ डारै आगे चलै सो पँवरि उघारै ।

रहहि नैन जो जोति बिनु दीपक पहिल मिलानु ।
पुनि ससिहर सम दूसरे होहिँ तीसर भानु ॥ २१० ॥

आगे नेहनगर भल देसू, राँक होइ जहँ जाइ नरेसू ।
भूलै देखि देस की सोभा जहँवहिँ देखतही चित लोभा ॥
जाइ तहँहिँ जहँ काइ लै जाई, ऊँच खाल सम एक देखाई ।
खाइ सोई जो कोई खिआवै, विष अमिरित एक स्वाद जनावै ॥
भल औ मद दोऊ एक लेखा दुइ न जान सब एक के देखा ।
मारि गारि जिय राख न काहू, रहस न हाउ किए कछु छाहू ॥
उतर न देइ जो काउ कछु कहा ऐसेँ रहै तहाँ सो रहा ।

पथ नाहि पुनि पथ सो ताहि देस निज पथ ।
बिनु गुरु काऊ न जानई औ पुनि पढ गरथ ॥ २११ ॥

आगे पथ चल पै सोई जाक सँग कछु भार न होई ।
डारै कथा चक्र धँधारी करै मया जिय काया सारी ॥
ऐसन जिअ जहि लोभ न होई रूपनगर मगु देख सोई ।
हेरत तहाँ पथ नहिँ पावा हरन चहै जो आपु हरावा ॥
पथिक तहाँ जो जाइ भुलाना विमल पथ तेहिँ पहिचाना ।
आवहिँ रूपनगर के लोगा परषत फिरहिँ कौन तेहि जोगा ॥
जो तेहि जोग लषहिँ जिय माहीँ आगेँ होइ नगर लै जाहीँ ।

१—प्रतीति कर । २—अनहद शब्द वा अलख ।

रूप भेष उनहिँ क सजहिँ औ सिषवहिँ सब भाव ।
ऐस न जानहिँ तेहि काऊ , आन कहूँ ते आव ॥ २१२ ॥

रूप नगर अति आह सोहावा जेहि सिर भाग सो देखै पावा ।
अतिहिँ डेरावन अतिहि सो ऊँचा काटि माँह कोउ एक पहूँचा ॥
बहुतन्ह कीन्ह जोगि कर भेसा चले छाँडि घर मन औहि देसा ।
तैं सुखिया सुख कौतुक राता का जानसि दुख पथ कि बाता ॥
भोजन बिनु मुख जाइ सुखाई पानी बाजु कवल कुम्हिलाई ।
छीन बसन जेहि अँग न सोहाई कथा कैसें सकै उठाई ॥
सैरि माँह जिन बनउर टोवा[1] कुस साथरी सो कैसें सोवा ।

बसन अपूरब पहिरि तन लावहु मोद सुबास ।
अहहिँ नारि अछरी सरस , मानहु भोग विलास ॥ २१३ ॥

---

(१४) उद्योग खंड ।

कहिसि कुँवर सुनु गुरू परेवा , सुनि सो पथ उपजे उर केवा ।
अब मोहि उहै पथ पै जाना , प्रेम प्रीति लै कीन्ह निदाना ॥
मैं सुख तजि दुख लीन्ह सम्हारी , कै जिउ जाइ कि मिलै सो नारी ।
मोर दुख आदि सँघाती आहा मिलै आइ मैं सोइ सराहा ॥
काकर सुख काकर यह राजू , दुखियहि अपने दुख सौं काजू ।
भलेहँ नारि अछरी सम पाई , मेघ पियास कि औसहि जाई ॥
जौं चकोर चँदहि चित लावा , कहा सो तरागन महँ भावा ।
राज पाट सुख सकल अब , मोहिँ न कछू सोहाइ ।
चित लाग्यो चित्रावली , दुहुँ बिधि कब लै जाइ ॥ २१४ ॥
जब ते चित चित्रावलि महियाँ इहाँ क रहन न जानौं कहियाँ ।
सक सँकोच न एकौ हियँ मोहि अब प्रेम पथ सिर दियँ ॥
अस साहस उपजा जिय माहीँ , अहै नियर दूर जनु नाहीँ ।

१—टटोला ।

जो बिधि देत पंख तन मारे अबहीं चलि उडि देखत तारे ॥
अगिनि होइ तो सनमुख जाऊँ समुद होइ तो साँह धसाऊँ।
अँकगरा सम गनौ पहारा लेखौं समुद हिय मह नारा ॥
कबलौं रहौं परा घर घरे कहु उठि लागौं पंथ सबेरे।
मैं अनाथ तुम्ह नाउँ गुरु गहि रैं चहु सम डोर।
तौं मोर अगुवा पंथ तह मैं पिछलगुवा तोर ॥ २१५ ॥

निहचै प्रेम छुरा इन्ह पिया उतरे माँत[1] न जा लहु जिया।
सुना परवा कुँअर कि बाता निहचै कहसि कि यह आहि राता॥
निहचै प्रेम पंथ इन्ह गहा राज पाट तजि दुख सम्रहा।
अब लै चलौं बिलँब नाहँ लावा ल चित्रावलि आस पुरावौं ॥
वै पुनि अबलहुँ बहु दुख सहा, दहुँ घट मँह किमि जिउ आहि रहा।
जस वह यहि के दरस पियासी, तस यह तोहि लगि दून उदासी॥
अब जो मिलाहँ बहुत सुख होई, आ सुख तिनहि जा देखै कोई॥
मान जगत तेहिं जनम ल, बहुत भाँति सुख होय।
इहि सम सुख नहि आर दुख, मिल जा माते दोइ ॥ २१६ ॥

कहसि कुँअर तैं साहस बाँधा चल अब तोर भार मैं काँधा।
अब तोहि रूपनगर ल जाई चित्रावलि सौं देउँ मिलाई ॥
पै कहु मोहिं घर छाडब कसे मया फाँस निरवारब[2] कैसे।
मात पिता लागहि सँग दोऊ, एकसर तोहि न छाडौं काऊ ॥
कुटुँब लोग जन परिजन तारा सब मिलि करहिं मया नहिं थोरा।
मया मोह घर घरे आवा बिछुरत लोग सब दुख पावा ॥
यह सो पंथ खरग की धारा सहस माँह कोउ गवन पारा।
बन बीहर नारा नदी लाँघत बहु दुख होय।
आपनि आपनि तहँ परै काहु कि सुनै न कोय ॥ २१७ ॥

१—नशा, मद। २—मिलकर निबटेगा या मिल कर गँवाने दो।
३—दूर करना, छोड़ना।

कहेसि कुँअर पूछहु का माहीँ आपन भार दीन्ह मैं तोहीँ ।
हौं अजान तू पँडित सयाना पडित पूँछै जानि अजाना ॥
करहु सोई जा महँ भल होई जा तुम कहहु करौं मैं सोई ।
मैं बिचारि देखा मन माहीँ भाइ बधु काउ काहु क नाहीँ ॥
का कर पितु औ का कर माता, कहाँ क लोग कुटुंब कर नाता ।
जस दिन बातैं परै अँधेरा पछि आइ तरु लेहिँ बसेरा ॥
भएँ भार दिनकर परगासा, नैन कौंल पुनि करहिँ बिगासा ।
रबि प्रसाद पथ सूझई मिटै नैन अँधियार ।
जाहिँ जहा ते आइ इत, तजि तरुवर की डार ॥ २१८ ॥
कहिसि कुँअर अब आपु सम्हारहु राज काज कर साज उतारहु ।
काढहु दगल सुहावन राता पहिरहु चिरकुट कथा गाता ॥
मनि कुंडल मकराकृत डारहु, फटिक मुंदरा[1] स्रवन सँवारहु ।
गेवहु चंदन भसम चढावहु किंगिरी गहहु वियोग बजावहु ॥
तजहु सेल कर लेहु अँधारी और सुमरनी चक्र अधारी ।
सिंगी पूरहु जटा बरावहु, खप्पर लेहु भीख जहि पावहु ॥
काँधे लेहु बाघि मृगछाला गीवँ पहिरहु रुद्राष क माला ।
करहु कान जनि एकहु कहै कोऊ जौ लक्ख ।
पहिरि लेहु पग पाँवरी बोलहु सिरीगोरक्ख ॥ २२० ॥

(१५) प्रस्थान खंड ।

कीन्ह कुँअर जो जोगी कहा, देखत लोग अचँभौ रहा ।
बोलि सुबुधि सौं कहा बुझाई मात पिता सौं कहियहु जाई ॥
पहिलैं पालागन जस अहा, तौ पुनि कहब कुँअर अस कहा ।
आपन जिउ मैं खोआ जहाँ पाएउँ चाह चलेउँ उठि तहाँ ॥
रूपनगर है दक्खिन देसा चलेउँ तहाँ करि जोगि क भेसा ।

१—कुंडल, यह चक्र के आकार का होता है और गोरखपंथी साधू इसे कान पहिनते हैं ।

चित्रावलि राजा की बारी जिहि क बिरह दुख अहौं दुखारी ॥
परम सँजोग जाइ मकु पावौं, आपन जीउ माँगि ल आवौं ।
तुम्ह चित चिता जनि करहु हम अस आउ बिचारि ।
जौ घट जिउ है फिरि मिलहिं नरबर कोनि जोहार ॥ २२१ ॥
तत घन दोउ जन करि उपचारी[1] झोलि मतरा लीन्ह सँभारी ।
नैनन्ह महँ लुकअंजन दीन्हा औ मुख घालि गोटिका लीन्हा ॥
डडा ठोकि चले उठि दोऊ न देखहिं उन्ह देख न कोऊ ।
देखत लोग अचक होइ रहे कहाँ भए बिधि ए जो अहे ॥
जत कत धावहिं जहँ तहँ जोवा दिष्टि न आव करें सब रावा ।
देखि चरित्र नैन हिय जागे आपु आपु कहँ रावन लागे ॥
जस ये देखत गए हेराई एक दिन हमहूँ जाब बिलाई ।
कौन भरोसा देह का, छाडहु जतन उपाइ ।
कागद की जस पूतरी पानि पर घुलि जाइ ॥ २२२ ॥
कही काहु राजा सों जाई कुँअर गया कछु चटक[2] लाई ।
जोगी एक कतहुँ तें आवा नहिं जानी का भेद सुनावा ॥
कै कछु आनि खियाएसि मूरी कै पढि कै सिर मलेसि धूरी ।
झगा[3] फारि वह पहिरिसि कथा कोऊ न जान गयो केहि पंथा ॥
गयो सभन्हि पुनि चेटक लाई देखत देखत गया हराई ।
गयो कौन दिसि काहु न जाना के अकास के धरनि समाना ॥
बल एक सुबुधि निकट प रहा तासो कछुक सँदेसा कहा ।
राजा सुनि पुहुमी परे परी मँदिल महँ हूल ।
धाइ लछिमिदेइ माता ब्याकुल फारि दुकूल ॥ २२३ ॥
घर घर नगर परा सुनि सोगू रावँ बार बूढ सब लोगू ।
फिरि फिरि राजा खाइ पछारा, रानी बदन रुहिर कै धारा ॥
तोरि कस औ सीस उघारा को ले गयो भोर मों बारा ।

१—तान्त्रिक प्रयोग । २—तन्त्रिक प्रयोग । टोटका । जादू ।
३—लबादा = जामा ।

निकट होत अस होत न भगा जोगिनि होइ जाति हौं सगा ॥
मैं पापिनि कछु जिय न बिचारा बारे दिनन दूरि कै डारा ।
पूत बियोग मरत हौं झूरी छूँछ जानु मेलि सिर धूरी ॥
को अस आह देखावै पथा जोगिनि होउँ पहिरि गर कथा ।
गात गात झागा भए टूटे सिर सिर केस ।
राउ राँक सब रोवई रोव नगर नरस ॥ २२४ ॥

---

(१६) सुबुद्धि खंड ।

सुबुधि आइ तहँ देखै कहा घर घर सोग नगर महँ अहा ।
राजा बिकल सँभार न आपू औ रानी बहु करै बिलापू ॥
कहसि बाँह गहि चेतहु राजा तुम्ह पुहुमीपति सोग न छाजा ।
जौ तुम्ह पुरुष मरौ अस रोई मेहरिन्ह[1] का समुझावै कोई ॥
छमा करहु अब सुनहु नरेसा चलत कहा जो कुँअर सदेसा ।
लान्यौ मातु पिता क पाया कहसि तजहु जनि जिय ते माया ॥
सपने जीउ खोइ जहँ आएउँ तेहि की चाह इहाँ अब पाएउँ ।
दच्छिन देस नरस एक चित्रसेन तेहि नाउँ ।
तेहि घर धिअ[2] चित्रावली ससिमुखि कहत लजाउँ ॥ २२५ ॥
रूप नगर तहँ बसै सो नारी, पुहुमी बिधि अछरी औनारी ।
चित्र एक वै लिखा बनाई मोर जीउ ते लिन्ह चोराई ॥
सो न चार जिन जीउ चारावा चोर सो जो अस चार बनावा ।
पाएउँ खोज चार बस जहाँ अगुवा मिलो चल्यौं उठि तहाँ ॥
चोर सुनत जो बिलँब न लावै उठि धावै तहँही पै पावै ।
जो बिधि करै न आगे भगा, आनौं जीउ चार लै सगा ॥
भा बिचार अस हम चित माहीं, तुम्ह चित करुन[3] करहु कछु नाहीं ।

१—स्त्रियों का । २—सदुहिता = कन्या । ३—करुणा = विलाप ।

इहै सँदेसा कहत खन ठाढ़ भया उठि राउ ।
लुकअंजन चखु देइ कै तहँवहिँ गया छपाय ॥ २२६ ॥

अब तुम्ह चित करहु जनि हीयँ मिलै न पुनि कछु चिंता कीयँ ।
देहु दान पर हाथ उँचाई बिकट पथ किन हाइ सहाई ॥
भूखेहिँ भोजन बस्तर नाँगा देहु पियासहिँ जल बिनु माँगा ।
इहाँ देइ जा उहा सो पावे इच्छा मिले बगि पर आवे ॥
दुहुँ जग हितू दान सम नाहा बूड़त दधि काढ गहि बाहा ।
खेवक दान हाइ मँझनीरा गहि गुन खइ लगावे तीरा ॥
एक देइ दस पावहिँ लाहू दै देखहु जा न पतियाहू ।
धरनीधर नृप चत चित बरसा खोलि भंडार ।
देइ दान जो माँगै करै न कछु बिचार ॥ २२७ ॥

(१७) यात्रा खंड ।

जागी चला कुँअर सँग लाई जैसे पान पात ल जाइ ॥
आगे चला आइ सो जागी, पाछे लागा कुँअर बियोगी ॥
बन बीहर जहँ लहु नदि नारा गिरि सायर गहि बाह उतारा ।
परबत लाँघि देस एक पावा दिष्टि परा एक नगर सुहावा ॥
कंचन कोट जराउ कँगूरा चहुँ दिस बाजहिँ मंदिल तूरा ।
घर घर होइ गीत झनकारा चंदन मद बास महकारा ॥
औ चारिहु दिसि तरुवर पाँती सीतल छाँह सुहावन भाँती ।
देखत भाव चहूँ दिसि स्रवनन गीत सोहाय ।
छाँह देखि भा कुँअर मन छिनक तहाँ बिलम्हाय ॥२२८॥

जोगी कहि कुअरहि समुझावा हम पथी यह नगर परावा ।
जो अति सुंदर कोट बिराजा पथिहि दिष्टि न ऊपर छाजा ॥
पथिहि चाही दिष्टि तराहीँ चलत न चुभै काँट पग माँहीँ ।
औ तुम्ह कीन्ह जोग कर साजू, जागिहिँ कहा भाग सों काजू ॥

१—सागर । २—विश्राम लव ।

जौ अति आह सुहावन गाऊँ, छाडे गाँव केर का जाऊँ।
नियरहिँ आह देस पुनि तोरा, अब केहिँ बिलँब कीन दहुँ ओरा॥
आगे अबहिँ दूरि है जाना एहि रे गाँउ तो पहिल पयाना।
नाँच कूद कसबा[1] इहाँ ठाँव ठाँव बहुताई।
जा कहँ जाना दूरि है नियरहिँ कस बिलँमाइ॥२२९॥
ठौर ठौर पुनि छाँह सोहाई, पथी होइ सो कस बिलँमाई।
पथिहि कहा धूप औ छाहाँ चलै जरत पग भूँभर माहा॥
जोगी सोई दरस कर राता छाला पाँवरि सूरज छाता।
आगे दूरि नदी औ नारा निबहै सोइ जो तिसना[2] मारा॥
यही नगर देखत मनियारा एही नगर बसहिँ बटपारा।
एही नगर जह माहनि डारहिँ पूजी लेहिँ जाउ पुनि मारहिँ॥
सोई पुरुष जो बिलँब न लावै आँखि मूँदि कै पाँउ उँचावै[3]।
बहुत इहाँ लगि आवहीँ देखत नगर लोभाहिँ।
कोऊ एक आगे चलै नत इहवँ रहि जाहिँ॥ २३०॥
सुनिकै कुँअर चेत चित चेता, हीरदै लिखा कहा गुरु जेता।
लोचन मूँदे चरन उँचाए छिन महँ नगर नाँघि कै आए॥
ओर देस महँ ओर भावा, कीन्ह सो जो कछु गुरू सिखावा।
देखि देस औ देसाचारा गिरि सायर सब उतर पारा।
सुना सो जो कछु सुना न काना देखा सो जो न जाइ बखाना॥
गुरू जाहि चेला सँग होई, ताहि कहा बिलँमावै कोई।
नदी नार परबत की घाटी गुरुप्रसाद सब लेख माटी॥
मूँड मुडायें जग फिरे जोगी हाइ न सिद्ध।
जा कह गुरु किरपा करहिँ, सो पावै नौ निद्ध॥ २३१॥
ततखन पान बास लै आवा, भा हुलास हिय लागु सुहावा।
जगमग जोति दिष्टि जो परी, भा भिनुसार गई सरवरी[4]॥

१—नगर। २—तृष्णा। ३—उठाव। ४—शर्वरी = राति।

क जनु चमकै बिज्जु अकासा, के जनु भोर सूर परगासा।
कहसि गुरू ' अचरज एक हूआ पूरब छाडि दखिन रवि ऊआ॥
ठावँ ठावँ तारागन अहहीं सूरज उए नषत किमि रहहीं।
चौंधी दिष्टि निहारि न जाई कहुँ ससिहर कहुँ सूर दिखाई॥
पौन आजु पुनि सीतल बहा मिलन सिरान हिया जो दहा।
मिटत जाइ अँधियार चखु, हात आउ उजियार।
जेस बीते स्याम निसि, होइ आव भिनुसार॥ २३२॥

सुनि क बोला गुरू सरखा नहच रूपनगर तुम्ह देखा।
एही नगर जहँ बसे सो नारी, जहि लगि क्या भसम कै जारी॥
एही नगर तुम्ह सुना सो देखा रूप नगर कबिलास बिसखा।
यही नगर जा सों जग राता इछ तुम्हार पुजाव बिधाता॥
इहहिं छाडि जिउ गया सरीरा अब जिउ मिलिहि राखु मन धीरा।
दुख की रनि बीति सब गई सुख रवि किरन सो परगट भई॥
एही नगर जेहि लागि वियोगी इहवहिं सिद्ध हाहिं सब जोगी॥
एही ठौर कबिलास सम रूपनगर तेहि नाउँ।
कतहुँ हाइ कोउ जोगी, सिद्ध होइ एहि ठाउँ॥ २३३॥

ऊँच जा देखहि जेस सुमेरा, सो मन्दिल चित्रावलि केरा।
अति बिचित्र जहँ कीन्ह कटाऊ, चलि न जाइ अति बिकट चढ़ाऊ॥
ता ऊपर जो कुदन मडी, सो चित्रावलि की चाखडी[२]।
रतन पदारथ मानिक जरी सुरपुर हियें आनि जनु धरी।
सात धौराहर ऊपर ठाऊँ, कहहिं सब सुखमदिर नाऊँ॥
तहाँ निवास करै सो बारी जीउ देइ सा देख अँटारी।
जिउ हारहिं देखत उपराहीं चलै जगत सब दिष्टि तराहीं॥
ऊपर कोउ न निहारइ बरु मग चलहि बराइ।
दिष्टि तराहीं कै तहाँ, सब जग आवै जाइ॥ २३४॥

१—पूरी कर। २—चापाल, चठक।

पूरब दिसि जो आहि पहारी जनु बिसुकरमै आपु उतारी।
झरना झरै सोहावनि भाँती तरुवर लागे पाँतिन्ह पाती॥
बोलहिँ पछी अनबन भाषा आपन आपन बैठे सापा।
सिखर चढे कूकहिँ बहु मोरा परबत गूँजि उठे चहुँ ओरा[1]॥
जोगी आइ रहेँ तेहि ठाऊँ सुमिरहिँ बैठि बिधाता नाऊँ[2]।
पाहन काटि गुफा बहु साजी ठौर ठौर पुनि मढी बिराजी॥
तुम बैठहु तेहि ठाउँ सोहाई मेँ अब चाह सुनावौं जाई।

चाह सुनावौं प्रथम मग पाछे दरसन पाइ।
कै वह तुम्ह पहँ आवइ कै तुम्ह लेइ बुलाइ॥ २३५॥

सुनतै कुँअर दरस की बाता अहा जो पीतबरन भा राता।
कहेसि कि माहिँ भावै सो ठाऊँ जहाँ जपेँ चित्रावलि नाऊँ॥
कुँअर चला सो ताकि पहारी उडा परेवा ताकि अँटारी।
देखा कुअँर जाइ सो ठाऊँ जल थल जपै बिधाता नाऊँ॥
पछी सुमिरहिँ अपनी भाषा सुमिरेँ पात पात तरु साषा।
परबत धर ध्यान जनु तपा, गुपुत जपहिँ परगट नहिँ जपा॥
जो बीरो उपजै ओहि ठाऊँ सबै लेइँ परमेसर नाऊँ।

देख कुँअर चित रहस भा अतिहि सोहावनि ठाउँ।
बैठेउ आसन मारि कै लागा जपै सो नाउँ॥ २३६॥

जौलौं ध्यान धरै नहिँ कोई, तौलौं दरस न प्रापत होई।
घट मेँ परमरूप परछाहीँ जा बिनु जग मह जीवन नाहीँ॥
पै तिन्ह नैन न अजन सोई जेहि ते दरसु न प्रापति होई।
गुरु बचन चषु अजन देहू हिया मुकुर मजन करि लेहू॥
माया जारि भसम कै डारौ परमरूप प्रतिबिंब निहारौ।

१—परबत धर ध्यान जसतपा। गुपुत चपै परगट नहिँ जपा। पाठा।
२—सबै लयेँ परमसर नाहू। पाठा।

जो वह जाति नैन ठहरावै चौदह भुवन दिष्टि सब आवै[1] ॥
कुँअर ध्यान धरि बैठे तहाँ परम रूप की आसा जहाँ ।
परम आस लगि जिमि भयो कुँअर चित्त उतपात ॥
तिमि चित्रावलि विरह की कहौं सुनौ अब बात ॥ २३८ ॥

(१८) बिरह खंड ।

चित्रावलि चितवै पँथ लागी भँवै चहूँ दिसि चितवन लागी ।
भूख गई औ नींद नसानी कंत पियास पिय का पानी ॥
परगट हारि सकै नहिँ आसू बिरहा गुपुत करै तन नासू ।
दारुन धाइ सग दिन राती, प्रेम दुरावै तिय मृदु छाती ॥
कुल की लाज बिरह तन गोवै परट हँस गुपुत महँ रोवै ।
निकट न बोल अहित जो होई आँसु उसास न चरचै काई ॥
कुटुँब लाज नहिँ करै सिँगारा बैसदर होइ हाइ सब जारा ।
मजन करि पहिरावहीँ बरन बरन तन चीर ।
तेउँ तेउँ दूनी परचरै[2] बिरहा अनल सरीर ॥ २३९ ॥
जो तन पहिर चीर रतनारा बिरह अगिन जनु धुकै अँगारा ।
सिखा फुलेल सखी जो डारा, जनु सिर परी बिरह की धारा ॥
कचन तिलक मदन की गाँसी[3] जरी सीस जनु ताहि कि डासी ।
अजन पल सुहाइ नहिँ लागा, दुहूँ नैन जनु बिरह सरागा ॥
बेसर बरन जानु बिष मढी छिन छिन डस बदन पर चढी ।
पान खात मुख भा रतनारा बिरह पीर जनु रकत उडारा ॥
मोति हार गर कचन हाँसा, जनु गिँव परा बिरह कर फाँसा ।
भुजा टाँड औ बलै कर, अँगुरिन मुँदरी टूट ।
सब तन बधन बिरह के, प्रान सकैँ नहिँ छूट ॥ २४० ॥

१—मि
२—प्रगट हो सुलगे ।
३—बाण का नाक ।

باصل در اندهٔ دل کمي * صفاي بدن نيز حاصل کمي
شود بوے از عشق مست کند * طلبکار عهد الست کند

खुँभिया[1] कान सेल की ओरी बिरहै आनि हनी दुहुँ ओरी।
हियें डोल मुकुताइल हारू बिरहा जनु उर हनै कटारू॥
कटि किंकिनि काटै तन दाधा मानहुँ कीन्ह चहै दुइ आधा।
चूरा चूरै देह दुहेली पायल मानहुँ पाँवरि[2] मेली॥
अनवँट महँ जनु विष बौरसा बिछिया बीछु होइ पग डसा।
दाहै सब सिंगार तन जेता कुल की लाज सहै दुख पता॥
जरै अँगार परं जनु ठारा चदन लागि दहै तन सारा॥
मान जगत परगट जरै पावक बिरह सरीर।
धन बिरहिनि औ धन हिया गुपुत सहै जो पीर॥२४१॥
धाई मुख चरचै चपु जोआ कबहूँ परगट हँसि कै रोआ।
कबहूँ रहे सूर तन जोई आँसू ढरै न चरचै कोई॥
कबहुँ सखी सो मन मुख जोवा करि करि याद करै दिन रोवा।
कबहुँ अगर ले निकट जरावै धूम देखि चपु जल भरि आवै॥
देखै धाइ सेज दिन भीजी कहै राति हौं बहुत पसीजी।
निसि मुख गोइ सेज जो सोवै, नींद न आइ भोर लहुँ रोवै॥
लोयन सजल उठै बोरानी धोवै बदन वेगि लै पानी।
गुपत प्रेम जल लोयन चाहहिं परगट कीन्ह।
अतिहि चतुर चित्रावली बातन्ह गोवै चीन्ह॥ २४५॥
दिन एक रोइ रँगमति सों कहा अब नहि जाइ बिरह दुख सहा।
कब लगि जरौं बिरह की आगी अब परगट होइ चाहै लागी॥
बिरहा बली अनल हौं दही हिरदै लागि रहै नहिं गही।
दूतन्ह भए बहुत दिन गए, तेऊ जाइ तहँहिं के भए॥
कै सो देस अति आह सुहावा जो तहँ गा सो बहुरि न आवा।
कै सो अजहुँ तहि पाइन्हि नाहीं कै वह रूप नहीं जग माहीं॥
बीते बारह मास दुहेली, गुपत राइ छह ऋतु परहेली[4]।

१—खूँटा, कान म पहिनन का एक आभूषण। २—बेड़ा। ३—भरा हुआ। ४—बिताया।

सुनु सखि छन एक कान दै कहौं पीर सब तोहि ।
जैसे बारह मास ए छह ऋतु बात मोहिं ॥ २४३ ॥

ऋतु बसन तोतल बन फूला जहँ तहँ भौंर कुसुम रँग भूला ।
आहि कहाँ सो भौंर हमारा जहि बिनु बसत बसत उजारा ॥
रात बरन पुनि देखि न जाई मानहुँ दवा दहँ[1] दिसि लाई ।
अग सुबास चढ जनु चाँटे फूल अगार कली जनु काँटे ॥
कोकिल पपिहा करै पुकारा बालत बाल साँग उर मारा ।
रतिपति दुरद रितुपती बली कानन देह आइ दल मली ॥
दहुँ केहि बन बस सिंह हमारा कस न आइ जग बिरह सहारा ।

पुहुप सरासन पनच अलि मनमथ धरे चढाइ ।
पचबान छिन छिन हनै बिरहिनि उर समुहाइ ॥ २४४ ॥

ग्रीषम तपनि तवै जग माहीं जिय कायर ताके परछाहीं ।
सूर आगि सिर पर बरसावै बिरहा भीतर देह जरावै ॥
हौं बिच जरौं अगिन दुइ माहीं जरत न परै निष्ट परछाहीं ।
जेठ जरनि दुख जाइ न काढा कत कलप दहु कहि बन बाढा ॥
बिरह दवा पुनि जाइ न हरी परगट भई अगिन की ढेरी ।
कोइ न मया मराही आव कतहुँ छाँह की चाह सुनाव ॥
रसना पिउ पिउ रटत सुखानी प्रेम पियास पिय को पानी ।

ग्रीषम पुहुमि अनल भई पथिक चल किमि काइ ।
मगु जोवत नैना जरे धुआँ न परगट होइ ॥ २४५ ॥

दूभर रितु जब पावस लागी घन बरसे घिउ हम तन आगी ।
जिमि जिमि परै मेघ जल धारा तिमि तिमि उर सों उठ लुआरा ॥
स्याम रैनि मँह कोकिल बोला बिरह जराइ कीन्ह तन झोला ।
दामिनि सरग दीन्ह जनु बाढी, चमक देखाइ लेइ जिउ काढी ॥

१—दशो । २—बसत । ३—सामने करके ताक के ।

कासों कहौं बिथा जिउ केरी काकी होउँ पाँव परि चेरी।
स्याम घटा औ सेज अकेली जागि जाइ सब रैनि दुहेली॥
बिरह समुद जानु अति बाढा को गहि भुज जलबूडत काढा।

ऊँच खाल जग जल भरे भए समुँद औगाह।
सखी पथिक जहँ तहँ टिके, को लै आवै चाह॥ २४६॥

सरद समै अति निरमल राती कत बाजु[1] सँहि बिहरे छाती।
राति निखँड नकाव पुकारा मानहुँ काढि सेल उर मारी॥
ससि पारधि भा पारस साँधा किरन बान चारिहुँ दिस साँधा।
कहाँ जाँय यह मन मृग भागा बिरह आगि चारहु दिस लागा॥
केतिक जाइ सकल निसि बीती बरबस रहौं बाँधि उर थीती[3] (क)।
आपु माह किमि सखी मिलाहीं जल परवाह दुहूँ पल माहीं॥
छुँकै नींद बरबस चखु आई आँसु दरेर साथ बहि जाइ।

गुपत मदन दौ पर चर प्रगट दहै दुजराजु।
सखी प्रान घट क्यों रहै कत पियारे बाजु॥ २४७॥

हिम ऋतु यह बिरहानल बाढा कत बाजु दुख जाइ न काढा।
परे तुषार बिषम निसि सारी सिसकी लेति रहौं मे बारी॥
त न फिर जो गए बसीठी, बर लागि उर मदन अँगीठी।
बिरह सराग करेज पिरोवा चुइ चुइ परे नैन जा रोवा॥
उरध उसास पौन परचारा धुकि धुकि पजर होय अँगारा।
बडा रनि जीवन सुठि थोरा, चेत न परै दिष्टि जनु भोरा॥
पूस मास अति निसि अधिकाई सो धन जान जो बिरह जगाई।

थक नैन बरु देखते, घटै न कोऊ दु ख।
बाढे सिर पर गुर दोऊ, एकसरि परि ये दु ख॥ २४८॥

१—स बाह्य = बाहर। २—स पार्श्व = किनारा, घेरा। ३—स्थिति धैर्य।
(क) उदू म नहा ह। ४—चन्द्रमा।

सिसिर समीर सरीर सँतावै जाडेहुँ नैन नीर भरि आवै।
थुरकै पौन करेजा काँपा बरिया बिरह रहैं नहिँ झाँपा॥
श्रीपचम मानहीँ सब लोगू पूजहिँ देवता बिलसहिँ भोगू।
हौं कुल कान प्रेम बिच बसी हिरदै रुदन अधर पर हँसी॥
सखिन गुलाल आनि सिर डारा, परगट भा जनु बिरह लुवारा।
अब लहु रही गुपुत यह आगी अब परगट हाइ चाहै लागी॥
केहि आगे लै यह सिर मारौं सिर की आगि सह नहिँ पारौं।

अब तन होरी लाइ कै होइ चहौं जर छार।
चहुँ दिस मारुन सँग होइ ढूँढौ प्रान अधार॥ २४९॥

अबलहुँ सखी गुपत हौं जरी अब जिउ रहिय न एकौ घरी।
पिंजरा महँ जस पछी घरी ओ पग परी लाज की बरी॥
पछी बन महँ करैं पुकारा, हाइ न कोऊ बरजन हारा।
हम तन बिरह रहा हाइ रोगू परगट हाउँ तो मारैं लोगू॥
परगट लाज कहत पै माटी, दुइ कर बीच भई हौं चाँटी।
घट पिजर चहुँ दिस ते टूटा, प्रान परवा चाहे छूटा॥
अधरन आइ रहा जिउ मोरा, जाइ बहुर मन लाज निहारा।

कबहूँ अधर कबहुँ हिएँ जानति हौं कहि भाइ[1]।
अति ब्याकुल तेहि कत मगु झाकि झाँकि जिउ जाइ॥ २५०॥

सुनि कै बिथा कहै रँगमती ऐसी जरै सोई धन सती।
परगट जरै सती सो नाहीँ गुपत जरै सो सती सराहीँ॥
जहि कारन दुख सहै सरीरा मिलिहै आइ राखु मन धीरा।
पहिलेँ दुख सहै जो काई तो पाछे सुख पावै सोई॥
(क) पहिले दुख पाछे सुख होई, तब अनूप मग पावै कोई।
कागहि सब तन करिखा[2] सारा, छुवै जाइ तब पद मलियारा[3]॥

१—भाँति। (क) यह उदू की प्रति म नहीं है। २—कारिख = काला।
३—कौआ ने अपना सारा शरीर काला किया तब सीता जी का पैर छूने पाया।

मान हिअथल[1] बाँधि जौ, लावै बीरा दुक्ख।
साँचि नैन जल तरु करै, तौ पावै फल सुक्ख॥ २५१॥

सुनु चित्रिनि एक बात सोहाई मिलै कन्त सो कहौं उपाई।
कोटि जतन कै चहुँ दिसि धावै बिनु सेवा कोई कन्त न पावै॥
महादेव देवतन्ह के पीता[2] इन्द्र सेइ इन्द्रासन जीता।
जो इच्छा करि सेवै कोई परसन होइ देइ पै सोई॥
महादेव कर खपर भरावहु, जोगिन्ह कहँ वैसाइ जेंवावहु।
तापर गोलि देहु कछु दाना, दान हीं चि[3] सरगहुँ तें आना॥
दान देत जनि लावहु धोखा हीं छा मिलै होइ सतोखा।
गाँठ दीन्ह चित्रावली, उन गौनी कहि बात।
खप्पर भरौं सहस्र दस, जब आवै सिउरात॥ २५२॥

---

(१६) परेवा आगमन खंड।

तहि दुख माँह परेवा आवा चित्रिनि देखा जीउ जनु पावा।
पूछिसि कुसल कहहु सो बाता, मिला सो भौंर कँवल जेहि राता॥
कहहु बेगि जीउ अधर बईठा निकसि जाइकै हियें पईठा।
धरि लिलार भुइँ कहेउ परवा आवा मधुप कज-रसलेवा॥
अब जनि जरहु मरहु तपि बारा, तुम्ह दुख रैनि भयो भिनुसारा।
रहा मलीन कौंल जेहि आसा आउ सूर अब करहु बिलासा॥
चातक होइ रही दिन राती करु आनँद अब मिली सेवाती।
सुनि रहसी चित्रावली, पीन बदन भा रात।
जैस उगवत सूर के, पदुम होत परभात॥ २५३॥

पुनि पूछौं निजु कहहु परवा कहा सो मधुप कौंल रसलेवा।
जो कहु कहाँ सो पाए जाई कैसे काढे प्रेम चिन्हाई॥

१—हृदयस्थल। २—पिता। ३—खाच क।

करै ऊँच कै नीच बिचारी, राजा राउ कि राँक भिखारी।
काह नाउँ काकर सुत आही, एक एक बैठि बखानहु ताही॥
जेहि सुनि रहइ जीउ मम गाता फिरि फिरि कहहु ताहि की बाता।
आजु सिरान हिया दुख जरा, मुए धान जनु पानी परा[1]॥
कै चकोर ससि किरन देखाई पपिहा जानु सेवाती पाई।
नियर होहु तुअ चरन परि, सहस बेर बलि जाउँ।
एक जीउ घट माँहि तेहि वारत अधिक लजाउँ॥ २५४॥
कहिसि कि ताहि सराहौं काहा, धन तूँ धनि आकर बर आहा।
नषत कि लखै तराइन आरा ससिहर होइ सूर कर जोरा॥
उत्तर देस नगर नैपालू राजा धरनीधर नृप सालू।
दान खरग चहुँ जुगत बखाना कोस सहस दस ताकी आना॥
तेहि कर सुत सरूप बुधिवंता छत्री कुल पवाँर कुलवंता।
नाउँ सुजान चहूँ दिसि जाना बल विद्या गुन कर निधाना॥
रतन एक जनु ससि मनियारा रहा होइ सब कुल उँजियारा।
बिधिचरित्र सोवत तेहि, कोउ चितसारि ले आइ (क)।
गयौ चित्र तुव देखि कै, आपन चित्र बनाइ॥ २५५॥
जस तोर जिउ ओहि के रँग राता वह पुनि आह तोर मद माँता।
नाउँ न जाना ठाँउ नहिँ सूना, चित्र सरूप हिए महँ गूना॥
तुव दरसन इच्छा मन वारा, देइ लाग सब खोलि भँडारा।
धरमसाला महँ होइ रसोई, भोजन आइ खाहिँ सब कोई॥
नित उठि भोर सौंटिया धावहिँ, जगम जती ढूँढि लै आवहिँ।
सब की हि छा पुरवहिँ दासा, एक हीँछा तुअ दरसन आसा॥
तोरे भाग कीन्ह अगुवाई, सूध पथ मोहि दीन्ह देखाई।
एक दिन निसरेउँ करमगति, ओही नगर मँझार।
देखि सौंटिया लै गए, जहँ हुत राजकुमार॥ २५६॥

१—मि सूख धान परा जनु पानी। (क) बिधि चरित्र सावत काऊ चित्र सारि ले आर

देखि कुँअर पुनि निकट बोलावा पूँछेसि कौन देस ते आवा।
कौन नगर तुम्ह कौन नरेसा, भल गुन कौन तुम्हारो देसा॥
देखत ही सो कुँअर पहिचाना आनँद कछु न जाइ बखाना।
कहेउँ बइसि सब नगर कि बाता बरनेउँ चित्र जेहि क रँगराता॥
सुननहि चित्र पाउँ लै परा कहेसि वही चित सपने हरा।
कहँ लेइ अलि भूलि बसेरा चित्र कमोदिनि कँवल चितेरा॥
तीर रूप जब बरनि सुनावा, तजि छाया चित कायहि लावा।
राज साज सब छाडि कै कीन्ह जोगि कै भेस।
लुकअंजन चख देइ कै लै आयों एहि देस॥ २५७॥
झरना तीर आहि सो जोगी, जो तुम्ह दरसन लागि वियोगी।
आसन मारि बैठ हाइ तपा, नाउँ तुम्हार करै मुख जपा॥
तुम्ह तन परिस पौन जो जाई स मुख हाइ लेइ कँठ लगाई।
सातल मद समार जो पावै जरत आगि हिय लाइ सिरावै॥
लै आयो दै सरवर आसा, आइ तीर अब मरै पियासा।
ठाँवहि ठाँव जरत पुनि आवा, आसा जल मुख मेलि जियावा॥
अब जो मरै सो बिरह बियोगी हत्या तेहि जाहि लगि जोगी।
मूरि मंत्र गुन मरि कै ले आएउँ करि जोग।
अब न मोहिं कछु लागई वैद जान औ रोग॥ २५८॥
सुनि चित्रावलि चितहिं हुलासी, कौंल कली रवि उदै बिगासी।
रही साँस मन हिय गा दद्दू, सुनि कुलीन भा अधिक अनद्दू॥
कहसि परवा तूँ सो कीन्हा निक्ख[1] तीर मोहि जाइ न दीन्हा।
तैं सो बचन अमिरित अस भाखा निसरत प्रान फेरि घट राखा॥
मोहिं लगि सकति हाति जिय हानी, तैं हनु[2] हाई सजीवन आनी।
दानौ दुख अहा घट पूरी, तै होइ भिम जमकातरि चूरी[3]॥
का तोरे नेंवछावरि सारा, लाजन एक जीउ नहिं वारौं।

१—स निक्ख = एक प्राचीन सिक्का जो सोने का होता था। यह चार असर्फी का होता था। द्रव्य, दाम मूल्य = बदला। २—हनुमान। ३—नाश किया, तोड़ा।

तन पचाल थाल सम , होत जो पूरित प्रान ।
काढि काढि तुअ चरन पर वारि देत मन मान ॥ २५९ ॥

पै यहि आहि जगत कर लखा अध पताइ नेन जा देखा ।
सवन[1] सोत[2] सुनि अमिरित बानी , नैनन तपनि दूनि अधिकानी ॥
जस सुनिपावा सवन सतोषा नैन देखाउ जाइ जियु रोखा ।
मोर निकास न एकौ घरी परी पायजा[3] पुनि साँकरी ॥
बठे रहहिँ बार रखवारा मारु मारु हाइ झाँकत बारा ।
धावत हटकै दारुन धाई रहस कूद लइ गै लरिकाई ॥
कहाँ आहि दहुँ सरिवर बारी सपनेहुँ नहिँ देखौं चितसारी ।

एहि बिधि जोबन जाउ जरि सिसुता होइ अनूप ।
निसरत बरज न कोउ जहि देखौं जाइ सरूप ॥

अब फिरि जाहु कुँअर जहँ आही कहहु कहे तिय दरस उमाही[4] ।
जाहि लागि तुम्ह भएहु भिखारी तुम्हते अधिक सो बिरह दुखारी ॥
तुम्ह दुख रैनि अँधेरि बिहाना[5] करु मन धीर भोर नियराना ।
हीँछा एक हिये हम पूजी , तुम्ह दरसन मम हीँछा दूजी ॥
अलप दिनन्ह आवै सिउराती , नेवत जेंवावब जगम जाती (क) ॥
तुम्ह तेन्ह सग बोलावब तहा बेठहु हेठ झरोखा जहाँ ।
गाछे दहुँ का करै गोसाईँ , नेन मिलाव होइ तेहि ठाईँ ।

जोबन बेडी पग परी , गोनन महा सँदेह ।
नाहिँ तो बरलिन आइ कै , झारति तुअ पग खेह ॥

ग पुनि आपन दरपन दीन्हा कहसि दिहहु लै यह मोर चीन्हा ।
कहेहु राखु लै हिरदै लाई माँजत रहब परै नहिँ काई ॥

१—श्रवन । २—श्रोत । ३—पायजा = लोहे का जुला जिससे ही का पैर बाँधा जाता है—एक प्रकार का अदुआ । ४—डाकती है ।
५—आतुर । ६—बिगत हुए या प्रभात में परिणत हुए ।
) पूजब शिवहि चढाउब पाती । पाठा० ।

राखेहु सजग देसि जनि काहू छाडि परेवहि जनि पतियाहू ।
नैन लाइ रहु दरपन माँहीं पहिले देखु रूप परिछाहीं ॥
दरपन चपु ठहराइहि तोरा, बिगसि देखु तब दरस न मोरा ।
एकहि बार जो सनमुख देखा होइ तूर[1] पर मूसक[2] लेखा ॥
मोरे रूप आहि सो जोती, बारह भान किरन की गोती ।
माँजत दरपन जीउ दै, नैनन्ह धरब अकास ।
जेहि दिन पूजै देव जग पूजै हम तुम आस ॥ २६० ॥
दरपन लइ सो परवा आवा कुँअर आइ झरना ढिग पावा ।
लेयन मूँदि माल कर जपा, चित्रावलि चित्रावलि जपा ॥
कहेसि चेतु जागी सिधि आई, लेहु सजग होइ गुरू पठाई ।
अस लौलीन कुँवर होइ रहा, बचन परेवा मारुत बहा ॥
तब गहि भुजा कुँअर झकझोरा उघरे नैन देखि मुख ओरा ।
कहेसि कि जागी बैठु सँभारी सिद्ध कहत सुनु सवन उघारी ॥
मैं सब बाति गुरु सों कही औ जत बिरह बिथा तोर अही ।
रहस गुरू चित ऊपजा सुनि जोगी कर भस ।
मया बोलि औबहु असिष, दीन्ही लै आदेस ॥ २६१ ॥
कहेसि कि जौं इहवाँ लहु आए, चिता करहु न सिधि अब पाए ।
आए लाँघि समुद पहारा, अब नैनन महँ ठाँव तुम्हारा ॥
जो दुख मोहिं लागि तुम्ह पावा सो दुख सब मोहिं ऊपर आवा ।
जनि जानेसि मैं अकसर दुखी, तुमते दुखी दून ससिमुखी ॥
जेते चुभे काँट पग तोरे सुनि सालैं सबहियरैं मोरे ।
औ छाला जत पायन्ह परा, फूटि पानि मम नैनन्ह ढरा ॥
औ जत पातल गडी अँकारी[3], सुनु मम पुतरिन समुहँ ददौरी ।
आवत मारग और जत सहा तेज रबिभार ।
हाइ बैसदर मोर हिय जारि कीन्ह सब छार ॥ २६२ ॥

१—एक पर्वत का नाम जहाँ मूसा को खोदा का प्रकाश देख पड़ा था वा दर्शन मिला था। २—मूसा एक यहूदियों का पैगम्बर जिसे ईश्वर तूर पर दिखाई पड़ा था। ३—अँकरी = ककड़ी। ४—ददौरा।

दरसन चाउ अधिक जिय माहीं अबहिं उहाँ मोर आवन नाहीं ।
भा दुर्जन जोबन हतियारा, जातें रहहिं सग रखवारा ॥
अब दहुँ कब आई सिउराती, पूजब सिभु चढाउब पाती ।
जहँ लहु जती सनासी अहहीं जोगी जती खपर जे गहहीं ॥
मदिर तर बैठाउब आनी भरि भरि देब खपर अनपानी ।
तुमहूँ कहँ पुनि लेब बोलाई हेठ झरोखा ठाउ बिठाई ॥
ओही ठाँउ होइ नेनमिलावा सिउ परसन हाइ हीं छ पुरावा ।
ऊपर ग्रीषम तज रबि हेठ सो चन गँवाउ ।
दीन्हा आपनु मुकुर यह जेहिं महँ दरस मिलाउ ॥ २६३ ॥
यह दरपन तुम्ह लेहु सँभारी जेहि महँ देखहु दरस पियारी ।
पही मुकुर सिद्धन कर गहा, मन की इच्छ इही मधि चहा ॥
चौदह भुवन रहहिं एहि माहीं तिल समान कछु बाहर नाहीं ।
नैन होइ गुरु अजन आँजा दरपन हाइ नीक करि माँजा ॥
जहँ लगि धरती सरग पतारू परैं दिष्टि सब बाँच न बारू[1] ।
अब नहि लावहु चित बैरागा माँजत रहब जा मल न लागा ॥
औ पुनि माँग देहु जनि काहू माहिं तजि जनि आनहिं पतियाहू ।
तब लहु सहिय बिरह दुख जब लगि आव सो बार ॥
दु ख गए तब सुक्ख है जानै सब ससार ॥ २६४ ॥
सिउ सिउ करत बार सो आवा, चित्रावलि जानहु जिउ पावा ।
भोरेहिं नेगिन्ह कहा हँकारी बेगिहिं करहु रसोइ सारी ॥
आजु आहि सिउबार सुहावा घर घर दपति सिभु मनावा ।
हिछा एक हमारी पूजी औ हाछा मन आहि न दूजी ॥
साजहु अनवन भाँति रसोई जहँ लहु श्रिउपक जलपक होई ।
जोगी नाउँ जहा लहु पावहु, भरि खप्पर बैसाइ जेंवावहु ॥
होइ न काहु परोसत धोखा, मैं पुनि देखब बैठि झरोखा ।

१—बालू = रेणु ।

बेगि होहु बिलमाहु जनि, आजु सो उत्तिम बार।
हाछा हरि परसाद हम पुरवै मकु करतार ॥ २६५ ॥

नेगिन्ह साजी बेगि रसोई जेहि के खात प्रेम रस होई।
सब मीठे परकार सलोने भए न एकौ खटे अलोने ॥
धीपक जलपक जेते गने, कटुवा बटुआ ते सब बने।
धौराहर तर ठाँउ सँवारा जोगिन्ह जहाँ होइ जेवनारा ॥
पाक रसोईं सोंटिया धाए जोगी जती ढूँढि ले आए।
जोगी नाउँ जहा सुनि पावा, एक एक कहँ जाइ बोलावा ॥
आदर सौ लै आवहिं जोगी जोगी सेवा करैं सो भोगी।
भोगी जोगी सेवई, इहे सो भोग आचार।
जोगी बाँचहिं भोग सों, तबही पावैं सार ॥ २६६ ॥

चिचिलि कहा हँकारि परेवा कहाँ सो जोगि करौं जेहि सेवा।
आइ बैठ सब बार बराती दूलह कहा जाहि धनि राती।
धन सो दिवस धन बार सुहावा धन सो घरी जहि होइ मिरावा ॥
सुनि कै बात परेवा बोला ए सुदरि वह रतन अमोला ॥
कचन बरन मलिन[1] जरि गयऊ, बिरह अगिन जरि कुदन भयऊ।
आनि देखावौं रूप सुजाना कसौ कसौटी दहुँ कस माना ॥
अपने जान धोख नहि लायउँ, बारह बान सँपूरन पायउँ।
वह पिउ रतन अमोल नग, तू धनि कुदन हेम।
जो बिधि जोरी है लिखी, जरै सो जरिया प्रेम ॥ २६७ ॥

चला परेवा कहि यह बाता, आवा जहँ जोगी रँगराता।
कहेसि कुँअर दुख रैनि बिहानी, उठि चलु अब सुखघरी तुलानी[2] ॥
तोहि मया कै गुरू हँकारा, सिद्धि देत अब लाग न बारा।
आजु दरस जेहि लागि बियोगी, आजु सिद्धि जेहि कारन जोगी ॥
आजु सो औषध जेहि लगि पीरा, आजु प्रान फिर मिलिहि सरीरा।

१—मैल, मलानता। २—आगइ।

आजु सो भोजन जेहि लगि भूखा, आजु सो पान अधर जेहि सूखा ॥
आजु सो कौंल भौर जेहि रगू, आजु दीप जेहि लागि पतगू ।
आजु सेवाती घन बरिस चातक हसि जहि लागि ।
आजु उदधि जल ऊमडेउ, बुझै हिये की आगि ॥ २६८ ॥
दरस नाउँ सुनि कुँअर हुलासा, जनु पकज रबि सूर प्रकासा ।
रहसा बदन पेम कर गहा, भा मजीठ केसर जो अहा ॥
कहसि कीन सो बासर आजू दरसन मिले हाइ सिध काजू ।
दाहिन भयो भाग हम आई, भयो भार दुख रैनि बिहाई ॥
मोहिं न करम केरि परतीता दीरघ दु ख हाइ लहु[1] बाता ।
कहहि बहुरि मन मान न मोरा जिउ देनिहार बचन हे तोरा ॥
तैं अब लहु जिउ घट महँ राखा, नाहिं त जात सुआ तजि साखा ।
कहेसि आजु हे सोई दिन, अत होइ दुख तार ।
सरग उए ससिहर किरन पीयै पुहुमि चकोर ॥ २६९ ॥

---

(२०) दरसन खड ।

चला परेवा ले सँग जोगी, जहाँ बैद तह गौनै रोगी ।
आनि भराखा तर बैसारा नखतन्ह महँ जनु ससि मनियारा ॥
भा अकूत[2] जहँ जोगिन्ह मेला आवा गुरू होइ सब चेला ।
जत कतहूँ ते होइ आदेसू, देइ असिष बैठाइ नरेसू ॥
बैठे जोगी पाँतिन्ह पाँती, धरे खपर सब भाँतिन्ह भाँती ।
गेरुआ बस्त्र चढाइ बिभूता शिव शिव बोलहिं उठै अकूता ॥
कोई सख लै पूरै नादू, कोई करै जोगी गुनबादू[3] ।
कोई बीन बजावई, कोइ धधारी फेर ।
कोई सुमिरनी कर गहे, जपे नाउ बिधि केर ॥ २७० ॥
ततखन भोजन अगिनित सारा, भाँति भाँति जे हुत परकारा ।
आने सब पकवान जो कीहे कथा बाढ तेहि नाँवन लीन्हे ॥

१—स लघु प्रा लहु = छोटा । २—बात । ३—गुणानुवाद, प्रशसा ।

पहिले खपर जो भोजन भरा लाए गुरू के आगे धरा (क)।
ता पाछ जो खप्पर भरहीं जोगिन्ह के ल आगे धरहीं ॥
लागे खपर भरें चहुँ ओरी, दे दछिना त्रिनवहिं कर जोरी।
मानहु सेवा देहु असीसा, जेहिते हींछा पुरवहिं इसा ॥
जोगी जवहिं पीवहि पानी होइ सँतोष हियँ मनमानी।

मन बच क्रम बिनती करहिं हे देवन्ह के ईस।
सुंदरि हिछ पुरावहु कहहिं लाइ भुइँ सीस ॥ २७१ ॥

कुँअर न जँव पैठु भँवाई, रहा नैन दुहुँ दरपन लाई।
लागी बार न पूजी आसा बिष भोजन भा जानु गरासा ॥
अमिरित भोजन ले कर काहा सो न मिला जा कहँ चित चाहा।
दरपन देखि सो देखै नाहीं उठे मरोर करेजे माहीं ॥
बरी आगि उर बाढि सनेही पिघिलन चली नैन जिउ देही।
तपि तपि मरै रहै धुनि माथा बिनु दरपन कछु आउ न हाथा ॥
बिरह न करै जनम भरि तेता औधि आस कर छिन महँ जेता।

मान तेज बल सब घटा, हियें सोच अधिकान।
औधि घरी नियराति है निकसि जाइ जनु प्रान ॥ २७२ ॥

चित्रावलि नौ सात बनाई दरसन लागि झरोखा आई।
तन गुजराती चीर अमोला लहर लेइ जनु उदधिहि डोला ॥
देखि चकोर दिब्ब[1] मुख बारा, जनहु मयँक कीन्ह उजियारा।
भर माँग मोती मनियारे नखत पाँति ससि आइ जोहारे ॥
सीसफूल कच ऊपर बासा, स्याम रैनि मधि सूर बिगासा।
भौंहे सौंह न होइ गियानू, लोचन मोचन सुरपति ध्यानू ॥
बेसरि सरि न काहु कहँ छाजा, गयो अगस्त सरग कहँ लाजा।

पान खाइ भा अधर रँग, औ चोका रतनार।
परगट देखिय खरग जनु रुहिर भरा हथियार ॥ २७३ ॥

क—पहिले खप्पर भोजन भरा—आनि गुरू क आग धरा। पाठा। १—दिव्य।

सरवन खुटिला[1] बने सभागे, जनु गुरु सूक सवन ससि लागे।
तरिवन बना तरनि की कला जनु रथ सजि सरग कहँ चला॥
गाँव माल मुक्ता मनि बसी, सुरसरि जनु सुमरु हुत धँसी।
औ तन बनि कटाव की चोली रही फूलि फुलवारि अमोली॥
भौंर भए दुइ स्याम सवाई, तहि फुलवारिन्ह बेसे जाई।
बाँहन चूरी ककन हाथा देखि धुनहिँ गन गंधब माथा॥
कटि किंकिनि धुनि सुनि मन माहे चूरा चमकि चौंधि घन जाहे।

कहहिँ देवता अजहुँ हम हम हाहिँ छिति जाइ।
परसहिँ बिछिया हाइ मकु चित्रावलि के पाइ॥ २७६॥

चित्रावली झरोखे आई, सरग चाँद जनु दीन्ह देखाई।
भयो अँजोर सकल ससारा भा अलोप दिनकर मनियारा॥
चौंधे सुर सब सुरपुर माहीँ चौंधे नाग देखि परछाँहीँ।
चौंधे महिमडल नर नारी, चौंधे जल थल जिव सब झारी॥
चौंधे जोगी अहे तराहीँ, कस अँजार काउ जाने नाहीँ।
दरपन माह कुँअर देखि छाया गया मुरछि सुधि रही न काया॥
सुर जोति दरपन महँ ऊई यहि दुहुँ बीच कुँअर भा रूई।

ग्यान ध्यान सबही गयो परा पुहुमि खसि राइ।
देखि झरोखा चित्रिनी बिहँसि मँदिर महँ जाइ॥ २७७॥

हँसि पूछहिँ तै सखी सयानी चित्रिनि भेद बात जिन जानी।
भाखहु ससि रैनिपति[2]-मुखी सो देखा जहि लगि हुति दुखी॥
नैन कसौटी कचन कसा, बोलहु हियँ बान क बसा।
है वह रतन पदारथ सोई कु दन मिलि जराउ जहि होई॥
सो पुनि हमहिँ देखावहु आनी जहि बिनु तुम्ह जुग नि बिहानी।
तेहि क उतर चित्रावलि कहा देखा अजहु बिरह कर दहा॥
ससिहर सुरनगरी जेहि रूपा, सूरज चाहि सो अधिक सरूपा।

१—कर्णफूल। २—चन्द्रमा।

देखत माथे भागमनि , निरमल रतन अनूप ।
छपै न कैसहु जोग महँ प्रगट देखिये भूप ॥ २७८ ॥

दरपन माँहि निरखि मुखछाया , परा मुरछि गा जिउ तजि काया ।
अबहीं कचन कैसें देखाऊ , कुंदन भान जो होइ जराऊ ॥
बिरह अगिन जरि कुंदन होई , निरमल तन पावै पै सोई ।
अबहीं आहि सो कचन काँचा सहि न सका दरसन की आँचा ॥
रचक देखि दीप की करा[1] चौंधि पतग पुहुमि खसि परा ।
पुनि जो चेत होइ अब आई तुम्हहूँ कहँ सो देखावौं जाई ॥
बोलि परवा कहा बुझाई , मरे न जोगि सँभारहु जाई ।
कहहु जाइ दरपन अबहि सनमुखहु ते न टार ।
पुनि मैं झाँकब आइकै बैठहु आपु सम्हार ॥ २७९ ॥

परा जोगि खसि पुहुमी माहीं चेत न आपु सम्हारै काहीं ।
कहूँ चक्र कहूँ खपर उदारा , कहूँ परा तिरसूल निनारा ॥
कहूँ सुमिरनी कहूँ अधारी जीउ बाजु सब भयो धँधारी ।
जौ लहु तन जिउ दीप अँजारा , मोर मोर कै सबै बटोरा ॥
दीप बुझा घर भा अँधियारा जो हुत जहा सो तहा बिसारा ।
सिद्धन्ह भलेहिं पढा यह पथा , तापी झारि मेखली कथा ॥
भार जानि के मत्रा झोली गौने पथ खेलि कै होली ।
आवै मान बसत जब फूलहिं तरुवर बेलि ।
हौं पहिलहिं गुरु बचन ले , निसरौ होली खेलि ॥ २८० ॥

चेला देखि गुरू बिकरारा , दौरि आइ दुकि करहिं सम्हारा ।
टोवहिं हाथ पाँव जिउ नाहीं , रही सास कछु हिरदै माहीं ॥
गहे मुकुर कर जानि अँगूठी , छोरि न जाइ मरे की मूँठी ।
सबै कहहिं अबहीं भल आहा , पल भीतर यह होइगा काहा ॥
कोऊ कहै मिरगी कर भावा , कोऊ कहै सनपात[2] सतावा ।

१—कला । २—सन्निपात ।

कोऊ कहै भोजन विष बासा कोऊ कहै गिव गहा गरासा ॥
कोउ कहै काहू देखि जो भूला, परगट प्रेम कँवल मुख फूला।
कहहिँ चलहु सब जीउ ले, तजहु नगर के सोँच।
जहाँ गुरू अस मारिय चेला बाँच न जीव ॥ २८१ ॥
घरी चारि बीते भा चेतू, उठेउ सँभार सोँरि हिय हतू।
आस पास पूँछहिँ सब जागी कहहु कया काह भा रोगी ॥
उह सो गुटका कहाँ अडारा[1] जेहि बिनु सिद्ध होइ नहि पारा।
कहाँ सा बारउ लोन अनूपा जहि सोँ होइ सोन औ रूपा ॥
तुम्ह अस गुरू सँभारहु नाहीँ, हम चला दुहुँ काह कराहीँ।
अब सो कौन बिथा जिय केरी औषध मूरि सो आनहिँ हरी ॥
फिरि फिरि पूछहिँ चेला बाता, गुरू न बोल प्रेम मद माता।
रहा अचक मन जोगना ना हँसि आउ न रोइ।
खाइ रह ठगमूरि सो गया जानि गँथ[2] खोइ ॥ २८२ ॥
आइ परेवँ सबद सुनावा चेत मुछदर गोरख आवा।
अस भिखारि हम देख न कोई, बारहिँ आइ रहै परि सोई ॥
जागत गयो सकल अँधियारा गया सोइ जब भा भिनुसारा।
काया पिंड कमाइ न पारा, गा होइ धूम अनल के झारा ॥
इन नैनन्ह तुम्ह रूप सो देखा परेहु चाँधि ता कोन परखा[3]।
अब फिरि गुरू मया तेहि कीन्हा लेहु सँभारि सिद्धि जा दीन्हा ॥
रहहु नैन पुनि दरपन लाई, चाँद भरोखा दखहि आई ॥
इन्ह नैनन्ह देखै न कोइ वह सो रूप अपार।
हिये नैन पट खोलि कै देखहु राजकुमार ॥ २८३ ॥
सिद्ध नाउँ जोगी सुनि जागा, गा बराग भयो अनुरागा।
दरपन सौँह लाइ चषु रहा, काहू दिष्टि कुज मन गहा ॥
सरग उदै भौ दिनकर करी कुँअर जोति दरपन महँ हेरी।
नैनन्ह भीतर जोति समानी, जोतिहिँ मिली जोति ठहरानी ॥

१—डारा = फेँका। २—स ग्रंथ गाठ। ३—परीक्षा।

अस परगट भा रूप सरेखा सान जो सुना सहस गुन देखा।
पाइ रूप जल नैन पियासे जिउँ जिउँ पीवँ अधिक पियासे॥
पुनि भा सोच हिये कछु आई राता बदन गयौ पियराई।
मान दरस मह कोन गुन चन्हौ सोच चित आइ।
देखि रूप झुरवै मनहि पुनि जस करहुत चाइ[1] ॥ २८४ ॥
ससि क सँग जा अहैं तराईं तेऊ सरग चढि देखन आईं।
देखि कला रवि की जा अहीं गइ खोइ सुधि गात न रहीं॥
बोलीं सबै देखि ससि ओरा धनि तू धनि जाकर अस जारा।
तस दुख देखि तु अस पिउ लहिए, अस पिउ लागि कस न दुख सहिए॥
तुम्ह ससिहर यह रवि उजियारा तुम्ह कु दन यह नग मनियारा।
तुम्ह रानी यह आहि सो राजा, तुमही कहँ य अस बर छाजा॥
तुम्ह अमुज यह दिनकर साईं, मिलै कँवल अब रहसि तराईं[2]।
अब बिधना सो कौन दिन, मिटै हिये जहि दुद।
ससिहर मिलै चकोर कहँ तरइन होइ अनद ॥ २८ ॥
पुनि नेगिन्ह सौं कहा बुलाई, सिउ सेवा सुख उपजउ आई।
जोगिन जँवत कौतुक होई, कौतुक देखि चाह सब कोई॥
औ पुनि दान देई चित भावा इहाँ क दीन्हा तहँ पर पावा।
कौतुक पुनि दोऊ सँग पाई, जागी रहहिं दिवस दस छाई॥
नित उठि भोर करहिं जेवनारा उभय भाँति साजहु परकारा।
भरि भरि खपर परोसा देहू, दै दै दान आसिषा लेहू॥
बहुरै नेगी अग्या मानी, चेरी करैं कहे जो रानी।
ठाकुर अग्या होइ जब, सबै करैं जो नेगि।
जहवाँ कारज पुन्य कर, कसन सँवारैं नेगि ॥ २८६ ॥
लाग होइ प्रति दिन जेवनारा, जोगी जगम करहिं अहारा।
चित्रावली झरोखा आही, कुँअर देखु दरपन पर छाँही॥
दोऊ उदधि पै दोउ पियासे, पीपी जल पुनि रहहिं पियासे।

१—चाह। २—स तरणि = सूर्य।

देखत काहू होइ न साँती दिवस चारि बीते पहि भाँती ॥
हुत जो कुटीचर देस निसारा, वै पुनि सुना जोगि जवनारा।
कहेसि कि मइँ जोगि होइ जाऊँ, मकु परसाद जाइ कछु पाऊँ॥
सनमुख भाग होइ जौ आई जोगिन साथ लेउँ सिधजाई।
आइ सो जोगिन्ह महँ मिला कै तपसी कर भेस।
बोले सबै कि गुरु सेव हौं जाइ करौ आदेस ॥ २८७ ॥

---

(२१) कुटीचर खंड।

गुरू पास चेला चलि आवा, चित्र चीन्ह मुख देखत पावा।
औ दरपन चित्रावलि करा, परतष[1] देख कुँअर जेहि हरा॥
मन महँ कहेसि आह यह सोई जाहि लाग यह कातुक होई।
एही लागि होइ जेवनारा, एही लागि एता बिस्तारा॥
एही लागि हम देस निसार, एही लागि हम पुनि पुनि जारे।
अब मिलि लेउँ सो आपन दाऊँ पुनि अस दाँउ हाथ कब आऊ॥
बैठो जाइ कुँवर के पासा, कहसि कि हम चित्रावलि दासा।
जैस परेवा तेस हौं, सो पठयो तुम्ह पाँहि।
कहसि कि कब लगि ससि किरन, कुमुद पियै जल माँहि ॥२८८॥
तोहि देखि सो कौंल हुलासा, आए भौंर होइ जेहि आसा।
कौंलहि सूर सँतोष न देई, जौ लहु भौंर बास नहिँ लेई॥
कसा कसौटी निकसा बाना, कौंल क मुख मधुकर पहिचाना।
अब उठि चलहु कौंल बस जहवाँ, सेज सुगंध सँवारी तहवाँ॥
यह बिचारु तूँ जोगि सयाना, जल न पाव पावस ऋतु आना।
चंदबदन देखहु भरि नैना, औ सुनु सरवन अमिरित बैना॥
अधरन्ह टूटि अधर रस लेहू, भुजनि भुजा आलिंगन देहू (क)।

१—प्रत्यक्ष। (क) यह पद उर्दू की प्रति में नहीं है।

लीन्हेसि दरपन मांगि पुनि, कहेसि चलहु अब राय।
कुदिन आइ नियराइ जो, पहिलेहिं बुधि मिटि जाय ॥ २८९ ॥

जोगी अग समाइ न फूला, बैन कुटीचर की सुनि भूला।
कहिसि कि भाग निसेनी आई अब चढि सरग मिलौं सखि जाई ॥
देखौं सौंह जाइ सो रूपा नैन सिराहिं जर जा धूपा।
अक म गहौ जो हिया सिराई अमिरित बैन सुनौ अब जाई ॥
अस न जान अमिरित विष बसा, यह बिष नाग चाह उर डसा।
बहु दुख पाइय ससिहर छाया कैसे चढिय बेगि उठि काया ॥
ऐसे केत बिगूचे[1] पाए, थोरा छाडि बहुत कह धाए ॥

कीन्ह न सोच कुँअर जिय चलयौ कुटीचर सग।
कोऊ न सकै सँवारि जो कीन्ह चहै बिधि भग ॥२९०॥

कहा कहौं मैं जग ब्यवहारा यह मन केसहुँ मरै न मारा।
तपि तपि लुहि लुहि एक जो पावा होइ न सँतोष देइ कहँ धावा ॥
पाछिल दुख बिसरि सब जाई सुख ऊपर सुख ढूँढ धाई।
सोन लागि जो पाव सुमेरू रतन लागि रतनाकर हेरू ॥
मुकुता होहिं समुँद के ढेरी, पुहुमी होइ सरग बहु चेरी।
करे जोहार सकल ससारा भँवहिं न नैन बाजु जहि भारा[2] ॥
विक्रम नैन पुहुमि सब आँटी भरी जाइ मरघटि की माटी।

कहाँ सो विक्रम सकबँगी, कहाँ सो राजा भोज।
हम हम करत हेराइ गे मिला न खोज खोज ॥ २९१ ॥

वह लै मुकुर चला होइ आगे, जाइ कुँअर पुनि पाछे लागे।
झोली हुत एक अजन काढा सनमुख कुँअर भयो फिर ठाढा ॥
कहेसि कि यह लुकअजन सोई, नैन दिये जो देखन कोई।
सो चित्रावलि पठवा तोकाँ, नैनन्ह देइ चलहु सिवलोकाँ[3] ॥

१—धोखा। बहाना। २—दर्पा। ३—कैलाश = स्वर्ग।

रहसि कुँअर लुकअंजन लीन्हा बेगिहिं दुहूँ नैन महँ दीन्हा।
अंजन देत भयो अँधियारा रहा अचक तब राजकुमारा॥
भया असूझ न जब कछु सूझा दूत भेद तब मन महँ बूझा।
हाथ मलै औ सिर धुनै अंजन धोवै रोइ।
पहिलहिं जो न विचार भा, अब राए का होइ॥ २९२॥

कहसि कुँअर सुनि हौ सो अहऊँ आपन भेद बात तोहि कहऊँ।
तोर चित्र चितसारी हुता देखा चित्रसेन की सुता॥
उपजा प्रेम चित्र के देखे कातुक आन न आनै लेखे।
मोरे जिय भल काज न आवा रानि लाई मँ चित्र धोआवा॥
तै रिस लगि हौं देसनिसारा अब लहुँ सहा विरह की झारा।
तैं सब कीन्ह मोर सुखहानी गाढ़ुर[1] भयौं सूर सा रानी॥
खोजत रहउँ मिलेहु नहि राऊ, पाएउँ आजु मिलेउ सो दाऊँ (क)।
, कहा सो गोडिया तुच्छ तन कहाँ किसन[2] अस राउ।
बेरी जो बस के मिले लेइ सो आपन दाउ॥ २९३॥

यह कहि गहि भुज कुँअर उठावा सात समुद्र पार ले आवा।
डारसि ले तहिं खोह अंधेरा जहँ न मिल दिन दीपक हेरा॥
दिन न सँचार किरन रबि जहाँ रैनि नाहिं ससि तरई तहाँ।
अँधे ठाँव अँधरी पाई जनहु मसि ऊपर मसि लाई।
चला तहा तजि के दुखदाता, चलती बेर कहसि एक बाता॥
बहुत कोह उपजा मन माहीं जीउ न मारौं जानेसि काहीं।
जस हा विरह अगिनि महँ जरा तस तू जरसि इहाँ अब परा॥
मै तोहि डारा लै तहा, जहा न डोल पाखि।
जो जस करै सो पाउ तस, कुँअर देखि ले आँखि॥ २९४॥
गा उठि गुरू देखि सब चेला, भगा भग जहँ जागिन्ह मेला।
जत कत चले झारि मृगछाला, पखी सबह[3] डोल जनु घाला॥

—बममादड। (क) यह उर्दू की प्रति मे नहा है। २—कृष्ण। ३—प्रात काल।

उठि उठि आपन मारग गहहीं, गुरु बाजु चेला कहँ रहहीं।
चले पखि उडि पींजर टूटा, उडसा नाच पखाउज फूटा॥
चितिनि खोलि झरोखा बारा, देखै कहा बसत उजारा।
ना सो फूल न सो फुलवारी, दिष्टि परी उकठी सब बारी॥
ना वह भोर जाहि रँग राती, बिहरै[1] लाग कौल कै छाती।

बिगसत कौल न बार भइ गयौ अथै जग भान।
मारेसि इँट देखाइ गुड साई भा उपखान[2]॥ २९५॥

यह कहि कौल फूली कुँमिलानी भा रवि अस्त सूखि गा पानी।
कौल देखि चंद कुमुदिनि धाईं ससि गरास भा डरीं तराईं॥
कहहिं कि यह अजुगुत भा कहा राहु न काउ चाँद कँ गहा।
इहे घरी हम बारन अहहीं, लागी सौन कहत पुनि रहहीं॥
आनन ढाँक देखाउ न काहू चाँद सँपूरन लागै राहू।
लागीं सब मिलि करै सम्हारा पूछहिं कस भा जीउ तुम्हारा॥
चंद बदन जो दमकत अहा कहा मलीन रानि तब कहा।

का पूछहु किन देखहु खोलि झरोखा बार।
फूला रहा बसत जहँ तहाँ उडै अब झार[5]॥ २९६॥

ऋतु बिपरीत भई चहुँ ओरी, गा बसन्त तब लागी होरी।
पलहा माहँ भया सब कहा साँतुक[6] हा कि सपन बिधि अहा॥
धाएउँ देखि रही घर की सी, गई अथै हरिचंद पुरी सी।
चटक लाइ गयो कछु जोगी, उठिगा बैद जियै नहिं रोगी॥
जोगिन आह छंद बहु साखा घर घर फिरहिं लेत पुनि भीखा।
जे जग छार लपेटी कथा, तेहि का होइ काहु की मथा॥
तासौं सकति प्रीति तुम्ह लाई, जो नहिं भयौ काहु कर आई।

१—बिहरना = फटना। २—उपाख्यान = कहानी। ३—स अयुक्ति = असंभव, अचंभा। ४—मना करती। ५—धूल। ६—जाग्रत अवस्था।

काज परा तेहि कठिन सों जे न कोइ अपनाइ ।
गया अकारथ यह जनम बरु न जनमती माइ ॥ २९७ ॥

जो जानत वह अस निरदई, कत हौं प्रीति करत घर गई ।
जरौं मरौं जिउ उठै परखा दीप पतग भयो मोर लेखा ॥
सहस[1] पतग जो आपु जरावा, एक न दीपक भाएँ आवा ।
हम तन इहाँ रहा अधजारा गयो दीप घर क अँधियारा ॥
कहाँ जाउँ तन पख न पाऊ, मरौं खाइ विष इहै उपाऊ ।
कर हुत रतन जाइ जा खोई, भागन बहुरि पाव जग कोई ॥
आपन दीप कहौं का काऊ गइउँ सोइ लाग्यो ससि राहू ।
सीख लेहु सखि मोहि सों, जनि करि हठ मकु खोउ (क) ।
प्रेम पथ चढि सोउ जो, सो ऐसें पुनि रोउ ॥ २९८ ॥

सखिन्ह कहा सुनु चित्रावली, वह सो भोर तुम्ह पकज कली ।
फूल फूल करि मधुकर फेरा, आइ काल पुनि लेइ बसेरा ॥
जौ तें जीव ओहि पर परछेवा, उहौ परिहि होइ चिरिनि[2] परेवा ।
पै दिन दस पुनि काढहु पीरा, मिलिहि आइ जौ जीउ सरीरा ॥
गुपुत रहहु कोउ लखै न पावे प्रगट भएँ कछु हाथ न आवै ।
गुपुत रहे ते जाइ पहूँचे, परगट बीचहि गए बिगूचे ॥
रहिये गुपुत भेद नहिं कहिये, जैसी परै तेसि अब सहिये ।
खीन मयक जो दुइज भो, पुनि सो मयक अकास ।
ए सब बिधिना क चरित, जनि जिय हाउ निरास ॥ २९९ ॥

---

(२२) अजगर खड ।

कुँअर अँधेरें हा जहँ परा बिधिना कहँ विनवै भा खरा ।

(क) सीख लेहु सखि मोहि सों, नगर जकर हुत खोउ ।
प्रम पथ चढि सोउ जो, सो पुनि यहि विधि रोउ । पाठा ।
१—सहस्रा । २—चिन्नी = चक ।

ए गुसाँइ जग—रच्छ बिधाता तोहि बिनु और न दुख सघाता (क)॥
अह निसि जगत कीन्ह सब तोरा, तें सिरजा अँधियार अँजोरा।
तहाँ सरग ससि सूर बनावा तहाँ कीन्ह दधि अत न पावा॥
तहाँ सकल गिरि मेरु सँवारा तें सब कीन्ह नदी औ नारा।
तुहीं पताल कीन्ह बलि बासू तें पति और सबै तोर दासू॥
तुहीं सोई जो सब जग पूजा सुमिरौं काहि और नहिं दूजा।
तें सुखदायक दुहूँ जग दुख भजन जेहि नाउँ।
तहीं बिछावसि[1] दुइ मिले, तहीं करसि एक ठाउँ॥३००॥
मैं जबहीं जिय सोरा तोहीं, तहीं मया करि काढे माहीं।
कूप माहिं जे सुमिरन साजा काढि किय तें देस क राजा॥
प्रेम बिछोह अध जहि की हे बहुरि मिलाइ जोति तेहि दी ह[2]।
अगिन जरत जे तहाँ सँभारा किय ताहि फुलवारि अँगारा[3]॥
मैं अब परा आइ तेहि ठाऊँ, अपनी सकति निकास न पाऊँ।
मकु तें होइ दयाल बिधाता, तारे निकट कहाँ यह बाता॥
मैं जस हा तस कीन्ह गोसाईं, अब तूँ कर जस चाहसि साईं।
हेरु गोसाईं आप कहँ मोरे काँ जनि हेरु।
आपन नाउँ दयाल गुनि, हो दयाल एहि बेरु॥ ३०१॥
जहाँ कुँअर चित सुमिरन ठाना, अजगर एक आइ नियराना।
ओदर[4] खोह जाहि नहिं अतू लीलै हस्ति और को जतू॥

(क) दुख सुख दाता—पाठा। १—बिछुआता है। २—यूसुफ को उसके भाइयो ने कुएँ में फेंक दिया था और कह दिया था कि यूसुफ को भेडिये खा गये। उसका बाप शोक मे अधा हो गया। यूसुफ का कारवान ने निकाल कर मिश्र मे बेचा। वह वहा भाग्यवश राजा हो गया। कनान मे काल पडने से उसके भाइ मिश्र गये। वहाँ यूसुफ ने उनकी रक्षा की। चलते समय अपना वस्त्र दिया और कहा इसे अपने बाप का देना। उन लोगो ने जब कपडा अपने अधे बाप को दिया तो वह उस कपडे को मुँह पर डालने से देखने लगा। ३—हदीस मे लिखा है कि खलील पैगम्बर को काफिरो ने चिता मे फूँक दिया था पर खुदा ने उनके लिये चिता का बाग और अगारे को फूल कर दिया था। ४—उदर = पेट।

सिखर डाँग[1] तस आवै चला बन बीहर सब कॉ दलमला ।
औ तहँ पाइस मानुष बासा खोह लाइ मुख ऐंचिस साँसा ॥
पाहन रूख डार भरमाना साँस सग पुनि कुँअर समाना ।
गयो कुँअर पुनि साँसहि लागी, उठी खात ओहि ओदर आगी ॥
परखा उलटि भा उदर दुहला डारिसि उगिलि जेत हुत लीला ।

आजा अजगर जीउ ले, परा कुँअर बिलँभार ।
जे तापे बिरहा अगिन तहिँ को निजवै[2] पार ॥ ३०२ ॥

कुँअर लँभारि बेठु पुनि तहाँ नन न जाति जाइ उठि कहा ।
टोइ टोइ तहँ ठाव सँवारा टारे पाहन आ द्रुम डारा ॥
बनमानुष एक तेहि बन अहा कुँअर चरित सब देखत रहा ।
कहसि जाहि बिधि चहे न मारा अस अहि ओदरहु ते निसारा ॥
जौ जम सौं बिधि जीउ उबारा, रह न नैन जोति बिष झारा ।
कौन जिअन जो नैन न जोती, सोत न लहे पानि बिनु माती ॥
हाथ पाँव बर बुधि सब आही, एक बिनु नैन करै का काही ।

मान न बातें इमि करै जौलहु घट महँ पौन ।
बिनिना एतना राखु थिर, नैन बैन औ सोन ॥ ३०३ ॥

बिधि तेहि हिये दया उपजाई, नियरे हाइ पुनि देखेसि आई ।
देखि रूप मन किहिसि बिचारी, यह सुरपुर हुत दिये अँडारी[3] ॥
जग न होइ अस काई मानवा, निहचे यह गन गंधव छवा ।
अब पूछौं एहि की सब बाता, कौन जाति कस कीन्ह बिधाता ॥
केहि अभाग क दीन्ह सरापा, अस कारन दहुँ भौ केहि पापा ।
कहेसि रे अंध बिधाताद्रोही, कहु सो सन सत पूछौं तोही ॥
जो सत सग साथ लष गोती, हियें सत्त लोचन सिर जोती ।

सती मरै जौ सत चढै सत्त सहस दस आउ ॥
तन मन धन बरु जीउ किन, जाउ सत्त जनि जाउ ॥ ३०४ ॥

१—पहाड़ । २—निगलना । ३—गिरा दिया ।

सत्य सपत दै पूछौं तोकाँ का तोर जाति जन्म कहि लोकाँ।
का तोर सरग देव(क) औतारा, इन्द्र सराप लहे महि डारा॥
कै रे जनम बल बासुकि देसा, कै तपि मही आइ परवेसा।
केहि गुन सकति इहाँ तैं आवा, मानुष इहाँ न आवै पावा॥
जौ मानुष तौ गुन कहु मोहीं जहि तैं साँप न निजवै तोहीं।
कै तैं जनम अंध चषु पाए, कै अबहीं भौ अहि के खाए॥
देखौ सब मानुष के भावा कहु सत इहाँ कौन लै आवा।

देखत लोना रूप तोर छोह उठै जिय माहिं।
कहसि सत्त सत पूछौं सपथ सिभु दै तोहिं॥ ३०७॥

---

(२३) बनचर खंड।

बनचर बचन कान जब परे, कुँवर रोम तन भै सब खरे।
मानुष जानि रहस उपराजा, कहिसि किहौं मानुष बिधि साजा॥
जबूदीप देस जग जाना धरनी धर पितु पूत सुजाना।
दच्छिन दिसा गएउँ होइ जोगी, चित्रावलि के रूप वियोगी॥
रूप नगर जहँ चित मन हरा, तहाँ जाइ काहू हौं छरा।
दै अंजन चषु कै अँधियारा छिन महँ इहाँ आनि हौं डारा॥
तैं कहु सत को हसि का नाऊँ, गाढ़े मीत भएसि पहि ठाऊँ।

कहेसि कि जस तूँ तेस हौं कोइ बस बन कोइ देस।
हम सब सेवक ताहि क जो जग दुहूँ नरेस॥ ३०६॥

अब चित चित करहु जनि भाई, कहौं मीत तौ करौं उपाई।
औषध देउँ नैन होइ जाती, अब फिरि पानि चढ़ै चख मोती॥
यह कहि बनचर बन कहँ धावा, घरी चारि बीतें पुनि आवा।
अंजन घसा पात पर कीयें, नैन्हन होइ जोत जेहि दीयें॥

(क) लोक—पाठा।

कुँअर हाथ पर पात ओंडारा, आपु ठाढ भा कूदि निनारा[1]।
कहेसि देहु यह अंजन आँखी, हम तुम बीच बिधाता साखी॥
कुँअर नैन लै अंजन दीन्हा, गा तम मेटि उदै रवि कीन्हा।

परा कुँअर कहँ दिष्टि जग(क) मन बच कहसि पुकार।
चषु निरमल जग सूर हो, जो जग पर उपकार॥ ३०७॥

दिष्टि परा बनचर जो अहा, ओहि का देख कुँअर तब कहा।
नियरे आउ रे परउपकारी तन मन जीउ कपाँ बलिहारी॥
कहसि तो हौं नियरे चलि आवा, तुव चरनन रुचि आँखि लावौं।
निमिष न जाइ निखादे तोरा तें सहदेव धनतर मोरा॥
कहसि कितैं केहि देसक अहई छाडि झूँठ काउ साँच न कहई।
आन क दरब लेहु जिउ मारी निसि चोराइ दिन कइ बटमारी॥
आन क मानुस आन जो होरा कहु परतीत कौन तेहि केरा।

जौ हम जानत सत्त बिनु असत न तहाँ समाइ।
छाडि देस सपति सकल कत रहते बन आइ॥ ३०८॥

यह कहि बनचर बन कहँ चला देखि देखि हाथ कुँअर पै मला।
रहेउ ठाढ सनमुख चखु लाई जौ लहु बन माँ गयो छिपाई॥
कहेसि हतु जो इन्हके नाहीं तो तजि देस रहहिं बन माहीं।
अब उठि चलौं तजौं एहि ठाऊँ, करम सँजोग पथ मकु पाऊँ॥
चला कुँअर उठि बन खँड माहीं सग न काउ बाज[2] परछाहीं।
सौंरि हियें चित्रावलि नेहाँ, नैनन्ह चुवे मघा कर मेहाँ॥
नदी नार बन चहुँ दिस फूला, भटकत फिरै कुँअर तहँ भूला।

पथ न सूझ असूझ बन चलत राह नहिं पाइ।
खन बैसइ खन धावइ, खन रोवइ बिलखाई॥ ३०९॥

१—नियारे अलग। (क) दिष्टि परा जग कुँअर कहँ। पाठा। २—मिला।

(२४) हस्ती खंड ।

बीते चलत पाख दुइ चारी, परा दिष्टि एक कुंजर भारी ।
ऊँच सीस जनु मेरु देखावा, सूँड जानु अजगर लरकावा[1] ॥
तरुवर जनु चबाइ दुइ दाँता, डारत आउ खेह मदमाता ।
धावत जाइ पुहुमि जनु धसी, आवै पीठ सरग सों खसी ॥
भागहिं और हस्ति मद बासा कुँअर देखि जिय भयो तरासा ।
कहेसि मीचु अब पहुँची आई एहि आगे कहँ जाब पराई ॥
अस्त्र नाहिं जो सम्मुख धाऊँ, मारौं एहि जैपत्र[2] जौ पावौं ।
जनम अकारथ जगत भा, गई अमिरथा आउ ।
चित्रावलि के दरस कर रहा हियँ पछताउ ॥ ३१० ॥
अस्त्र न जो सनमुख होइ लरा, जो निजु मरन भागि का मरौं ।
कुंजर धाइ कुअँर पर परा, रहा ठाढ़ ही नेक न डरा ॥
धाइ लपेटि सूँड सों लीन्हा चाहेसि मूड डाढ़ तर दीन्हा ।
कुअँर हिये बिधि सँवरा तहाँ, जो बिधि केर माचु तेहि कहाँ ॥
ततखन राज पछि एक आवा, परबत डोल जो डैन डोलावा ।
ओहि हस्ती पर टूटा आई, गहि ले उडा सरग कहँ जाई ॥
सूँड समेटि जो कुंजर रहा कुअँर न छूट डरन्ह सुठि गहा ।
उडा जाय अतरिख महँ दीखै जैस पहार ।
धरी चारि महँ लै गयो, सात समुद्र पार ॥ ३११ ॥
बारिधि तीर जहाँ हुत रेतू परा तहाँ छुटि कुअँर अचेतू ।
भरि गये सीस देह सब खेहा जेहि तन नेहाँ गति देहि पहा ॥
जेहि के हिए बस प्रान पियारा सतत देह चढावै छारा ।
जिमि जिमि छार देह पर चढा, तिमि तिमि रूप मुकुर जिमि बढा ॥
छार चढावैं बहु गुनि जोगी छार मरम का जानै भोगी ।
मानुस देह छार हुत कीन्हा, छारबुद्धि[3] जिन छार न चीन्हा ॥
कवन जनम केहि तप करतारा मूँठी छार अमित बिस्तारा ।

१—लटकाया हुआ । २—जयपत्र । ३—बुद्धिहीन ।

दखि बडाई छार की, बसेउ आइ करतार।
छारहि ते कीन्हेसि सबे, अत कीन्ह पुनि छार ॥ ३१२ ॥

पहर एक गइ उठा जा चेती दखा परा समुँद की रेती।
ना सो हस्ति जहि क बस अहा ना सो पछि जा कुजर गहा ॥
सौरिस हिय बिधाता सोई जहि क करत खल सब हाई।
ऐ गोसाइँ तै दुहुँ जुग राजा ए सब चलित तोहि प ताजा ॥
जिअतेहिँ मारि मिलावसि छारा चहसि तो दसि फरि आतारा।
गिरि परबत कै पालि बहावसि पानिहि सानि समरु दखावसि ॥
छत्रिन अछत[1] राँक सम करई चहइ तू छत्र राक सिर ऊई।

भजन गठन समस्त तू आर न दूजा काइ।
तही अहा अरु है नहीं आ पुनि आगे हाइ ॥ ३१३ ॥

कुअँर सवारि चित्रावलि नेहा उठि क चला झार तन खहा।
गिरि परवत औ कानन घना प्रेम प्रसाद न लेख गना।
निडर जाहि तेहि बन खँड माहीँ जम सो बाच मीच अब नाहीँ ॥
बीता चलत मास एक सारा बन आगन आ भा उजियारा।
रहसा हिय देस जब पावा दृष्टि परा एक नगर सोहावा।
कहेसि जाउँ अब नगर मझारी मकु मिलि जाय काऊ अपारी।
पूछि लेहुँ तेहि नगर की बाटा चित बिकान ह जहि की हाटा ॥

देखेसि पुनि फुलवारि एक फूले फूल अमान।
अलि गु जारहि जहाँ तहँ करहिँ मजार कलोल ॥ ३१४ ॥

देखि अपूरब ठाउँ सोहाई, कुअँर तहाँ जिनु पठउ जाइ।
सपति कुसुम देखि चित लावा लोचन जर निहारि सिरावा ॥
जूही फूल दिष्टि भरि हरा लखै भाव चित्रावलि करा।
देखि गुलाल अधर चित चला, दारिम दसन रहसि हिय बढा ॥
चपक माँहि सरीर की सोभा नारँगि लखि उरोज मन लोभा।

१—अछत्र = निश्छत्र। २—समाप्त हुआ।

अली माल फूलन पर हेरी, होइ सुरति अलकावलि केरी।
गीव मजोर देखि मन आवा, लोचन खजन आइ देखावा॥
जाहि होइ चित की लगनि, मूरख सों सो दूरि।
जान सुजान चहूँ दिसि(क) वोहि रहा भरि पूरि॥ ३१५॥

---

(२५) कौलावती खड।

सागर गढ पति सागर राजा सागर नाउँ ओहि पै छाजा।
दारिद गहा आउ जो दुखी, एकन लहर करै पै सुखी॥
तेहि कै सुता कौंलापति बारी सखिन साथ आई फुलवारी।
सब मुगुधा[1] जोवन अँगिराता कोइ ज्ञाता[2] कोई अज्ञाता[3]॥
काहु तन अजहू लरिकाई काहु घेरि लीन्ह तरुनाई।
जोवन सिसुता सम तन काहू, कोउ न जान कोई कस नाहू॥
सबै कँवल जनु सूरन देखा सब कुमुदिनि जनु चाँद न पेखा।
अजहूँ मनमथ उपनत[4] पेम न जानहि नाम।
अजहुँ काहु देखा नहीं, सुरति[5] सेजसग्राम॥ ३१६॥

कौंलावति गुन सागर रानी पढी अमर पिंगल सुर ज्ञानी।
लागी तजन गात सिसुताई आए सँचार कीन्ह तरुनाई॥
आइ जो रतिपति गात समाना भूषन चाउ हिये अधिकाना।
घरी घरी पुनि लाज सुहाई लोचन दसन झाँपि कै जाई॥
भौहँ धनुख उतँग होइ चढी, लोचन कार दुहूँ दिसि बढी।
उर अँगिरात भाँति अति भली कँचन बेलि कपूर की कली॥
राजत रोमावली सोहाई, कुँदन कोविदार सी खाई।

(क) कइ सुजान सो जानइ। पाठा॰

१—मुग्धा। २—ज्ञात यौवना। ३—अज्ञात यौवना। ४—नाथ = पति।
५—उत्पन्न। ६—सभोग। ७—स्वर = संगीत।

सिसुनाई तन कोटि गहि रही अटक दिन चारि।
चलि निकसि पुनि हारि कै, तरुनाई बरि आरि ॥ ३१७ ॥

कौलावती आइ फुलवारी, फैलि गईं चहुँ दिशि सब बारी।
देखि पुहुप चित भया हुलासा, लागा तोरन कुसुम सुबासा॥
गूँथहि हार गींव लै डारहि करहि गेंद आपुस महँ मारहिं।
मारत सीस कस मुकुलाई[1] धावत उर अचल फहराई॥
खेलहि त्रिया सबहिं बिलम्हाई रति[2] के रूप रभा[3] की जाई।
साजि गेंद कौलावति रानी सखी एक कहँ मारि परानी[4]॥
हँसति आय धाइ कै तहवाँ, कुअर सुजान बैठ हुत जहवाँ।

देखत रूप कुँअर कर रही अचक होइ ठाढि।
जम होइ हिये समाइ गा लीन्हेसि जिउ जनु काढि ॥३१८॥

आनन देखि रही खिन खरी पुनि मुरछाइ पुहमि खसि परी[5]।
प्रान परा प्रेमानल आँचा उडिगा रहा हाथ पै साँचा[6]॥
सखी सबै चहुँ दिसि तें धाईं देखि चरित सब रहीं ठगाईं[7]।
करहिं सँभार न जागै रानी मेलहिं दसन खोलि मुख पानी॥
घरी एक बीते भा चेतू आहि अचेत आउ हिय चेतू॥
पूछहिं बात उतर नहिं देई घूमत रहै साँस पै लेई।
करहिं बसन लै मुख पर छाहाँ कहहिं भयो का खेलत माहाँ॥

पुनि जो देखिन विरिछ तर, तपसि एक अनचीन्ह।
कहा सबन मिलि निहचै ए जोगी कछु कीन्ह ॥३१९॥

१—मुकुलित होता था = खुल जाता था। २—कामदेव का पत्नी। ३—रभा एक इंद्र लोक की अप्सरा। ४—भागा। ५—गिरि परी। ६—ढाचा = ढन्नी। ७—ठकमारी = विस्मित।

छरी[1] काहु एहि खेलत माहीं, अब धौं इहां रह भल नाहीं।
पुनि जो एकमत होइ सब आईं, डाँडि घालि मदिल लै आईं॥
औ पुनि सबै गईं लै तहाँ कौलावति की माता जहाँ।
गगा नाउँ उदधि की जोरी, धन जननी जेहि बिमल किसोरी॥
बोलीं सखी नैन भरि पानी खेलत कँवल कली कुम्हिलानी।
दाडिम डार गहे हुति खरी, कै दानो कै चुरइलि छरी[2]॥
सुनतहिं लहरि चढी चित गगा होइ गइ विकल भयो सुख भगा।

देखि अवस्था धीय कै, उठी करेजे पीर।
बूडि गई नख सिखर लो, दुहुँ लोचन भरि नीर॥ ३२०॥

कठ लाइ मुख चूमै रानी, धोव बदन नैन के पानी।
पूछै बात प्रान कहु मोरा काहे बूडि गयो जिउ[3] तोरा॥
कै तुइ तन कोउ पीर उपाई कै कछु दिष्टि परा हुन आई।
कहसि बेगि जेहि औषद मागौं प्रान होइ तौ देत न खागौं[7]॥
बैद बुलाइ खिआवौं बरी जोगिन्ह आनि बँधावौं जरी[8]।
जोगी नाम कान जब परा बहुरा चित जो चित हुत हरा॥
देखा नैन खोलि चहुँ ओरा देखेसि सीस माता की कोरा।

लाज सकुच चित ऊपजी, उठी बेगि अकुलाइ।
बैठी मोढि सँभारि पट लोचन गए सुखाइ॥ ३२१॥

रहसि रानि जब देखिसि चेतू, कठ लाइ पूछै करि हेतू।
नित गौनति खेलति फुलवारी आजु विकल काहे भइ बारी॥
कहेसि सखी सँग अपने जाई, भँवति[9] फिरत हुति बाल सुभाई।
फिरत सीस चखु भा अँधियारा, ताँवरि[10] आइ परी बिकरारा॥
तुम माता जनि बिसमै करहू, अब जिय कुशल हियें जनि डरहू।

---

१ छली = मन मारा। २—डाली। ३—आवेश किया। ४—मुरझा गई। ५—जी बूडना = मूर्छा आना। ६—उपाइ = उत्पन्न हुई। ७—कमी करो। ८—बटिका = गोली। ९—जडी = औषध। १ —भ्रमित = घूमती हुई। ११—भाइँ = मूर्छा।

सुनि रानी जिय भयो अनन्दू छाडेउ राहु पून कर चन्दू ॥
परतिहार[1] सों कहा हकारी, अब जनि जान देहु कहुँ बारी ।

दिन भर आय यहँ छइन[2], परी साँझ जब आइ ।
बिकल भई कौलावती चढि धौराहर जाइ ॥ ३२२ ॥

बिकल कँवल अथएव जनु सूरा हिरदै जमेउ बिरह अँकुरा ।
लोचन नीर सेज सब बूडी कौलहि अछज भई जर जूडी ॥
दहकि सरीर अगिनि जनु लाई जहँ जहँ भीजै जाइ सुखाइ ।
सायक अनिल अनल भइ ससी साँपिनि सेज अग अँग डसी ॥
भवन भयेउ निखड अँधियारा बोली चुरइलि नाहर ढारा ।
कुमुदिनि नाउ सखी एक अही तासों बोलि बिथा सब कही ॥
सुनु कुमुदिनि त कँवल की जोरी, सगिहु सन ना भावै चोरी ।

हम तुम्ह ठाँइ एक सग अब प्रगटेउ सोइ नात ।
तोहि सों कहौं उघारि के सुनै न पावै मात ॥ ३२३ ॥

तोहि सो कहौं जा मोर मन माना परै न पाउ आन के काना ।
कालि जो गई सखी सँग बारी बीनत आहि फूल फुलवारी ॥
जागी एक अहा तहाँ लोना देखत जनु सिर मलिसि टोना ।
भौंह धनुष बरुनी सर साधा मारसि हियँ बान विष बाँधा ॥
सुधि न रही बुधि लैगा हरी, बिनु जिउ होइ पुहुमि खसि परी ।
मैं अचत वह अहा सचतू, गयो बिछोहि[4] हिए दै हतू[5] ॥
नहिं जानौं दहुका भा जोगा भई जाहि कारन हौं रोगी ।

खोजहु सखी सो जोगना, जो रे गयो मोहि मारि ।
नाहि तौ करिबौं काँधरी तन दुकूल मै फारि ॥ ३२४ ॥

अबहीं एही नगर महँ सोई, पावै बेगि जो खोजै कोई ।
आजु जो इहाँ खोज सो पावा, कालिह जो जाइ रहै पछतावा ॥

१—प्रतिहारी = रखवारा । २—क्षय हुआ । ३—दहार = गर्जन ।
४—यात्रिका । ५—छोह रहित = निर्मोही । ६—प्रम ।

पथिन्ह दया होइ सुनु थोरी, मन जहँ रमै चलै तेहि ओरी।
हौं अधीन वह अति निरदई, दहुँ कहि भाँति निबाहै दई।
पथी पछी थिर का राखा, छिन छिन बैठ आन तरु साखा॥
ओहि सुपख बहु तरु घर डारा, हा पींजर महँ करौं पुकारा।
कौन सो हितू मिलै अब आइ, व्याधा होइ फँदाये[1] ओई॥
हा पहुँ तँ जौ उडि गया, पुनि कहुँ दिष्टि न आउ।
तहि पखी क पाछु महँ, जनि बूझि जिव घाउ॥ ३२५॥
कौंल बिथा सुनि कुमुदिनि रोई, अस दुख दुखी कहसि जग कोई।
अबहिँ न सूरज किरिन समानी, अनगुन कौंल कली कुम्हिलानी॥
अबहिँ न बैठि रहस रस कीन्हा, भार बियाग आनि बिधि दीन्हा।
उपजेउ प्रेम हियँ जो आई, कहु न चित मेँ करब उपाई॥
प्रीतम नेह अगिनि जनु डरिय, एकहि बार धाइ नहिँ परिये॥
धरै धीर दुख सहै जो बारी, ताहि सो अगिनि होइ फुलवारी।
हौं कुमुदिनि पढि पारथ जानौं, कहसि तो माहि सरग ससि आनौं॥
तोर बिथा सुनि मोर हिय, जामेउ बिरह अँकूर।
अब निसि बीते कौंल कहँ, मोर देखावौं सूर॥ ३२६॥
कुमुदिनि सो मन रचा उपाई, भोर होत गगा पहँ आई।
कहेसि राति मैं सपना दीठी, जागी सँग जनु बार बईठी॥
तिन्ह मह एक सिद्ध जो आहा, कौंलावति कर अचल गाहा।
हौं जनु बरबस जाइ छोडाई, जोगी माँगै खपर भराई॥
एको नाहिँ जौ देखौं जागी, तब ते नैन चटपटी लागी।
कस यह सपन कैस बेवहारा, तुम रानी अब करहु बिचारा॥
कालिह जो कवँल अग भरि आवा, मकु कछु होइ देव कर भावा[4]।
बोली गगा साँचही, महादेव कर भाव।
जोगिन्ह आनि जेवावहु, जाइ कौंल अरसाव[5]॥ ३२७॥

१—फादा लगा क फँसाव। २—घाला = लगाया। ३—अज्ञात।
४—भाव = आवेश। ५—आधा।

कुमुदिनि रहसि रसोई साजी, सगरे नगर दुदभी बाजी।
जोगी जन कोइ कतहुँ न जाई जो आवै राखौ बिलमाई॥
आनि जँवावै अपने दोसा[1], राजवार कर लेइ परोसा।
पाक रसोई ठाँव सवारा, जन कत गये बुलावनहारा॥
जोगिन पाँति आनि बैलाई, कुमुदिनि कौलावति पहँ आई।
चौहँडु आइ कौल रवि मानी जेहि बिनु रहसि रैनि कुम्हिलानी॥
को अस जोगि काहि सिर जटा जेहि क बिरह परी हिअ कँटा।

सुनि धाई कौलावती भा अनन्द हिय माँझ।
चितवत भई निरास जिअ, होइ गई जनु साँझ॥ ३२८॥

कहसि कुमुदिनी एह गन तारा वह निहँ आउ सूर उजियारा।
बेगहिं खोजहु देवसहिं जाई जनि रहि जाई रैनि हिय झाई॥
आसन आसन ढूँढहिं दासा दहु कहि आसन मिले सो आशा।
कुँअर गवन सर साज सँवारा, तत खन आवा राज हँकारा[2]॥
कहसि आजु है राज बुलावा, जागिन कतहुँ जाइ नहिं पावा।
पहिले राजपरोसा खाहू पाछे जहँ भावै तँह जाहू॥
अग्या राज न मेटइ कोई का जोगी का भोगी होई।

जोगिन्ह सुना अतीथ एक, आवा अग्या मानि।
बहु आदर कै लइ गए, सिह पुरुष पहिचानि॥ ३२९॥

कुमुदिनि देखि कुँअर की ओरी, कहेसि किये अलि पकज जोरी।
निहचै यही बिदेसी जोगी, परगट जोगि गुपुत कोउ भोगी॥
निहचै यही सूर उजियारा जेहि बिनु कौल आहि बिकरारा।
निहचै यही सो भौंर उदासी जेहि बिनु जल मँह जलज पियासी॥

१—दिवस = द्योस = दिन को। २—बुलावा।

निहचै यहि पहँ पेम ठगौरी[1] जो धन[2] देखै होइ सो बौरी।
जानि बूझि कोउ जीव न दई लोयन कोर छोरि जिउ लेई॥
धनि सो कँवल धनि यह रबि साईं हम कुमुदिनि कहँ लखैं तराई।

गई धाइ सो देखिकै कँवलावति क पास।
कहसि कि मलिनाई तजो सूर कीन्ह परगास॥ ३३०॥

सुनत सूर कोलावति रानी, अति हुलास चखु भरि गए पानी।
तब कुमुदिनि हँसि पूछा बाता कहु दहुँ माहिं सूर परभाता॥
जहँ हुलास तहँ हँसी बखानी लोचन पानि भरे का जानी।
कौलावति तब उत्तर दीन्हाँ, सुख कर ठाँव दु ख हुत कीन्हाँ॥
निसि जो अथैगा पीतम सूरा हिय सर रहा दु ख जल पूरा (क)।
अब पिउ आइ चाह तेइँ दीन्हा, सुनि सुख हस फुरहुरी लीन्हा॥
तेहि की पाख पानि जो अरा सो दुहु लोचन के मगु ढरा।

दिष्टि लपेटी सुरति पिय, अब सुनि दरसन होइ।
दुहुँ लोचन के नीर सों बेगिअ डारा धोइ॥ ३३१॥

कौल आइ दिनकर पहिचाना, भा रतनार[5] बदन पिअराना।
दरसन देखि दडवत करी, कहेसि कि एही अली हौं छरी॥
यही मोर जिउ लीह चोराई, यही मत्र पढि हौं बौराई।
जेहि बिनु राति अही कुम्हिलानी सो तैं सूर देखावा आनी॥
तैं बरबस हौं चेरी कीन्हा, औ बिनु दाम मोल पुनि लीन्हा।
ओहि के हेरत हिय न सेराई, नियर जाउँ करु सोइ उपाई॥
अलमन आवै होउ जो होना, नियर जाइ मुख देखो लोना।

१—ठगने की जडी। लोगों का विश्वास है कि साधुओं के पास कोई जडी होती है जिसे छुला कर लोगों को मुग्ध कर उन्हें अपने वश कर लेते हैं फिर उनसे ठग कर जैसा चाहते हैं कराते हैं। गद्द। २—स कन्या = स्त्री। ३—उगा।
४—प्रियतम। (क) हिय यह रहा दु ख कर कूरा। पाठा। ५—लाल।

कह कुमुदिनि ससय कछु , जनि जिअ माहिँ करेहु ।
आपन हाथ परोसि कै भोजन जोगिहिँ देहु ॥ ३३२ ॥

कौंल सोरहो साज बनाई , रहसि सभु[1] सेंवा कहँ आइ ।
अपने हाथ परोसा लेई , दुनौं हाथ जोगिन कहँ देई ॥
दइ भोजन बिनय कर जोरी मन अरु नैन कुँअर की ओरी ।
कुँअर न देखै सीस उँचाई रहा नैन दुइ पाए हँ लाई ॥
कौंलावति कहँ सबै सिगारा अग अग हाइ लाग अँगारा ।
जाहि लागि सब साज सो साजा देख जा सो न आव केहि काजा ॥
बहुरि हिये महँ करै बुझाऊ जौ न देख तो का पछिताऊ ।

मोरे मुख सों सहसगुन सुन्दरता ओहि पाउ ।
जौ दिन दीप न दीखई यहि कर का पछताउ ॥ ३३३ ॥

पुनि रानी छर[2] एक उपावा भोजन भीतर हार चारावा ॥
तेहि भोजन सों खप्पर भरा लै सुजान के आगे धरा ॥
औ पुनि ठाढ भई कर जोरी , सुनहु देव एक बिनती मोरी ।
बारी गयेउँ कालिह एक घरी , खेलत तहाँ काहु हाँ छरी ॥
तेहि घरी सेती अब नाईँ डोलै गात पात की नाईँ ।
औ जो चित्त काहु हुत हरा , अबहीँ आइ फेरि घट परा ॥
परसन होहु करौं नित पूजा , मोरे तुम बिनु और न दूजा ॥

देखु न हिये बिचारि कै तोर सबै यह भाव ।
करु सुदिष्टि औ कृपा जेहि जाइ मोर अरसाव ॥ ३३४ ॥

सुनि के कुँअर हिये तब जाना , चलत पथ झाँखर[3] अरुझाना ॥
जो बरि चलौं कहै मति छोटी , अरझत हाइ बात पुनि खोटी ।
मोरे करत न एकौ होई , जो बिधि करै होए वै सोई ॥

१—शिव = यारा । २—छल = चालबाजी । ३—कँटीली झाडी ।

यह गुलि खप्पर झोला पाहा[1] उठि भा ठाढ कौंल नहिं चाहा ।
गुरु के उठत उठे सब चला कौलहिं भा जनु निसि सों मला ॥
पकज सो कुमुदिनि हँसि बोली आजु सोह धन बेलि कि बोली ।
बना अग अँग सबै सिंगारा पै कस गाँव न पहिरे हारा ॥
सुनि कै देखसि उरज कँह कहसि अबहिं है टूटि ।
इहँवहि काहू लीन्ह है और कहूँ नहिं छूटि ॥ ३३५ ॥
भा अँधेर सब काहुन जाना कौंलावति कर हार हराना ।
ढूँढहिं सखी जहाँ नहँ पूँछा जोगि भारहिं झोली छूछी ॥
कौंले नेगिन्ह कहा हँकारी साधु चोर कै लेहु बिचारी ।
ठाढ होहु घरि के बारू राकहु बाधा और सेवारू ॥
एक एक सब काहु हरी सीप सीधरी केका[3] नेरी[4] ।
कौतुक देखे सब ससारा साधु चोर कर हाइ बिचारा ॥
आजु कसहु कचन के ताता हहु को पीत हाइ को राता ।
जोगी बोले सहज सो मुद्रा मुकटा बार ।
जाना एही पथ अब दै दै आपु बिचार ॥ ३३६ ॥
नेगी ठाढ भए तेहि बारा एक एक कर लेहिं(क) बिचारा ।
कथा भारि ढूँढि कै झोली, गहि भुज काढि दहु भल बोली ॥
चलत दिगबर काउ न पूछा गहै न कोऊ देखि कै छूछा ।
देखि दिगबर सब पछताने जोगि पथ तब भये अचाने ॥
काहे लागि समेटी झोली तापी कस न लाए के हाली ।
काहे के हम कथा सीया काहे लागि हम धधा कीआ ॥
भा भरि जनम काँध कर भारा आजु सो गीवँ केर फँसियारा ।
भा गिव कथा काल अब औ जम झोली काँख ।
भारन अरुझा जाइ के अपने सीगन्ह झाख ॥ ३३७ ॥

१—ढाला । २—एक मकुली । ३—नालकुमुदना । ४—वर्री = कुई का फल । (क) लाग—पाठा ।

(२६) जोगी बधन खड ।

देखि देखि सब काढ जोगी रहा पाछ तब बिरह बियोगी ।
कहसि कि महँ निकसि कै जाऊँ जोगिन साथ पथ मकु पाऊँ ॥
अस नहिँ जानै जोगि अजाना राज परासा बिष सों साना ।
जे रुचि राज परीसा खाया जानि बूझि ते जोग नसाया (क) ॥
जोगिहिँ राज सग तस लागा फूलहिँ आँजन कर जस दागा ।
निसरत अबहि बार महँ आहा सकट कै तब नेगिह गहा ॥
झोरि खोलि जब कथा झारा गिरा हार जग भा उजियारा ।
हार हराना पाउ जब(ख) चहुँ दिसि बरगा सार ।
निकसि चले जोगी सबै कुअर धरा क चार ॥ ३३८ ॥

लागा छर जो कौंले साधा मिलि जन चार चोर कहँ बाँधा ।
कुअँर देखि मन अचक रहा कहसि कि बिधि यह दाइगा कहा ॥
बोती आउ मीचु पुनि आई चित्रावलि नहिँ देखै पाई ।
गा सब जनम अमिरथा मोरा कत मे खर कतवार बटोरा(ग) ॥
ऐ बिधना जो तोहिँ अस भावा महँ जीत आहि मारग लावा ।
मन बच ताहिँ सुनावउँ भाखी अहसि तुहा अब मारी साखी ॥
जेहि कारन गिँव पहिरा कथा , जीव देत हौं तेहि के पथा ।
मान इहै पछताव मन सौंरि उठे जिउ आगि ।
इतना जान न चित्रिनी मुवा जोगी मोहिँ लागि ॥ ३३९ ॥
बाँधि चोर राजा पहँ आना देखि रूप सब जग पछताना ।
अस रुपवत चोर नहिँ होई ओ जो हाइ मार नहिँ कोई ॥
सागर नगर इहै एक रीती सतत यही रीति महँ बीती ।
तसकर जाको बिषै चोराव , ता कहँ राजा पूँछि पठावे ॥

(क) ज कहु राज परासा खावा जानि बूझि तिन जाग नसावा । पाठा ।
(ख) पावा हार हेरान जब । पाठा ।
(ग) जनमा आइ मार यह मोरा । पाठा ।

जौ सो कहै तो सूरी देहिँ नाहिँ तो बाधि डाँड कछु लेहीं ।
ग्रो जो सोइ छुडावे आई बिलँब न लाव देइ मकुलाई ॥
आपन काँध भार नहिँ लेई, तेहि की अग्याँ अग्याँ देइ ।

नृप कह जाकर चोर है ताकहँ पूछहु जाइ ।
नेगी आगे कौल के (क), ठाढ भए सिरनाइ ॥ ३४० ॥

कौले नेगिन्ह अज्ञा दीन्हा आनु सिभु की सेवा कीन्हा ।
जोगी जँवाएँ जो फल पाऊँ, जीउ मारि का पुन्य नसाऊँ ॥
मैं ससिरूप अहाँ वह राहू, गहा रहै ता मुसै न काहू ।
राखहु बाँधि याहि बँद माही ऐसन चोर छुटा भल नाहा ॥
नेगिन्ह चार बाँधि बैसारा ग्रो सँग दिये पाँच रखवारा ।
पाँचो भूत रहें नित घेरे कोइ भर चखु सौंहन हेरे ॥
कै अनेक नेगी रखवारी माँगहिँ आपनि आपनि बारी ।

जोगी परा पाच बस नातें भा बिकरार ।
पाँचो नाच नचावहाँ आपनि आपनि बार ॥ ३४१ ॥

दिन बीता निसि भई अँधेरी, कौल हिए खरकी वह बेरी ।
कुमुदिनि कहँ ले मतै बईठी कहसि चोर पहँ जाउ बसीठी ॥
कहु तैं ऐस निछोही जोगी, जीउ लेइ कीन्हेसि हौं रोगी ।
हार दिए नहिँ छूटसि चोरा जौ लौं जीउ देसि नहि मोरा ॥
जनु देखसि अपनहिँ साँकरी, तुम्हते हौं सुठि सँकरी परी ।
जौ हे परी तोर पग बेरी, मोरें हिए जो देखसि हरी ॥
जो तोर हाथन्ह है फाँसा, मोरे गिँव जेहि आव न साँसा ।

पछी पथी बन बसै, तिन्ह क भरोस न होइ ।
तबहीं लौं ए थिर रहहिँ रहहि जौ घेरे कोइ ॥ ३४२ ॥

(क) आइ कौल क आगे । पाठा ।

कहसि सत्य का हसि का नाऊँ कौन काज आएसि एहि ठाऊँ।
अरु कहवाँ का मनसा तोरी, कहु सो जाइ जिउ ससय मोरी॥
जोगि न हाइ कोउ एहि रूपा, प्रगट हासि वैरागी भूपा।
जौ हसि भूप तो परगट हाहू होइ भरोस हिए कछु मोहू॥
जौ हसि जोगि आदि गिंव कथा देहु सबद लागौं तुम्ह पथा।
तोरे पथ पथ है साईं दाहिन होहु देहु जनि बाईं॥
तोर नाव चढी हौं वारा गहि गुन खेइ लगावहु पारा।

जस तू मोरे बद महँ तस हौं तोरे बद।
तोरे तन जो एक दुख, मोरे मन सो दद[1]॥ ३४३॥

जहाँ कुअँर बँद भीतर अहा कुमुदिनि जाइ सदेसा कहा।
कुअँर कौंल जस कौतुक कीन्हा सुना सबै पै उतर न दीन्हा॥
बहुत बिनति कुमुदिनि कै हारी, देखा साँह न नैन उघारी।
हाइ निरास कुमुदिनि फिरि आई कहसि कवल सौं अल निठुराई॥
सुनु पदुमिनि कुमुदिनि हौं सोहौं, बातनि रनि खत ससि माहौं।
एह पाहन जल परे न भीजा कहाँ राइ दुख तो न पसीजा॥
सुनि कै कौंल लीन्ह उर साँसा कह अब परा कठिन गिंव फासा।

बाँधी डोरी प्रेम की, बर सौं जाइ न छूट।
दीपक प्रीति पतग चा प्रान दिये पै छूट॥ ३४४॥

पुनि आपन मन कहँ समुझावा, अबही वे मो सौं दुख पावा।
मकु बीते बासर दुइ चारा जोगि निछोही होइ मयारा॥
कहहु जाय जे हैं रखवारा, जोगी दुख सहै नहिं पारा (क)।
औ कछु तिन कहँ दहु अँकोरी[1] कहहिं न कतहुँ कथा यह मोरी॥
भूतन्ह जबही पूजा पाई, होए गए पानी गइ कठिनाई।
लालच बाँधा सब ससारा, लालच सो मृदु होइ पहारा॥
लालच हस्ती कर बल हरा, लालच सौं हरनाकुस धरा।

१—इन्द। (क) जोगी दुख न पावनारा। १—घूस।

जो सिर होइ सरग लागा नवै न कौनी कानि[1] ।
लालच बेगि लगावै , पुहुमी सीस सो आनि ॥ ३४५ ॥

कौलैं राता चीर उतारा , औ जत भूखन बाजनहारा ।
पहिरि अपूरब साँवरि सारी तम कहँ मिली दिये अँकवारी ॥
जानहु चखु लुकअंजन दीन्हा कोउ न देख भेष तस कीन्हा ।
दूरहिं बैसी बारि की ओरी देखै ससि मुख हाइ चकोरी ॥
मनहिं कहै भौ दरसन लाहा , सुनेउँ न बात रही उतसाहा ॥
इन्ह नैननह दहुँ का तप कीन्हा , जासों यह सुख दरसन लीन्हा ।
ए सवनन के सदा सुभागे पिय मुख बचन सुनो अनुरागे ॥

अधरन लागी चखु रहीं अब कह अब कह बात ।
तमचुर[2] पही सोच महँ बोलि उठा परभात ॥ ३४६ ॥

तमचुर सबद सुनत सुधि आई , जनु सोवत कोउ आनि जगाई ।
तमचुर बोल बान अस लागा , चहुँ दिसि उठे रोर कै कागा ॥
उठत देखि रवि किरिन कि धारा , जीउ छाडि भागी तेहि बारा ।
जेहि जन के मन प्रेम अँकूरू ताके बैरी तमचुर सूरू ॥
परी सेज पर मदिर जाई जिउ बिनु जानु चित्र लिखि लाई ।
अहा जो अबुज बदन बिगासा भा कुमुदिनि रवि क परगासा ॥
ज्यों ज्यों होइ जगत उजिआरा त्यों त्यों लागै मदन लुवारा[3] ।

मीत न बैरी होइ जग होइ मीत रिपु अत(क) ।
मोहि मीत दुरजन भयो जौ मुख फेरा कत ॥ ३४७ ॥

कहेसि रोइ ह दिनकर देवा मैं सन्तत कीन्ही तोर सेवा ।
सरवर माहँ एक पग खरी , सिर की धूप सकल तन जरी ॥
सुमिरत सब निसि रहौ मलीनी , तुमरी सेवा भइ तन छीनी ।

१—खनि विधि । २—एक पक्षी जो प्रात काल मे बोलता है । चुहचुहिया ।
३—आग की ज्वाला । मदन टँवार । पाठा । (क) होइ भद रवि अत । पाठा ।

सुख महँ सेइउँ दै दुख जीवा गाढ़े आइ न छडावहु सीँवा[1] ॥
टुक दुखदिन महँ बेरी होहू बिनु अपराध धरहु अब काहू ।
अजहूँ सो सेवा सोंरहु नाहीँ अथवहु बेगि धरी हुइ माहीँ ॥
एहि बिधि बिनवत सब दिन बीता, भई रैनि भा हीवर[2] सीता ।

पहिरि चीर तन साँवरी भेस कीन्ह अभिसार ।
देखेसि चंद चकोर ज्यों जौ लगि लग पिनुसार ॥ ३४८ ॥

एहि बिधि अहनिसि कोलहिँ जाई कुअँर रहा चित्रिनि लव लाई ।
अस भा लीन ध्यान आहि करेँ देखे ओही आन न हरेँ ॥
चित्रिनि सुरति रहै चखु धरी सकै न दिष्टि आन मुख हरी ।
जौ काहू पर बरबस जाइ उहै सुरति तेहि लेइ छिपाइ ॥
ता तेँ सबै निअर औ दूरी आपुहिँ आप रहा जग पूरी ।
बिधिना दे क सुदिष्टि दे मोहीँ लोचन सौंहेँहिँ देखौं तोहीँ (क) ॥
दूजा जाइ न हिय महँ लेखा जहँ देखौं तह एकै देखा ।

तुही रहा सब पूरि जग पै सुदिष्टि नहिँ मोहिँ ।
देहु सो अंजन प्रेम चखु जहि सब देखौं ताहि ॥ ३४९ ॥

---

(२७) सोहिल खंड ।

सोरठ[3] देस बिमल बिधि साजा, सोहिलसेन जहाँ हुत राजा ।
तेहि के निकट जाइ जग जाना कौलावति कर रूप बखाना ॥
सागर पति सागरगढ ठाऊँ, तहि घर धिय कौलावति नाऊँ ।
अति सुरूप जनु पकज कली सुनि महि सकल भौंर होइ चली ॥
कौंल बदन जनु दिनकर दीठा, कौंल नैन जनु भौंर बईठा ।
कौंल पत्र तन सोहै सारी कौंल उरज लखि जगत भिखारी ॥
नाभी कौंल फिरेँ जेहि घरेँ बार न हाहिँ फिरेँ नहि फेरेँ ।

१—सीमा = मर्य्यादा । २—हृदय । (क) लोचन चीन्हि बुझावहु ताहीँ । पाठा । ३—स साराष्ट ।

राते अबुज पग दोऊ कौंल चरन जग मोह ।
सुनत बिकल राजा भयेउ , हिये लाग जनु लोह ॥ ३५० ॥

लागा हिय जो रति पति बाना , घूमै जनु साबज भरमाना ।
होइ बिसभार परा भुइँ राऊ , लगे लोग सब करै उपाऊ ॥
पुनि जा चत चितहि भा आई , नेगि ह कहेसि करौ कटकाई[1] ।
सुनेउ आनु जो कँवल बखाना जहि त मन होइ भौंर भुलाना ॥
मानि बिआहौं जाइ सो बारी भा जेहि पेम हिया फुलवारी ।
सागर सदा मोर तरहेलू[2] , कौन जगत जो अछा पेलू ॥
जौ हित देइ तो मया करऊँ , नाहिँ ता हठ बरिआई लेऊँ ।
हित सौं थापौं राज फिरि और देस पुनि देउँ ।
नातरु दधि सब भुज बरन , मथि के मानिक लेउँ ॥ ३५१ ॥

फिरे लाग सब नगर दोहाई साजहु लोग भई कटकाई ।
इँहहि क साज काज पुनि आवा नहि तौ रहिय हाथ पछतावा ॥
गाठि खोलि कै लेहु बेसाहा अपनेहिँ साथ होइ निरबाहा ।
करो निपट जेहि करना होई उहाँ काहु की सुनै न कोई ॥
अपनहिँ सीस जो लागै घाई , आन की कौन सिरावै जाई ।
परिहै जबहि आनि सों काजू होइहै बिष यह सब सुख साजू(क) ॥
सभा सराहे होइ न सूरा , रन खडे सो राउत पूरा ।
मान कसौटी सुभट रन कचन सम नर गात ।
तहा कसे पै जानिऐ कौन पीन को रात ॥ ३५२ ॥

सुनि कटकाइ कटक सँभारा घरेँ घरेँ पुनि परी पुकारा ।
साजै लाग लोग सब साजा बाज निसान[3] गौन कर बाजा ॥
अहा सोच जेहि पहि दिन करा , कै राखा ते साज सबेरा ।
सुनतहि अगमन उठि कै चले , सबै सराहहिँ राउत भले ॥

१—तय्यारी । चढ़ाव । २—दरियाव । मातहत । ३—माल खरीद् ।
(क) सखराज् । पाठा । ४—राजपुत्र = रायउत = राउत = क्षत्री, वीर । ५—डंका ।

जेहि कहँ एह दिन धरी न सूझी रैनि नींद सुख सपति बूझी।
अपनैं नाहिन पावहिं माँगा का लै चलहिं साथ सब खाँगा।
खेलत दिवस सोइ निसि गई, जब सिर परी सूझि तब भई॥
लाजनि गोवहिं मुख झुरहि कहहिं हाथ धरि माथ।
अपने गुन पाछे परे, चला निकसि सब साथ॥ ३५३॥

सोहिलसेन साजि दल चला कमठ कसमसा अहि खलबला।
डरे पुहुमि सब राउत राना का पर साहिल-राउ रिसाना॥
को अस बली सौंह जो रापा का कहँ ऐस साजि कै कापा।
एह अगस्त सम सूर बिसेखा उदधि सुखाइ सोहँ जो देखा॥
हम सरिता केहि गिनती माहीं चलहु दंड ल सेव कराहीं।
सेवा पाहन भयेउ मयारा अचयेउ छीर जान ससारा॥
ठाकुर जाहि चहै जिउ मारा सेव देखि पुनि हाइ मयारा।
बहुरि कहै हम किच[2] नर इह ईंदरेसर देव।
चलहु जाइ बिनती करहिं सकब कहा कै सेव॥ ३५४॥

बाजत गाजत चला निसाना, कास एक भा पहिल पयाना।
जीत नाउँ तहँ बिप्र सयाना सगर नगर रहा पुजमाना॥
काँध जनेऊ सीस असीसा गौनत राजहिं आइ असीसा।
कहसि कि बचन एक सुनु राजा हैं तोहिं उहाँ आन सों काजा॥
जनि भूलहु करु आपन राजू का कह भा जग ऐसन साजू।
को जग राज एकछत कीया जो नहि मीचु पिआला पीआ॥
जब जम आइ सीस कच गहही, भाइ बंधु कोइ सग न रहही।
अपनेहि माथ तहाँ परे, खोजे मिलै न साथ।
गाढे सोई उपकरै[4], होइ दीआ जौ हाथ॥ ३५५॥

दान कि बात सुनहु रे भाई, देहु दान नित हाथ उठाई।
हितू दान सम आन न पावा, एक जाइ दस कहँ ले आवा॥

१—कर उपहार। २—नि किंचन = दरिद्र दीन। ३—स पूज्यमान।
४—(कि उपकरना) काम आता है।

दान खरग होए बैरिहिँ लागै दान पास होइ पहरु जागै।
दान दुइ जुग होइ सहाई उहाँ मुकुति देइ इहा बडाई॥
दान नाव है भार चढावै ओकरिआ[1] होइ पार लगावै।
रक्षा करै दान मँझनीरा बूडत आनि लगावै तीरा॥
बिरिधि निमिखि दान हुत पावै, जगत जान जिउ जाइ छडावै।
तीरे दरब न लेख मह हस्ति घार पुनि साज।
गौन करहु दै दान कछु सीझ होइ सब काज॥ ३५६॥
राजा कहा विप्र सुन आई, दरब अकारथ दिया न जाई।
दरबहिँ तेँ यह राज पसारा, दरब लागि जग आइ जोहारा॥
जौ लहि दरब कटक सब सगा रन जिउ देत न सँवरहिँ अगा।
एह जग माहिँ दरब मनिआरा दरब दिवाकर अस उजिआरा॥
दरबवत जो तपसा भसा दरब रह घर दिपै[2] बिदेसा।
प्रान देइ एह दरब बटोरा, सेतीँ दीजे कौन निहोरा॥
जग दुइ भाति पखारिहिँ पाई कै सुख देहिँ कि करैँ बडाई।
जहँ लालच तहँ कौन सुख लोभहिँ बहुत उपाइ।
कुलपति तन दुति सो दरब बातन्ह दियो न जाइ॥३५७॥
सोहिल चला कटक सग लीन्हे कौल प्रेम मन मधुकर कीन्हे।
प्रेम खोर महँ अति सकराई, जतन जतन मन तहाँ समाई॥
जौ लौ मन तहँ ठाउ न पावा तो लहु तन तेहि बार न आवा।
तेहि कारन ए लोग सनेही गलि गलि माँसु हाड रह देही॥
सुख सपति घर बार बिसारा बावर भए फिरहि ससारा।
प्रेम मेरु अति दुर्गम ऊँचा, सहस माह कोउ एक पहूँचा॥
एह मगु देखि कटक जो फूला अपनेहि कटक आपु सो भूला।
सोहिल ऊठा गरब कै चला कटक लै साथ।
सिधु मरजिया होइ धसै रतन चढै तब हाथ॥ ३५८॥

१—उपकारी। २—प्रकाशित हो चमकै।

कटक असूझ जाइ जेहि बाटा बन अमराइ बिहर जा पाटा।
जेहि जल तीर राति बस जाई पानि ठाँव तहँ धूरि उड़ाई॥
अति असूझ दल अगम पहारा कहत न बनै जत बिस्तारा।
जेतिक राति कटक परि जाई चलै दिवस तेहि की ओराई॥
एहि बिधि निस उठि करत पयाना सागर नगर आइ निअराना।
गरब कहै गढ़ ठेंकहु जाई मति कह प्रभु बसीठ पठाई॥
गर्वहि मंत्रि बाद खिन आवा मति बरिअर भो गरब तिवावा[1]।
एक बामन अरु माट पुनि चातुर बकता ढीठ।
ढूँढि पठाआ दुइ जना सागर पाँहि बसीठ॥ ३९॥
सागर गढ़ बसीठ चलि आए दर असीस राजहिं आहराए।
कहिन कि धनि सागर गढ़ देसा औ धनि सोहिलसेन नरेसा॥
तैं ससिहर वह रवि मनिआरा तुम दुहुँ निसि बासर उजिआरा।
तैं निसिपति वह दिनपति साईं तें ससिहर वह अग्नि सबाईं॥
नियरहि आन न पुहमी आँटी साँझ भोर सेवा दोउ बाँटी।
सोहिल सेन तरुन रुपवता छत्र छत्रपती कुलवता॥
दुहुँ छत्री जो भाइ सगाई[2] तिहुँ पुर मानहिं अनँद बधाई।
तुम घर कौल सो उपना तिहु पुर पसरी धानि[3]।
सोहिल आयो भौंर हाइ लेहु जो आदर मानि॥ ३६०॥
बोला सागर सुनहु बसीठा अस बसीठ जग काहु न दीठा।
कौन सो घर जेहि बारि न हाई सन चढ़ि माँगै नहि काई॥
घर सों पठवत बाभन बारी जेहि घर धिआ सो पाव गारी।
भलेहिं जो सोहिल राउ कुलीना, मद्धू नाहिं अपने कुल हीना॥
अज्ञा राज परछि सिर लेतेउँ बूझि बिचारि उतर तब देतेउँ।
वै मोपर कीन्हा कटकाई, अब जो मानौं कौन बड़ाई॥
कहब जाय अब मोर सँदेसा, राजा पलटि जाहु सो देसा।

१—दबा। २—सबंध। ३—महँक सुगंधि।

तेहि घर गारी दीजिये जहाँ बारि सजोग ।
कवँल कली कौलावती नाहिँ बिआहन जोग ॥ ३६१ ॥

बसीठैँ कहा नैन कै राता सोहिल सेन सूर परभाता ।
रिसि औ मया दोउ तेहि पासा जो जेहि चाहै सोइ प्रगासा ॥
मया करै तौ सीँव छडावै, जौ रिसि करै अगिनि बरिसावै ।
तेहि कारन जग जिउ डर होई, भोरहिँ उठि बन्दै सब कोई ॥
गादुर नैन जो जग औतारे सूर छाडि ते बन्दहिँ तारे ।
उतर सँभारि दहु तुम राजा ऐसो गरब न काहु छाजा ॥
वह अगस्त तँ उदधि अपारा अनरस किए परसि किमि बारा ।
जौलहु नहि सनमुख भयउ कुसल तबहि लै जानि ।
को सागर जग जल भरयो, जहि न उतारेसि पानि ॥३६२॥

सुनि राजा हाइ सिंह बईठा कहसि गरब अलि बोलु बसीठा ।
सोहिल सौँ सेना बर हेरा मार बर एक बिधना केरा ॥
देखु कि बहै(क) दुहूँ दिस धारा बिधना हाथ जीत औ हारा ।
दहुँ का कहँ हनि धूरि मेराव, काक माथे छत्र फिरावै ॥
एहि कलि महँ आतरे जो आई काऊ न सतत अमर रहाई ।
बूढे कैस जिअन का हेरौँ खरग नाउँ सुनि का मुख फेरौँ ॥
जेतिक जीवन जियउँ नहि तेता राते करौँ केस यह सेता ।
जाय कहहु सागर कह हाथ लेइ चौगान ।
हाल आउ जो आएव, यहै गोइ[1] मैदान ॥ ३६३ ॥

जाइ बसीठ कही तब बाता, सुनि सोहिल भा ज्यौँ घन राता ।
कहसि कि सागर कब अस अहा सोहिल सौँह खरग जा गहा ॥
निहचै ओहि मीचु निअरानी चिउँटिहि चढेउ पाख तन आनी ।
आजु छेँकि सागर गढ भानौँ[2] सागर मारि कौल घर आनौँ ॥
माँगा बेगि तुरग सवारी, सोहिल तमकि कीन्ह असवारी ।
बाजा दुंद जूझि कर बारा, जहँ तहँ पखरे[3] बीर जुझारा ॥

(क) खडग । पाठा । १—[फा گوی] = गद । २—ताडो । ३—पाखर डाला ।

सुरन्ह जहँ तहँ खरग सम्हारा कापि चढा मुख भा रतनारा।
सूरन मन उतसाह भा, हुलसहिं मारू गाइ।
कायर जिउ सस परा गयो बदन पिअराइ॥ ३६४॥
चली फउज जनु सावन घटा चमकहिं खरग सेल ज्यों छटा।
बाज दुंद जनु घन घहराइ, सेत धजा बग पाँति सोहाई॥
जहँ तहँ मारू[1] ते सुर पूरा देखि छटा जनु कुहुक मजूरा।
हाथिन पीठि अँबारी कसी आवहि जानु सरग सों खसी॥
मिलि जब चलहि तुरगम बली पान भँकार घटा जनु चली।
चली कमानें[2] गरब गहीली जा जिउ हरनी तऊ रसीली॥
जिउ मानिनी गरब जावना एक एक पाइ लाग सा जना।
पाएन लागे ना चले, खैंचहिं हाथिन्ह पाँति।
गरबन तऊ न डोलें, अस जोवन मद माति॥ ३६५॥
बनी तुपक[3] जस बिरहिनि सती सब तन हाड माँस नहि रती।
काधे चढी फिर जो रोगी परगट भेख किये जनु जोगी॥
लीन्हे सँगि अगिन परगसी बसन अरुन जनु डोरी कसी।
गुटका लालि लेइँ पुनि साँसा, भसम खाइ मुख धूम निकासा॥
जान प्रतीति सोइ पै गहई सहज नेह छाती चढि रहई।
ज्यों ज्यों बिरह चढावे छाती त्यों त्यों रिसिन्ह हाइँ पुनि ताती(क)॥
जिअत न जाइ सरग की माँखी मारहिं आँखि जो ताकहि आँखी।
अरिगजन ते बिधि रची, कसे रहइँ निति लाँक।
पुहमी लावहिं सीस तर, जौ रन मारहिं हाँक॥ ३६६॥
हाथ कमान सुन्दरी नारी हरी लँक पातरी पिआरी।
गुनवन्ती रँग भरी सोहाइ अपने कर करतार बनाई॥
बासों बरजि पीठी सम देई बान कटाच्छ जीउ हरि लेई।
बर सों करै पाट बधनी सनमुख आइ नवै मोहनी॥

१—एक बाजा २—ताप। ३—बंदूक। ४—गाली।
(क)त्यों त्यों उसहिं होइँ ज्यों ताती। पाठा।

पिअ लगाइ देखे रँग पागा एक अक पे नहिँ पै लागी।
भौंहन दिए गाँठि निति रहई देखि द्रोन ओ सूरपति दहई।
पारवती जिमि पिय सँग रहई सवन लागि गुनवतहि कहई॥
मूढ न मारै गुन भरी, दुरजन दखि डेराइ।
अस धनि जहि नर कर चढै निभरम जहँ तहँ जाइ॥३६७॥
भरे निखग बान अतिआर, जनु मँजोर नित पख पसारे।
राउत सदा सीस पर बाँध नयँ न काहु बीच रन काँधे॥
कर बत देइ सीस जग रहे नैन वाजु सिर करवट सहै।
पखी अँत्रिख भँवहिँ उदासी नख सिख लौं सो रहे पिआसी॥
तापी बैरी तीती नाऊँ एक सर अरथ तीनि तेहि ठाऊँ।(क)
सिमिरन काल अगिनि पुनि बूझी जेहि जस लाग ताहि तस सूझी॥
देखत सूध गाठि हिय माहीँ अरि भेंटन उर माँह समाहीँ॥
आप माँह पुनि हेतु बहु एक घर सहस रहाहिँ।
अज्ञा कारी धनुख क जहँ पठवे तहँ जाहिँ॥३६८॥
चमकैँ हाथ सागि अति पारी लहलहाहिँ जनु सापिनि कारी।
कचुकि तजै बीसदँति कैसी दृष्टि साथ उर चाहै पैसी॥
जौ करता दै बान बुझाई तऊ न बूझहि रुहिर निखाई(ख)।
पौन पिए पुनि सीस उभासेँ अँत्रिख डोलहिँ रसन निकासेँ॥
परसहिँ सबै जानि कै सूधी प्रान लेहिँ जब होहिँ बिरूधी।
सूर किरन ससि सपति लूटै स्याम बरन जानहु जम छूटै॥
कर लीन्हे पैदर असवारा, जानहुँ परी पुहुमि विषधारा।
साँग सुवसी नागिनी, स्याम रूप रसाल।
हित जन कहँ सुख दायिका समर चढे अरिकाल॥३६९॥
बाँधी काट करवारि विराजी, अति राजी पै नाउ न राजी।
देखत रूप पदुमिनि नागिनि, धामिनि जेउ उठि उठी लागिनि।

१—विषदन्ती = साप।

जब लगि मांदी[1] मह रहि गोई तबहीं लहु निरमै सब कोई ॥
नख सिख पानी तेउ उदासी जीभ निकासे रुहिर पिआसा ।
सुन्दरि सदासोहागिनि नारी जेहि कर चढ नाहि की प्यारी ॥
मूठिन मारि गहे कर कोई सान दिए प तीखी होई ।
निभरम सोवहिं नहि जहँ जागी रहै सकल निसि पाटँ लागी ॥

बाकी बाँकी भोहँ सो करै कटाछ कलोल ।
सूधे नाहीं जो नच सोई जगत अमाल ॥ ३७० ॥

बारह हाथ बनी पुनि फरी[2] सुदरि नारि सदा रँगभरी ।
अस बरिआरि नारि विधि कीन्हा पुरुषन्ह जाइ सरन जहि लीन्हा ॥
पाछे मेलि सरन जो आवा सनमुख खाइ आपु तन धावा ।
कोमल हिया कौंल जहँ रहई गान कठोर घाव जहँ सहई ॥
दरपन सम पुनि मजुल गाता पानी पर जनु पुरइनि पाता ।
एकै बात बोलि को पुवरी फूल बिलाकि कहे जग फरी ॥
दूजी अमर बेलि जग आई जहाँ तहाँ ऑत्रख लपटाई ।

सतत पर कारन दुखी आनन नहिं अपकारि ।
जहँ कहुँ दुइ जाधा लरहिं बरबस जाइ म झारि ॥३७१॥

पुनि कटि बाँधे विषम कटारा, जा कह आपु कहे जमधारा ।
सूरा सोंह धसे रन माहीं दाहिन पाँव निकारे नाहीं ॥
रन अमट हथियार मतगा जब तब छार चढाव अगा ।
निसि दिन दिये अँधारी रहई, छुटै हरन बिना का गहई ॥
कालरूप कटकहिं सिगारा, साँवर लोह लियें मतवारा ।
बाल बिलोकहिं अग उघारी, नाँगा देखि बजावहिं नारी ॥
बरत किय पुनि चित्त न धरई भोग लिये बल पारन करई ।

मान कटारी बुद जल, हिये समात न बार ।
महा अचज ससार में एक बुद दुइ धार ॥ ३७२ ॥

१—मियान । २—ताल ।

सागर जब बसीठ बहुराए[1] चारिहुँ दिस बारी दौराए ।
औ पुनि समाचार लिखि दीन्हा कौल लागि सोहिल बर कीन्हा ॥
हौं पति लागि पैज रन ठानी तुम पुनि आवहु अस जिउ जानी ।
जौ लहु सागर अगम गँभीरा तोलहुँ पूरक सरिता नीरा ॥
जौ बारिध न रहै जग माहा एक छिन महँ सब नदी सुखाहीं ।
एह सुनि सरिता हिए सकानी उतरि जाइ जनि सागर पानी ॥
जो जैसेहि तेसेहि उठि धाए सागर डिग सब गए हेराए ।

जिन जिन हिय अभिमान हा नवै न सीस नवाहिं ।
सूझि परा सागर विकट हम नहि लेखे माहि ॥ ३ ३ ॥

बाज दुन्द जनु घन घहराई राता सेन धुजा फहराई ।
सागर हिये कोप सुनि बाढा घर तजि सपरि पार भा ठाढा ॥
देखा पाहुन आनि तुलाने आदर कहँ डग चारि पयाने ।
बीर अगुमने[2] भुजा पसारी दुइ दल माँह भई अँकवारी ॥
छूटी तुपकैं छूटे बाना जहँ तहँ होइ लाग घमसाना ।
तरुनि भौंहें सम धनुष बिसेखे, नोचहिं बान कटाछ अलेखे ॥

कहुँ अरुझे पखरैत दुइ, कहुँ गयद चौदत ।
कहूँ अखारे पुहमि महँ जनु दुइ मान भिरत ॥ ३७४ ॥

जहाँ सेलि लागे उर आई, मनहुँ कँवल जल धार सोहाई ।
जेहि सिर परी खरग की धारा, मानहुँ बेली कर पतसारा ॥
जाक ओर हाई धनुताना, निफरि जाइ सर ज्यों चखुबाना ।
छूटहि चन्द्र बान उजियारे मानहुँ नट मुख आगि निकारे ॥
जब अरसाइ कमान जम्हाई चुटकिहिं हनत जीउ लै जाई ।
घायल परे जहाँ तहँ हाथी, मानहुँ आहि लोहार की भाथी ॥
माथे छूटी सोनित धारा, भाथि फूँकि जनु आगि निकारा ।

१—फेरा लौटाया । २—एक जाति जो दास का काम करती है । ३—आगे बढ़े ।

घायल परी पुहुमि तलफाई प्रान रहे पुनि कठहिँ आई।
एक बोल लगि सवन निरासे, अधर सूखि तुअ अधर पियासे॥
अजहुँ न जाइ आस तेहि देहू मरत जिआइ पहर एक लेहू।
जाहि लागि यह परलै होई, सो तोहिँ लागि मरै अस रोई॥
अमिय बचन लागहिँ विख साँधे भोर मरहि हत्या तुअ काँधे।
सधन तिमिरि निसि जोह लगि जल बिनु कटक हार।
नत रहई पछताव कर, बिथरेँ भसम अँगार॥ ३८१॥

कहिसि जाय कहु राजकुमारी, हौं निरगुनि सुठि जोगि भिखारी।
एक तो बिधि दुखिया मोहिँ कीन्हेँ तूँ पुनि बाँधि अधिक दुख दीन्हेँ॥
कतहूँ प्रेम कि बाँधे होई, बरबस प्रेम करै नहिँ कोई।
सोहिल हनि हौं कटक लुटाऊँ, सागर नगरहिँ फेरि बसाऊँ॥
ताहि मारि करि सगरहिँ राजा अब तो आइ परेउ हम काजा।
कर गहि खरग करौं अब घाता राखौं कटका करि आघाता॥
जदपि सोहिल सुख जूझ सवारा, हौं सुजान सरदूल पँवारा।
परघट होउँ बचाइये, दीन्हौं कर गहि खर्ग।
बचौं तो लीन्हौं कमल फल, मरूँ तो जैहौं सर्ग॥ ३८२॥
सुनि के मया कुँअर जिय(क) भई, मौन गाँठि अधरन छुटि गई।
कहिसि जाइ कहु राजकुमारी, हौं निरधिन केहि जोग भिखारी॥
हौं भिखारि तुम गढपति राजा राज भिखारिन नेह न छाजा।
अपनेहिँ दुख अहौं बौराना आन क दुख करौं का काना॥
भोर निदान होय जो चाहा, परगट होउँ रहौं छिपि काहा।
अब जो परी सीस हम आई, जोग माँह का रहौं छिपाई॥
भोर होत अस जल बरिसावौं, बडवानल जो होइ बुझावौं।
कोपि चढौं रन पैजि करि, मारौं सोहिल बीर।
सूर छुडावौं राहु हनि, कौंल धरौ मन धीर॥ ३८३॥

(क) चित, पाठा ।

सुनि सँदेस कुमुदिनी सिधारी कुअँर कहा रखवार हँकारी ।
जाइ जनावसि राय नरेसा, छत्री एक जोगी के भेसा ॥
कहै छाडु मोहिं राज जाहारौं, पैज बाँधि रन सोहिल मारौं ।
रखवारे नृप जाइ जनावा, राजै(क) सुनत जीउ अस पावा ॥
हिए आगि जनु परि गा पानी, जानहुँ भइ अकास की बानी ।
जन कौंलावति पाँह पठावा जोगी चेर जो आहि बँधावा ॥
छाडि पठावहु जौ हम पासा, पूछौं बात देइ मकु आसा ।

जँहवाँ लहु हम बँद हुते, ते दीन्हा सब छोरि ।
तुमहू छोडहु बन्द सब मानहु अज्ञा मोरि ॥ ३८४ ॥

रहसि कँवल जोगी पहँ आई कहिसि तजहु अब अलि निठुराई ।
कहु का हसि का नाउँ सोहावा केहि कारन सिर जटा बढ़ावा ॥
कौन देस ते आएउ राऊ काके पथ धरेहु भुइँ पाऊ ।
जौ लगि कहसि न आपन बाता, बन्ध न छोरौं सपथ बिधाता ॥
अमिरित बचन कुँअर जब बोला अधरन पोए रतन अमोला ।
जाति कहिसि औ पिता क नाऊँ, आपन नाम जनम कर गाऊँ ॥
औ जेहि कारन जटा बढ़ाई, नाम लेत चखु जल भरि आई ।

कहिसि निकारहु हथकरी, सरग गहौं अब हाथ ।
पल मझे भारथ रचौं जौ कौरौ दल साथ ॥ ३८५ ॥

सुनि कै कौंल बिकल होइ गई मानहुँ साँझ उदय ससि भई ।
मनहि कहसि कर रहा परेखा भया मोर मधुकर कर लेखा ॥
मधुकर भँवै कज बैरागा कज क मन सूरज सों लागा ।
सूर दरस जब कौंल बिगासा, तब पूजै मधुकर मन आसा ॥
अपने करत जाइ नहिं देऊँ, जीअत नैन न ओट करेऊँ ।
एह पछी बरु रहै पडेली, अब राखौं छल बन्धन मेली ॥
एह अरजुन जेइ भारथ काँधा अरजुन रहै बचा कर बाँधा ।

(क) सागर पाठा ।

मन, वच क्रम अब जो रहै सेव करू निसि बार ।
सेवा हुत पाहन हिया , मकु हाइ जाइ मयार ॥ ३८६ ॥

कहिसि कुँअर सुनु अम्बुज बाता , तुअ मन मधुकर कतकि राता ।
का जो कौंल राख हिय लाई अन मोंर केतकि पह जाई ॥
बिनती एक करूँ करजोरी इहे हिये अब इच्छा मोरी ।
जो तू इच्छ पुराउ गोसाईं मोहिं जनि जाउ कत दै बाईं ॥
जौ सँग लेहु मया चखु हरी रहौं होइ चित्रावलि चेरी ।
सपथ देहु जो करत पयाना सपथ आस घट रहइ पराना ॥
ना तरु देखि बिरह दुख दाइ होइ निरास मरिहौं जराइ ।
आजु सपथ जो देहु पिय बाजु कहे नहि जाहु ।
बन्द छोरि कर खरग गहि सूर छुडावहु राहु ॥ ३८७ ॥

मन गुनि कुँअर कँवल मुख हेरी कहिसि सपथ चित्रावलि केरी ।
जो पहि रन बिधना जय देई पूजी प्रान रह घट सेई ॥
तोहिं दै बाचा चलौं सो देसा जेहि कारन निसरेहुँ पहि भेसा ।
सुनतहि सपथ कौंल भा राता जनु रवि किरिनि उदै परभाता ॥
बध छाडन आगे अगुसरी[1] पाय न जाय यही मिसु परी ।
पायन परसि हिये सुख पावा अति चालन बँदि छोरि सि भावा ॥
सखिन कहा चित चतु गियाना बिलम न लाउ भार नियराना ।
सुनत भोर कौंलावती भया चत चित आय ।
छोरि बद मंदिर चली परसि कुँअर के पाय ॥ ३८८ ॥

कुँअर आनि राजहिं जोहरावा राजे मुख देखत सुख पावा ।
आदर सहित लाइ कँठ लीन्हा , अपने पास ठाउँ तिन्ह दीन्हा ॥
कहिसि कि तुम छत्री रस भोगी , कहहु भये कहि कारन जोगी ।
आ पुनि कत अस हार चोराए , जेहिते बदि माँह दुख पाए ॥
कुँअर कहा जनि पूछहु राजा , करहु सोइ जो करवे काजा ।
जाकर आइ फिरी जब दसा बाट जात लागै अपजसा ॥

---

१ अगुआइ बढ़ी ।

छत्री तबहिँ चोर पे होई बरबस चार कर जो कोई।
हौं नैपाल नरेस सुत, छत्री बीर पँवार।
यह सोहिल बरिआर जो हनौं होत मिनुसार॥ ३८९॥
राजै सुनि सग्या मन बूझी ज्ञान कि दिष्टि दूरि लै सूझी।
कहिसि कि तजहु जोग बैरागा पहिरहु अब छत्रा कर बागा[1]॥
सिर धरि मुकुट सेल कर लेहू, सोहिल मारि मुकुट सिर देहू।
जौ जै खरग देइ करतारा छात पाट औ राज तुम्हारा॥
पुत्री नन काँल पुनि मारी झारिहि पद पकज कर जोरी(क)।
कुँअर कहा सुनु राज भुआरा, छात पाट मेँ अपने डारा॥
अस कैसे कहि आवै ताहीँ हौं जोगी तिय छाज न मोहीँ।
श्वची सुनि जौ ना करै तिय अरु गाय गोहारि।
पुहुमा कुल गारी चढै सरग होइ मुख कारि॥ ३९०॥
एहि मँह रनि बीति सब गई प्राची दिसा अरुन तब भई।
जहँ जहँ घुमिरे घार निसाना छूटै लागे दुहुँ दिसि बाना॥
कुँअर तोखार[2] साजि कै मागा, बाँधि कटार खरग कै माँगा।
सौरेसि हिये बिधाता सोई, जेहि की मया सुमिरि जै हाई॥
ततछन तमकि चढे हय पीठी चढत न परा काहु की डीठी।
जबही कुअँर भयो असवारा, जै जै जै सब जगत पुकारा॥
उच्चस्रवा सूर सब लीन्हे, छिन महँ पुहमि सहस ससि कीन्हे।
कुँअर निकसि बाहर भयो राउ ठाढ करि आस।
देखहिँ धौराहर चढी सब रानी रनिवास॥ ३९१॥
कौलावति दोउ अम्बुज हाथा छिन छिन धरै सहस सिउ माथा।
एह जोगी पर कारन दुखी, हौं रुद्राक्ष अहौं एक मुखी॥
परसन होइ दान जै करहू, जीतपत्र एहि के सिर धरहू।
तुम तेँ सबे असुरपति हारे, तुमहीँ अधक कधक मारे।
तुमहीँ दच्छ प्रजापति मारा, जीति मार तिपुरारि सँघारा।

१—पहिनावा। (क) झारी पदुम चरन रज तारी पाठा। २—सफेद रंग का घोड़ा।

भरि भरि जल पुनि नैन कटोरी , लागि स्रवै माता की चोरी ॥
बिनवै पुहमि लाइ कै माथा , जोगिहिं देहु आनि जै नाथा ।
तुम हि सकल सुर देवता , जीत हार तुअ हाथ ।
एह परदेसी एकसरा देहु मया करि साथ ॥ ३९२ ॥

एक तो कुँअर गरब अस बाढा सागर सँपरि बार भा ठाढा ।
आयो सूर पैज रन ठानी सोहिल बदन सूखि गा पानी ॥
जेइ देखा तेहि इहै सुनावा , सोहिल काल सरग सों आवा ।
सूर सौंह छिन जाइ न हेरा जिन मुख देखा तिन मुख फेरा ॥
सोहिल देखि कटक मन ढीला रिस सो बोला बैन कसीला ।
ऐ छत्री ऐ बीर जुझारा कहा जानि तुम पौरुख हारा ॥
तुम कहँ पालेउँ दै अन पानी काल बान कर आदि न जानी ।
खरग सँभारैं सूरमा वैरी मुख समुहात ।
तौ लहुँ पौरुष ना तजैं जौलहु आव न रात ॥ ३९३ ॥

बीर सिंह जब साहस हारा , सो नहि मार जान सिआरा ।
नृप बैसाख[1] बचन जब कह सुनि सब माथ आँधि कै रहे ॥
सोहिल हाँकि तुरै रन चढा , नख सिख लौं तन लोह मढा ।
औ तेहि मारेसि साँगि पचारी , झुकि सो दिष्टि पर कुँअर उबारी ॥
पुनि गहि खरग कुँअर सिर झारा कुँअर सजग ओडन दै टारा ॥
खरग टूटि रह ओडन साँथा छूटि मूँठि सोहिल के हाथा ।
तब रिसि कै कुँअरहि लपटाना , कुँअरो पुनि सरवई सु जाना ॥
सोहिल बीर धरि कुँअर कटि चाहसि देइ गिराय ।
खभा केरा सरवइ , उपरहि गा लपटाय ॥ ३९४ ॥

दोउ लपटाइ पुहुमि मेँ परे , जनु दुइ माल सरवइँ[4] भिर ॥
कबहूँ कुँअरहि सोहिल चाँपा , कबहुँ कुँअर तर सोहिल काँपा ।

१—व्यवसाय । २—रोक । ३—लडत थे । ४—सरो कसरत ।

पलटेउ आनि कुँअर करि दाऊ, काढि कटार कीन्ह तब घाऊ ॥
एकहिँ घाउ कीन्ह अरि घाता रुहिर देखि सागर भा राता।
सागर लहरि पौन जिमि धाई सोहिल कटक फाटि गौ काई।
जो जेहि गहा सो तेहि गहि चला, होइ गइ पुहुमी माहँ जनु हला ॥
काटि काटि सिर कीन्ह मुनारा[1], लूटै हय गय सोन भँडारा।

हिआ अंध ते दरप बर, गरबि चले मुख फेरि।
ज्ञानी हिरदय सोच भा, बिधि कर कौतुक हेरि ॥ ३९५ ॥

सोहिल परा माचु मद पीये, उपजा ज्ञान कुअँर के हीये।
का भा सो जो डोलत आहा जेहि बिनु पुहुमी थकि सब रहा ॥
का भा सो जो गरब बर बोला, जेहि बिनु भुजा डोलाव न डोला।
का भा सो जो कटक बटोरा, सोन भँडार हस्ति औ घोरा।
अब तेहि बिनु कोउ रहा न साथी, छिन महँ होइ गए उडि पाथी[2] ॥
मैं का जानि खरग कर लीन्हा, यह कारन कहि कारन कीन्हा।
जोग पथ महँ बैर न आवा जानि बूझि मैं जोग नसावा ॥

यह गुनि हिये अगिनि बरी, चखु छूटी जल धार।
सागर फिरि फिरि रहसै, लूटै सोन भँडार ॥ ३९६ ॥

---

(२८) कँवलावती विवाह खंड।

सागर पलटि कुँअर पह आवा, हाथ चूमि गहि अंक लगावा।
कहिसि कि धनि जननी धनि पीता धनि हीअर जेहि यह रन जीता ॥
ततछन कीन्ह कूँअर असवारा अपने हाथ चौंर सिर ढारा।
आनि फिरावा माथे छाता, जनु दूलह लै चले बराता ॥
बाजा पुनि बाजन गहगहा, पुहुमी सरग सोर होइ रहा।
जबहि भाँट बीरुद उच्चार, चहुँ दिसि उठा बिरुद झनकारा ॥
पैसत राजअवास सोहाईं मंगल गावत चेरिन आईं।

१—शिखर। मीनार। स्तूप। २—पथिक, राही। ३—हृदय साहस।

तुरै चरन रज पूजि के टीका लावहिँ माथ ।
कहैँ कि बाहन धन्य तू , औ धनि तेरो नाथ ॥ ३९७ ॥

पुनि जहँ हाट कपाट सँवारा कुँअर आनि कै तहाँ उतारा ।
आरति ले आईँ रनिवाँसा जनु ससि उडगन सँग परगासा ॥
पूजहिँ दीउ भुज चँदन चढाइ कहँ कि धनि तू धनि तुअ माइ ।
तैँ हनि राहु मयक छुडावा तैँ तम हरि दिनकर देखरावा ॥
तैँ होइ इन्द्र अमी बरसावा छत्र अगिनि जग जरत बुझावा ।
जौ न हान तैँ अस बरिआरा(क) को बहुरावत जम बरिआरा(ख) ॥
तैँ बसत किय नगरी मारी नाहिँ तो हात आज जरि होरी ।
सरवन मोँ तरिवन रहा औ पुनि सेँदुर सास ।
जो तुम इच्छा सो मिलो जीवहु लाख बरीस ॥ ३९८ ॥

पुनि रानी राजा सोँ कहा , तब जग दूसर कोउ न रहा ।
मोरी कोखि सो कौँल बिगासा चहुँ खँड पसरी जेहि की बासा ॥
औ पुनि भयो आइ सजोगा करहिँ बधाउ जहाँ तहँ लोगा ।
यह कुलीन छत्री बरिआरा , पहि आँको[1] जा हाइ बिचारा ॥
राय कहा का कहहुँ छिपाई मे पहिलहिँ सकलपि सुनाई ।
औ सग्या हुति सो पुनि कही गगा सुनि लजाइ हिए रही ॥
कहिसि कि जागी भोग न जाना , जौ बर दीज तो प माना ।
सो कर गहि कोलावती , ल मेली ओहि पाउ ।
यह चेरी तुअ सेव कहँ सकलपी जो राउ ॥ ३९९ ॥

कै मत राजा बाहर आवा आपन कुटुँब लोग हँकरावा ।
कहिसि कि मैँ अपने मुख हारी एहि सोँपा कोलावती बारी ॥
बरु मैँ आपु नाहिँ ओहि दीन्हा सोहिल मारि जीति व लीन्हा ।
तुम यह बचन मानि पुनि लेहू औ मिलि पच बडाई देहू ॥
कहिनि कि यह बर बिधनै गढा , सोई फूल जो महेसहिँ चढा ।

(क) धरहरिया, पाठा । (ख) अस बेरिया, पाठा । १—परीक्षा करो, परखो ।

हमहुँ भाउ जो तुम्ह कहँ भावा, बिलम न लावहु करहु बधावा ॥
बाजन लागे बाजन बारा घर घर उठा मंगलाचारा।
ततछन आए जोतिषी, गनि गुनि देखी रास।
शुभ दिन औ शुभ मास पुनि उत्तम लगन बिलास ॥ ४०० ॥
चहुँ दिसि बाजन बाज सोहावा, कुँअर जान यह जीत बधावा।
अस न जान यह बाजन सोई जेहि तें अन्त महा दुख होई ॥
गात चढ़ा जत चन्दन माला होइहै भार अगिन कर चाला।
औ जत जगत निछावरि सारा होइहै भोर काँध कर भारा ॥
हाट कपाट जराव क छाता होइहै काल होत परभाता।
मानुस अंध जाहि नहिं सूझा, दैव करै सब आपन बूझा ॥
होइ चत कछु आन सु जाना बिधना करै आन कै आना।
आपन चिन्ता मान जो जगत न पावै कोइ।
कस न सोइ चित चेतिये जाकर चेता होइ ॥ ४०१ ॥
साँझ आय पुनि राउत राना, आँगन ताने आनि बिताना।
अनबन भाँति बिछौना कीन्हा दै दै लाख लाख एक लीन्हा ॥
बैठे आय तहाँ सब राजा माथें छत्र बिचित्र बिराजा।
धरे आनि चहुँ दिसि मसिआरे पुहुमी सकल भये उजियारे ॥
ऊपर समियाना जनु नभा तर बैठी जनु सुरपति सभा।
गीतन्ह आन कीन्ह झनकारा जनु पुहुमी में अमिय सँचारा ॥
पुनि पैरिन काछें अतिलसी[1] जनु आईं रभा उरबसी।
नाच कूद भा पहर दुइ दीन दान बहुताइ।
पुनि आए तहँ सहस एक बाभन बेदूराइ ॥ ४०२ ॥
आयो सागर सभा मँझारी गहे बाँह कौलावति बारी।
बारह सोलह साज बनाए आठो अंग बतीसो पाए ॥
प्रगटेउ जनु मयंक मनियारा, अकसमात होइगा उजियारा।
कुँअर पाइ तर मेलि किसोरी आपुन ठाढ़ भए कर जोरी ॥

१—(फा اطلسی) अतलस का बना हुआ परिधान।

कहिसि लेहु येहि चेरी जानी, मै सकलपी दै कुश पानी।
बोलहु स्वस्ति जैस जग रीती, तैं अपने भुज बल यह जीती॥
बरु मैं नहिं अपने मुख हारी, तुम जीता सोहिल सधारी(क)।

सुनि कै कुँअर अचक रहा सीस गयो गडि लाज।
बकनि न कछु मुख आवै, जनहुँ परी सिर गाज॥ ४०३॥

छिन एक जिय भीतर गुनि ज्ञानी बोलिसि स्वस्ति लीन्ह कुस पानी।
तत छन आनि कीन्ह गँठजोरा वेद पढहिं बाभन चहुँ ओरा॥
तरुनिन्ह पुनि कल कठ सुनावा, कौलहिं लाइ सुजानहिं गावा।
गाँठि जोरि फेरी सतफेरी जोगिहिं गाँठि परी सत फेरी॥
भा बिआह बाभन जब गए लै दूलह कहँ काहबर गए।
उठत न भौंर चरन अति भारी, नाचत कौंल होत बलिहारी॥
कौंलावति जिअ रहस अनदू, डरपै कुँअर जानि दुख ददू।

पौंलग साजि जराउ की, डासी सेज सुरग।

कौंलहि सीतल जानु जल, कुँअरहि अगिन समग॥ ४०४॥

दुलहिन दूलह कोहबर मेली, ओ पुन बाहर भईं सहेली।
घूँघट कै कौंलावति रही फिरि सुजान पुनि पाटी गही॥
अबुज मान मनावन आसा भँवर निठुर पुनि लेइ न बासा।
कौंलावति मन कीन्ह गियाना कौन मान जौ कत न माना॥
मोहिं पीतम अतर जहँ होई घूँघुट लाज जाउ जरि सोई।
कुलिस तें कठिन सो आहि करेजा, जो तिय मान न कर पिय सेजा॥
लोयन राखौं घूँघट हेरी अतमान[1] का राखै फेरी।

मोहिं मूँदत चखु सकल तन, दीन्ह अगिन जनु बारि।

नहिं जानौं पिय सेज पर, मान करहि किमि नारि॥ ४०५॥

कौंल खोलि मुख बचन हुमासा, पे दिनकर साईं जग आसा।
अब जौ जग जाना मैं तोरी, का जिय जानि रहहु मुख मोरी।

(क) बरु मै अपने मुख यहि हारी। तुमहूँ जीत साहिल सँवारी। १—आत्मा।

सघन तिमिरि हिय फाटै मोरा , मुख देखाउ जग होइ अँजोरा ॥
पिता सँकलप दीन्ह सजि तोहीं कस न मया करि हेरहु मोहीं ।
तोरे मया बनस्था मोरी जो आदरहु तो हौं मैं तोरी ॥
पिता राज सब भयो परावा , तोरे मया एक चित लावा ॥
मोहिं बिनु तोरे नाहिं कछु छूछा तोहि बिनु माहिं कोउ बात न पूँछा ।

सब औगुन गुन एक नहिं का परगासौं आनि ।
मोहिं निरगुनियहिं मानि ले , आपु बडाई जानि ॥ ४०६ ॥

बिनती सुनि भा कुअर मयारा बिनती एक जगत निस्तारा ।
बिनती सब औगुन गुन होई सेवक बिनत[1] तजै नहिं कोई ॥
गरब अगिन गहिरे सब जरा , बिनती ओड[2] खरग निसतरा ।
रिसि वैसन्दर जहँ पर जाई , बिनती पानि परे बुझि जाई ॥
जहँ सेवा तहँ बिनती जानहु बरु दोनों कहँ एकै मानहु ।
ठाकुर कबहुँ दोष जो गहई सेवक आगे बिनती कहई ॥
तब सेवक हिय माँह समाई जहँ लहुँ औगुन गुन होइ जाई ।

आपन अवगुन सँवरि के गरब करहु जनि मान ।
जौ औगुन पति मानई , सोई गुन परिमान ॥ ४०७ ॥

कुअँर कहा सुनु राजकुमारी हौं जोगी जस भँवर दुखारी ।
खोजत अहा जो केतकि बासा , बीचहिं अबुज कीन्ह गरासा ॥
जौलहु भौंर न केतकि पावै , कौंल आस तौ लौं न पुरावै ।
तजि तोर मोहिं बाजु न आना महूँ तोहिं आपन कै जाना ॥
जो सँतोख मानहु जिअ बारी तोहि सौं भाषौं बात रसारी ।
नैन कौंल तुअ नैनन लावौं , अक मेँ गहि तब हिया सेरावौं ॥
मोहिं न अपन प्रेम रस चाऊ , तोहि लागि यह करौं सुभाऊ ।

हम तुम मानहिं सबै रस जहँ लहु प्रेम सुभाउ ।
एक प्रेम रस होइ तब , जब चित्रावलि पाउ ॥ ४०८ ॥

१—विनीत, नम्र । २—रोक ढाल

कौलें रहसि कहा सुनु साईं चित्रावलि पावहु जब ताईं ।
हँसि बोलहु देखहु मम ओरा जानहुँ पाया लाख करोरा ॥
हौं अबही रस रीति न जानौं चितवनि हँसनि प्रेम सुख मानौं ।
तब हँसि कुअँर उलटि मुख हरा बरबस लाज कौंल मुख फरा ॥
घूंघट ओट रही मुख गोई तरुनिन मान सुभावन हाई ।
पुनि गहि कुअँर नारि कँठ लाई कौंल लागि हिय जरनि सिराइ ॥
अधरन लाइ अधर रस लीन्हा एक रस छाड़ि आर सब लीन्हा ।
अधर रदन छद उरज नख उधसि[1] गई पुनि माँग ।
प्रथम समागम जनु कियो सिथल भयो सब अँग ॥ ४०९ ॥
भोर कुँअर जब बाहर आवा देखि सखिन सब मगल गावा ।
रानी कौंलावति पहँ आई माँग चूमि लीन्हिसि कठ लाई ॥
सभा बैठि पुनि सागर राजा देइ लागि सब दाएज साजा ।
रतन पदारथ मानिक मोती, सोन रूप ससि दिनकर जोती ॥
दीन्हे हय उदन्त[2] औ दाँते औ हस्ती पुनि निमते मात ।
दीन्ह अनेक पेटारी भरी, पाटम्बर जरकस पाँवरी ॥
आनि कुँअर कहँ सब देखरावा कुँअर कहा हम काज न आवा ।
हम गौनब तेहि पथ जहँ सावर साथ न देइ ।
उहवहिं लागहि चार सँग अस बेरी का लेइ ॥ ४१० ॥
राउ कहा जहँ लहु कछु मोरा सब तोरै मोरि कौन निहारा ।
है हम सो सब थाती तोरी जब चाहब तब लेब बटोरी ॥
पुनि राजैं सब कुटुँब बुलावा, जो जस हुना सो तस पहिरावा ।
दै पहिराव बिदा करि आये, रहसन सब अपने घर आये ॥
भा हुलास जिय गा सब दुदू पति परजा सब करैं अनन्दू ।
परगट कुँअर कौंल मुख हरा हिएँ ध्यान चित्रावलि केरा ॥
अस ओहि गुपुत लाइ चित रहा, कौंल कहत चित्रावलि कहा ।

१—उघिर गइ, उकसिगइ । २—अदन्त, वेदांत वाले । ३—मृगछाला ।

कुँअर जैस पींजर सुआ, छिन छिन मन अकुलाइ।
गाढ बधन बचन के, निकसि न सकै न जाइ(क) ॥ ४११ ॥

---

(२६) गिरिनार यात्रा खण्ड।

एहि महँ काहू आनि जनावा गढ गिरिनार परब दिन आवा।
आवहिं जोगि जती सन्यासी तीरथ अस जस मथुरा कासी॥
आवहिं लोग बहुत घरबारी बार बृद्ध तरुनी नर नारी।
एक मास लहुँ लागै हाटा, कौतुक कहि नहि पाइय बाटा॥
ऊँच पहार सरग लहुँ बाढा एकै पेंडि[1] छोलि जनु काढा।
एक दिस सींग[2] दूरि लौं बेधे अंत्रिख जानु बिधाता गढ॥
बीर नाउँ तेहि देवन्ह धरा जा महँ पर बार सो परा।
जेहि इच्छा कछु जिय रहे आगिल जनम बिचार।
करवट लेहि पराग मह बार परहि गिरनार॥ ४१२ ॥
कुँअरहि चाउ उठा सुनि नाऊँ कहिसि महूँ तेहि तीरथ जाऊँ॥
मकु कोइ मिलै जोगि सन्यासी आवै रूपनगर कर बासी।
कहै कुशल चित्रावलि करा बूझि पथ उठि चलो सबेरा॥
मँदिर जाइ कौलावति पासा, कहिसि कि ऐ अछरी कबिलासा।
जौ दिन दस की अज्ञा पाऊँ महूँ जाइ तीरथ कै आऊँ॥
कौल कहा का आज्ञा देऊँ, जियत न नैनन ओट करेऊँ।
तबहीं लहु नीरज डहडहा, जब लहुँ सूरज सनमुख रहा॥
जो तुम साईं सूर जिमि जाउ बचन मोरि पेलि।
सोइ रहब मैं कौल जिमि गरल डारि मुख मेलि॥ ४१३ ॥
जब तुम कत पीठि मोहिं दीन्ही, मैं निहचै अपने जिय कीन्ही।
बिधि जौ साईं होइ मयारा, तीरथ जाइ करूँ गिरिनारा॥

(क) करि नहिं सकै उपाइ—पाठा। १—मार्ग, राह। २—शृङ्ग।

मोहूँ (क) कत लेहु सँग लाई सिव पूजौं गिरिनारहि जाई।
कुँअर कहा जौ निहचै हाई, पुन्य काज कहँ बरज न कोई॥
तीरथ लागि सुजान पयाना परे सहस हय पीठि पलाना।
साजे सब हस्ता सिंघली एक तें एक छरक मौ बली॥
चले कुँअर पुनि चढि चँडोला, झूलहिं मानिक रतन अमोला।
साठि सहेली कौल सँग, एक तें एक सुरूप।
जिन देखा तिन कहा निजु एह इंदर सुरभूप ॥ ४१४ ॥

जाइ कुँअर गिरिनारहिं चढा देखिसि गढ बिधनै कर गढा।
जहँ तहँ देखी अनबन हाटा चारिहुँ ओर पटन सब पाटा॥
जुरे आइ सब जोगी जती, तीरथ कहँ आए गढपती।
रहा बिबेक न राजा परजा बैरिहुँ कोऊ तहाँ न बरजा॥
पहिले गरब सीस तें डारा पाछे नए देव के बारा।
कोइ लव लाइ बैठि एक ठाऊँ, जल थल जपै बिधाता नाऊँ (क)॥
कोउ गावै गुण कृष्ण मुरारी कोऊ मौन होइ बैठ पहारी।
देखि परावा लोग सब, लीन्ह कुँअर उर साँस।
आपन कोऊ न तहँ मिला, बहुरा होइ निरास ॥ ४१५ ॥

प्रेम पथ अकसर पग दीजे एहि जा कोऊ सग नहिं लीजे।
एहि मारग महँ दूसर नाहीं होय भरम देखैं परछाहीं॥
कुँअर कटक लै ढूँढन चाला, सग सकल माया जजाला।
जो सेना गौनत एहि पथा गोपिचन्द नहिं पहिरत कथा॥
अगसर होइ जो परचो अधावा, कुँअरहिं ढूँढि बेगि लै आवा।
दूत जो कुँअरहिं खोजन गये ते हम आइ सुरत हम भये॥
जहँ तहँ ढूँढत फिर उदासा, अब तिन्ह के लै परूँ अकासा।

(क) माहिं पुनि। पाठा।

(क) काऊ बार बरी जिव नई। कोउ कहु बार सास उर लई॥

जहाँ न मानुस सचरै निरजन जान मरम्म।
जम्बुदीप के मानई भरतखड औगम्म ॥ ४१६ ॥

(३०) जोगी ढूँढन खण्ड।

चित्रावलि जब चतुर चिन्हारी कुँअर खोज पठई जन चारी।
पहि महँ सूध पथ जो पावै नेगिहिँ खोजि कुँअर लै आवै ॥
औघट परे जो अहै अयाने पथ न सूझा भवहिँ भुलाने।
जिन पच्छूँ दिस कीन्ह पयाना, पहिलहिँ गा सो देस मुलताना ॥
देखेसि सिन्धी लोग सबाईँ महिरावन सब सेवहिँ साईँ।
हेरेसि ठट्ठानगर सुहावा बिहग हरिन सेवैँ गजावा ॥
बरन बरन सब मानुस रूचा जान उहा लरका न बलूचा।
ढूँढहि बहुतै नद हटी, रनखर धक्कर जान।
पुनि पेशावरहिँ जाइ के, हेरेसि सकल जहान ॥ ४१७ ॥
काबुल हेरि मोगल कर देसा, जहाँ पुहमिपति होइ नरेसा।
बदखसान जहँ दीन सम्हारा खुरासान महँ बाद पसारा ॥
देखेसि रूम सिकदर करा, स्याम रहा होइ सकल अँधेरा।
देखेसि मक्का बिधि अस्थाना, हीय अध तें पाहन जाना ॥
हाजी सँग मिलि गयो मदीना का भा गए जो साफ न सीना।
गा बगदाद पीर क तीरा, जेहि निहचै तेहि सग हमीरा ॥
इस्तम्बोल[1] मीसर पुनि हेरा गा लदाख लहु कीन्हिसि फेरा।
घर घर नर नारी सकल, हेरेसि पुनि गिरि मेर।
जौ लहुँ दीप न उर बरै, तौ लहुँ जगत अँधेर ॥ ४१८ ॥
दखिन देस को जे पगु धारा चला ताकि सो लँक पहारा।
पहिलेहि गै हेरेसि गुजराता, सुन्दर धनी लोग सुख राता ॥

१—कुस्तुन्तुनिया का एक नाम।

गया जाम जहँ कच्छी होई लोग सुरूप सुखी सब कोई।
पथिन्ह मिलि पुनि गौ सेलाना, बाबा आदम कर अस्थाना॥
सेतुबंध रामेश्वर लाँघा जहँवा जात काँप नर जाँघा।
देखेसि लंका कंचन केरा सरदीप सब घर घर हेरा॥
सिंघलदीप दीप उजिआरा जो देखा सो मनि मनिआरा।
नर नारी सुन्दर सब बसगित जनु कबिलास।
ऊँच नीँच घर पदुमिनी मानहिँ भोग विलास॥ ४१९॥
बलदीप(क) देखा अँगरेजा जहाँ जाइ नहिँ कठिन करेजा।
ऊँच नीच धन सम्पति हरा मद बराह भोजन जिन केरा॥
जहा जाइ उँह बन्दर साजा लगा सग चढि गयो जहाजा।
हेरा करनाटक नौरगा कुखर उडीसा मा तेलगा॥
स्याम बरन हबसी अरु जगी तामिल देखी जाय फिरगी।
देस उडेसा साधन धावा हुगली बेली बदर लावा॥
उलटि बरार जाइ पुनि हेरा घर घर दक्खिन कीन्हेसि फेरा।
देखा गढ देवगिरि कर पुनि आसेरहि आइ।
ऐसा काइ न सँग मिला जो चितउर ले जाइ॥ ४२०॥
ज पूरब दिस कहँ मुहँ फेरा पहिलेहि आइ सो मथुरा हेरा।
बिन्द्राबन महँ ढूँढे जोगी, जैसे गोपी कृष्णवियोगी॥
दिल्ला तखत जो साहन करा सो देखा अगरा पुनि हेरा।
आइ पयाग कीन्ह तिरबेनी करवट देखी सरग निसेनी॥
कासा माहिँ बिसेसर पूजा, जाहि देव सर आहि न दूजा।
रहि दिन चारि फिरा पँचकासी पूछे फिरि फिरि बाभन जोसी॥
आस न पाएसि चला निरासा हेरसि चढि क गढ राहितासा।
पानी पूरक होइ अन, घाटिन बिकट चढाउ।
बरिस सहस जो लागै बरजस हाथ न आउ॥ ४२१॥
मग्गह देखि फिरा सिर धुनी तिरहुति में विद्यापति[1] सुनी।

(क) बलदीज, पाठा।

१—एक मैथिल कवि।

पुनि आवा जहँ गढ़ीदुआरा एकै पथ चलै ससारा ॥
दक्खिन परबत उत्तर गगा, सोई चलै जहि पौरुष सगा।
पहिलहिं जो नहिं करै विचारा बाचहिं मारि लेहिं बटमारा ॥
जहाँ तहाँ देखहि परिकर डका राम जूझि जस रावन लका।
जो पुहुमी बलि दरबन राता तहा जात कोउ पूँछ न बाता ॥
आपुहिं आपु जनावहि जाइ जो वोहि मारग देइ बताई।

प्रविस परेवा नगर महँ, परा कुतुब के पाय।
ढूँढिसि भाठी माहिँ पुनि बारी बारी जाय ॥ ४२२ ॥

पुरुब अपूरब देस बँगाला पुहमि हरियरी तीनिहु काला।
कटहर नरिअर आम सोपारी अपनी बारी धनी बखारी ॥
हरियर सदा फूल फर डारा जनम न सुनी नाउँ पतझारा।
पात्र मास भूम जल पूरी धूरी नाउँ पै देखे न धूरी ॥
सूखे पथन चल बटाऊ, नाउ पाउ कै देहली पाऊ।
अन धन सुक्ख दु ख नित गाली दया हिये पै लोग बँगाली ॥
जहँ लहु हिछा तहँ लहु मि ता हाछा मिलै बिसारै चिन्ता।

सब कहँ अमिरित पाँच हे बगाली कहँ सान।
केला काँजी पान रस साग माछरी भात ॥ ४२३ ॥

उतरा ब्रह्मपुत्र क पारा पीर बँदर चढ़ि नाउ पुकारा।
गयो सोनारगाँव जब जागी परसे पाँच पीर जनु रागी ॥
देखेसि मलुआ औ चटगाऊँ सोनदीप[1] पुनि उत्तम ठाऊँ।
देखेसि पीगु मनीपुर राजा(क) निभरम अपने देस बिराजा।
औ पुनि हेरसि कूच कछारी जहँ माटी के परबत भारी।

१—बम्मा। (क) दक्खिना का औ चित राजा।

मखरहग औ हेरेसि आवा आव नाउ पै कोउ न पावा ॥
देखेसि जाइ असाम कै साजा सरग देव जहवाँ कर राजा ।
निसि दिन रहै मचान पर बाहन हस्ती नाउँ ।
हारिल ज्यों अँत्रिख बसै पुहमा धरै न पाउँ ॥ ४२४ ॥
हेरेसि जाइ देस पुनि चीना भँवत भँवत जागी भा हीना ।
जो जहँ हुत सो तहँ अकुलाना कहहिँ देस कर भयो निदाना[1] ॥
पुहुमा नाहिँ कहा अब धावहिँ सरग जाइ हेरहिँ मकु पावहिँ ।
बार परहिँ अब गै गिरिनारा सरग निसेनी एहि ससारा ॥
तीनौं चले परब दिन जानी हरि हरि कहँ माचु निअरानी ।
घाटी चढत निनहुँ भा मेला , जानहुँ प्रान गात सौं खेला ॥
पाउ न उठै सरग भइ घाटी को ल के पहुँचावै माटी ।
कहहिँ कि हम सब जग फिरे ओहि मूरति छित नाहिँ ।
अब निहचय एहि बीर चढि चलहु सरग कहँ जाहिँ ॥४२५॥
जो जेहि आस मरन निजु काँधा , अवसि सोई आव सँ राधा ।
बिनु जिउ दिए न पावै कोई कै जिउ होइ कै प्रीतम होई ॥
चढि गिरिनारहिँ देखहिँ कहा लोग चहूँ दिसि धावत अहा ।
पूछहिँ कहा लोग सब धावा कौन अपूरब कोतुक आवा ॥
कहहिँ आह एक राजा लोना देखत जनु सिर मेले टोना ।
अस सुन्दर मानुष नहिँ होई निहचे देवता आहै कोई ॥
जोगी सुनि आए पुनि तहाँ पूरन ससि जग वन्दै जहाँ ।
मुख देखत सुखमा हिए परा अगिनि उर पानि ।
बन्देउ पुहुमि लिलाट धरि , चतुर चिन्हि पहिचानि ॥४२६॥
पुनि जौ देखा ससि मनिआरा , धरा पुहुमि सिर दूजी बारा ।
कहहिँ कि धन बिधि धन वह राजा , जेहि कुल अस मयंक उपराजा ॥
हम रेनुक वह रबि अति ऊँचा , रबि रेनुक पुनि कहाँ पहूँचा ॥

१—अन्त ।

को अस मिले कहै जो नाऊँ जाति बखान जनम कर गाऊँ ॥
जेहि पूछै सो कोऊ न कहा जगत देखि बावर होइ रहा ।
एहि महँ कुअँर उतरि गढ आवा लोगहिँ रहा हाथ पछतावा ॥
जत कत जगत चला उठि लोइ देवता नहिँ का पूजै कोई ।
जागी आयो उतरि गढ चले कटक सँग जाहिँ ।
होइ हुलास अनन्द अति कथा महँ न समाहिँ ॥ ४२७ ॥

पथी चलत जो भयो सँघाता पूछी ताहि कुँअर की बाता ।
तेई कीन्ह सब बात उघारी एह राजा हुत आनि भिखारी ॥
दोष न जाने दहुँ का अहा पाँच मास बँद भीतर रहा ।
कौल लागि सोहिल चढि आवा, सागर राय बहुत दुख पावा ॥
एह गहि खग्ग दीन्ह तब आसा जरत अगिनि राखा रनिवासा ।
हनि मारिसि सोहिल बरिआरा सागर लूटा सहन भँडारा ॥
अब सोई तेहि दीन्ह बिआही किस्न सुजान कौल जनु राही ।
सुनत कथा सतोष भा, जागिन पाई सिद्धि ।
जनु बैपारी घर चले लै लाहा[1] नव निद्धि ॥ ४२८ ॥

(३१) चित्रावली बिरह खंड ।

चित्रावलि चित भएउ उदासा पिउ न गए दै अवधि की आसा ।
बिरह समुँद अति अगम अपारा बाज अधार बूड मँझ धारा ॥
चहुँ दिसि हेरहुँ हितु कोउ नाहीँ, बूडत काह उँचावै बाहीँ ।
निसि दिन बरै अगिन की ज्वाला, दुरगा मँदिल भया है बाला ॥
बुझै न लूम सगर लहु बाढा पथी गयो लाइ हिय डाढा ।
जोगी सुरति रहै चखु माहीँ, ज्यौं जल महँ दीपक परछाहीँ ॥
झलमल जोति होइ उजियारा, पानी पौन बुझाव न पारा ।
बिरह अगिन उर महँ बरै, एहि तन जानै सोइ ।
सुलगै काठ बिलूत[2] ज्यौं, धुँआ न परगट होइ ॥ ४२९ ॥

१—लाभ । २—[अ طلوط] एक वृक्ष ।

एक दिन कहिसि कि ऐ रँगमाती[1], करिया भयो रूप रँगराती।
रूप रग सब लै गा जोगी लोग कुटुँब जानै यह रोगी॥
जोगी गया छाडि तजि माया भोर कि धुईं भइ मम काया।
जोगी करत कहा दहुँ फेरी आसन परी छार की ढेरी॥
बिरह पवन जो करै झँकोरा, बिथुरे छार न कोऊ बटोरा।
जोबन गज अपसर[2] मद कीन्हे अब न रहे अँधियारी[3] दीन्हे॥
निसि बासर तन कानन गाहा जाकी साल हिये तेहि चाहा।

जोबन सखी मत गज तौ लहुँ लाग गोहार।
जौलहुँ अपसर हाइ कै सीस न डारेसि छार॥ ४३०॥

सुनि रँगमती कहा सुनु बारी जोबन मैगल मद दिन चारी।
अपसर हाइ देइ नहिं काई जौ तिय आपु महाउत होइ॥
अकुस सकुच गहे कर नारी, दै आँखिन्ह घूँघुट अँधियारी।
आ कुल कानि महादिढ अदू[4], निसि दिन राखै मेलि के फदू॥
जौ हठि के अरि पाँव निकारा, हटक बुद्धि चरचा गडदारा।
एह ससार रीति अस अहई जो जेहि लाग दु ख जिय सहई॥
जो तजि ठाउँ सकै नहि जाई आपुहिं तहाँ मिलै सो जाई।

आजु बदन तोर कौंल सम, औरै रग सुभाउ।
सब तन लागै मधुप पुनि मकु कोउ चाह सुनाउ॥४३१॥

एहि महँ सखी एक हितकारी, आई हँसति भई रतनारी।
कहिसि कुँअरि सुनु बचन सुहाए गए बिदेस नपुसक आए॥
बदन अरुन हिय हुलसत अहहीं जानहुँ बचन कछुक सुभ कहहीं।
सुनतहिं चली धाई बरनारी, गिरी रही पे सखिन्ह सँभारी॥
जोगी आइ मनावत नाथा दरस पाइ भुइँ लावेउ माथा।

१—एक सखी। २—मनमाना, मनजोकी। ३—आँख ढँकने का ढोका।
४—हाथी के पैर बाँधने के लिये एक यन्त्र।

कहिन कि हम पुहमी सब आए चित्र सरूप चीन्हि अब आए ॥
सुनि रहसी चित्रावलि हीया चित्रहिँ जानु फेरि रँग दीया ।
हिय हुलास बिहँसे अधार, औ कपोल रँग हाइ ।
पुनि उपजै उर धक धकी होइ न औरे कोई ॥ ३३२ ॥
पूछिसि कौन रूप सो देखा केहि दिन कौन भाँति केहि लेखा ।
जोगिन रहसि रहसि जस जानी आदि अंत लहुँ कथा बखानी ॥
सुनि चित्रावलि हिय सताखा, निहचै जाति गया जिय धाखा ।
कहिसि कि हौं तुम्ह ऊपर बारी, मोरे दुख बहु भए दुखारी ॥
अब सुख करहु बैठि एहि ठाऊँ, करिहौं सेव जगत जब ताईं ।
मैं सब इच्छ तुम्हार पुराई तुम जग इच्छा पुरवहु जाई ॥
सेवक सेव तजौ जनि काई सेवा ठाकुर आपन होई ।
मान सेव सोइ कीजिए जासों पति पहिचानु ।
ठाकर आपन जो भयो सब जग आपन जानु ॥ ४३३ ॥

---

(३२) पाती खंड ।

चित्रावली हँकारि परेवा, कहिसि बखानि नपुसक सेवा ।
जोगी भँवर जगत फुलवारी भँवइ बास लागि बारी बारी ॥
मालति आवै भवँर भुलाना कँवल कोस लै रहै निदाना ।
अब पुनि गवँनहु सागर देसा कहहु जाइ यह मोर सँदेसा ॥
ये अति निठुर निछोही पीया, मानुस होइ न पाहन हीया ।
जाके सीस ठगौरी डारी, तेहि कैसे एहि भाँति बिसारी ॥
जोगी भेष फिरहु ससारा कहाँ जाइ घर बार सँवारा ।
रोइ रोइ चित्रावलि कहा जस कछु जोगी कीन्ह ॥
औ जहवाँ लगि दुख सहा सो पुनि सब लिखि दीन्ह ॥ ४३४ ॥

पहिले लिख्या परसि सिर पावा तुम बिदेस दुख हम तन छावा ।
बिरह अनेक कटक दल साजा, हम उर पीर आइ भा राजा ॥
मदन परथ[1] है धनुख सँभारा सुख कौरौ दल मारि निसारा ।
अगिन सोंटिया चहुँ दिसि धाव जत सुख साजि सो दूढि जरावे ॥
मैन मतग गज देइ मकलाई तोरि तोरि तन कानन खाई ।
बिछुरन साल जानु तन पूरा हस्ती मदन हस्त कर चूरा ॥
जेहि दिसि गिरि पावै नहिँ रहई तिय तन तुछक किमि कै कहई ।
दु ख दगध सताप मिलि, परा फाँद कैँ आइ ।
बिरह अहेरी गु जरत मन कुरग किन जाइ ॥ ४३५ ॥
औ निहचै जानहु जिय माहीँ दुख दिन कर कोउ साथी नाहीँ ।
हित जो अहे अहित होइ गए बिरहानल अब बैरी भए ॥
सीतर हुत समार तुम सगा अब सो अनल होइ लागे अगा(क)।
सेज जो आहि हेमचल पूरी अब सो जर लाग जनु होरी ॥
पुहुप भए कटक अरु सूआ देखि न जाइ हाथ को छूआ ।
चन्दन जो घनसार मिलावा जनु करवार[2] सान पर लावा ॥
जो सुख देत अहे सुखदीना सब दुख देइ लाग पिय बीना ॥
हिया न उघरै नैन पट जौ चीन्हति पिय तोहीँ ।
तुमहीँ सब महँ होइ कै, देत दु ख सुख माहीँ ॥ ४३६ ॥
किमि निरबह दिवस पिय बीना जुग भ पहर कल्प भै दीना ।
जिमि जिमि दिनकर किरन पसारा, मानहुँ बान मकरधुज[3] मारा ॥
मदन भुअग डसै निसि आई, तरनि देखि बिष तन छहराई ।
दूभर घरी पहर को पावे एक पल माँह लहर दस आवै ॥
दुपहर बरस अगिन की धारा सिर की आगि सहै को पारा ।
नवत बेर सब कोउ न लखाई चढत बेर मोहिँ कछु न सोहाई ॥
बूडत रबि जिय बूडै मोरा, कत आउ सुठि जीवन थोरा ।

१—परथ = अर्जुन । (क) रहु उसन सम दाहत अगा । २—स कृपाण-तलवार । ३—कामदेव ।

साँझ परत तरिवर चलत चित्त बिहगम जीव ।
दुख सँताप बिरहा अनल आनि बसत हम जीव ॥ ४३७ ॥

स्याम रैनि बिनु स्याम दुहेली छिन न परै कल सेज अकेली ।
स्याम रैनि देखी जिय डरा अँगन बिरह आगि जनु जरा ॥
लोयन सिंधु थाह को पावै बुडिव के डर नींद न आवै ।
पिय बिनु पीढ फाट नहि छाती तारे गनत जात सब राती ॥
चाहौं रास बरग कस बना बैरी गगन लगन का गना ।
कबहूँ धनु देखाइ जिय हरई कबहुँ राहु करवट सिर धरई ॥
कबहुँ बिछू होइ साजै डका कबहुँ सिंह ते उपजै सका ।
बुधि न रही सुधि सब गई, जीव सहै दुख केन ।
मोरे मंगलचार तब, पिउ आवै करि हेत ॥ ४३८ ॥

सहि न जाइ पुनि रैनि अँजारी, कौन मास लागै जग होरी ।
हौं तो जरौं जा कत न आहा ससिहर जरै कहौ गुन काहा ॥
कै बिधि जग दो ससि निरमयो एक तातो एक सीतल भयो ।
सीतर हुत सो गा तुम्ह सगा, रहा उसन[1] मम दाहत अगा ।
कै दधि मथा घिरित सो आही परेउ बिरहनल[2] तौ मैं दाही ॥
कै बिसरा जु अहा अतिहिता कै देखि कुदिन न मानै नता[3] ।
अजहूँ आइ सँभारहु नाहीं, लेहु उबारि जरत गहि बाहीं ।
जौ पिउ चाहसि जीउ मम आउ तौहिं जिउ देउँ ।
तन जरि जिमि दूरद भयो कहसि तो कर कै लेउँ ॥ ४३९ ॥

जौ न पसीजसि जिउ मोर भाखी पूछि देखु गिरि कानन साखी ।
करैं पुकार मजोरन गोवा, कुहुकि कुहुकि बन कोकिल रोवा ॥
गयो सीखि पपिहा मम बोला अजहूँ घोखत बन बन डोला ।
उडा परेवा[5] सुनि मम बाता अजहूँ चरन रकत सौं राता ॥

१—उष्ण = गरम । २ बिरहानल । ३ अ ﻧﺎﺗﺎ, सम्बन्ध ।
४—स द्विरद = हाथी अर्थात् काला । ५—कबूतर ।

हारिल दुख सुनि भयो बिपाऊ, अजहूँ धरती धरै न पाऊ।
गा भुजग हाइ गृह बासा, दहि भा स्याम बिरह के उसासा॥
कियो झँकार बिरह क आँचा, बाएस भस्म होत तहँ बाँचा।
कुकनूँ पखी जहँ बसे तहँ प्रगटी यह पीर।
उठी आगि सुनि कै हिये लगा सँवारै चीर॥ ४४०॥

बनसपती[1] सुनि बिथा हमारी बरहे मास हाइ पतझारी।
टेसू जरि पुनि भयो अँगारा, फरहद आगि लाइ सिर जारा।
दारिम हिया फाट सुनि पीरा पै पिय तोर न दया सरीरा॥
भीतर जस खजूर कर बीआ रह छिपान मोर तस हीया।
रोइ रकत धुँधुँची भइ दुखी, तजी न बेल रही करमुखी॥
भयो खीन जस चल दल पाता पौन उसास डोल मम गाता।
जो जग सुनी बिथा यह मोरी, त सराहि पिय छाती तोरी॥
कहत फिरत मारुत बिथा, पातन सौं बन माहिँ।
धुनत सीस सुनि सुनि सब पीय दया तोहिँ नाहिँ॥ ४४१॥

एक दिन भूलि मधुप उर लागा दहि भा स्याम तबहिँ उडि भागा।
गै सरवर मम दुख परगटा कँवलहिँ हिए पर सुनि गटा[1]॥
गयो तेज सुनि कुमुदिनि करा, गुडिन क डर बाँधी बरा।
सरवर पुनि बिरहै झकझोरा निसि बासर तन उठ हलोरा॥
डरन मीन चखु पलक न लावा माति सीप दुख बिरह जरावा।
बैसदर रज पानि समारू सब महँ रही व्यापि मोर पीरू॥
जौ इन्ह माहँ होत तोर गाता तो तोर हिय मम पीर पिराता।
बरन बरन कहँ जानिये, जगत सिष्टि सब झारि।
कौन बरन महँ साइँ तुम्ह, जेहि नहिँ चेत हमारि॥ ४४२॥

१—बनस्पति। १—कमल क फूल क बीच का छाता जिसमे बीज होत ह। गाठ।

चैत माहिँ जब कीन्ह बिछोई जग महि समय न बिछुरै कोई।
बिछुरत गयो प्रान तजि देही, पिय बिनु परी पुहुमि खसि खेही॥
बिरह जो आह घात कहँ लागा, लागि आइ ज्यों मरघट आगा (क)।
मैन आनि कीन्हेउँ तन नासू सब कहँ मधु हम कहँ बिख बासू[1]॥
खाइ माँसु मधु होइ निहाला, बिरह कीन्ह तन मिरिग क छाता।
नवपल्लव बन तरु अवसारे[2], कत तोरे नहिँ नेह पिआरे॥
पलहन फूलन जो बन बारी बिरह आइ जरि मूरि उपारी।
कहाँ बसंत केहि कुसुम गुन मधुकर हिए बिचारु।
भूलि रहा कहँ कौल कह मालति बेलि सँभारु॥ ४४३॥
भा बैसाख(ख) आँसु चखु दूना भा तन जान पान कर चूना।
जँह जँह परै नैन जल धारा तहँहि अक हुत उठै लुवारा॥
परी बिजाग पुहुमि सब जारी जरहि मैन जौ जानि उघारी।
भा चन्दन घनसार दुहेला जनु घृत आनि अगिन महँ मेला॥
चीर हार तन चोली ताती, तुम बिनु कन सिराइ न छाती।
दानव दिवस साँझ अहि भारी, रकसिनि[4] रैनि भूत भिनुसारी॥
सो तन जानु बिरह जेहि पीरा निसि बासर छिन कल न सरीरा।
हौं जोगिन जोगी भई तौ पिउ खेह अँडार।
अब तिय बिरहा जरि जरी, आनि समेटहु छार॥ ४४४॥
जेठ तपै रबि सहसन तेजा, सोइ जाने जेहि कत न सेजा।
अस जग तपन तपै पहि मासू, पुतरिन्ह माहँ सुखावै आँसू॥
बिरह न रहै छपाए छिपा, सहस तेज होइ हम तन तपा।
पकज दल मलेज घनसारा, लागत अग होइ सब छारा॥
बूडी अमिय दिष्टि पुनि सारी, तेहितेँ अमर जरी नहि जारी।
बिरह बवडर भा बिनु नाँहा, जिमि जिउ पात फिरै तेहि माँहा॥
पौन उसास उठै जस आँधी परगट होइ न लाज कि बाँधी।

(क) कागा-पाठा। १—नासुकि = नाग। २—निकाले। (ख) भाद्रव मास, पाठा। ३— वाला। ४—राक्षसी।

आधा बिरह सरीर बन दाँव दहा जिअ मोर ।
छाँह न पावै कत बिनु आगि बरै चहुँ ओर ॥ ४४५ ॥

मास असाढ़ गगन घहराना बरखा रितु आगम सब जाना ।
बादर स्याम छाइ चहुँ ओरा बैरी बक क पाँति देखाए ॥
लाग लोग घर आपन छाए पछी बन बन गेह बनाए ।
मोर कन्त जोगी बनबासा मँदिर सँवारि करौं का हाँसी ॥
जेहि उजारि पिउ बसै हमारा बसती सो यह सब उजाग ।
बिरहा बैठ हिए छाइ धानी अब निहच जानेहुँ जिउ हानी ॥
गय बिदेस देस कहँ आए हम कहँ कत सँदेस न पाए ।

गिरही एहि रितु घर तकै साझ परे पुनि गाउ ।
जागिहिं जहवहिं साँझ भे साइ गाउँ सोइ ठाउँ ॥ ४४६ ॥

जा एहि मास लोग घर साजा माहिं बिनु कत न छाजन[1] छाजा ।
एह दुहु मास माँझ खुटि राई बिरहा बली निचिंत न सोई ॥
आगर दुख दूलम सरबरी निसि दिन पथ निहारौं खरी ।
बाक न मुख कैस दुख कहऊँ बाउन पास आँधि चखु रहऊँ ॥
नकु न काऊ बिरह धुन धूनी भइ बिनु तेज थाक अब थूनी ।
का रि चलै लइ पिउ की आगी थाँखि उचाइ बाहिं ल मोरी ॥
हौं जहि लगि यह ठाट सँवारा कहा जाइ दहु भया मयाग ।

अजहूँ आइ सँभारु र बरी कहउँ कि मि न ।
भागी होइ तु सँवरइ जागिहि का ओ चित ॥ ४४७ ॥

सावन बिरह बढावन आवा, उनइ घटा गगन सब छावा ।
बरसन लाग मघ अतुधानी घर आँगन सब भरि गा पानी ॥
की दुख देखि मोर अति रावा कै कतहूँ भा प्रम बिछोवा ।
जो न बिरह धन सम्पति लूटी रकत रोव कत बीर बहूटी ॥
बोलहिं बिरही बिरह कि बोली हम तन जारि कीन्ह जहि झोली ।

१—छान = छप्पर ।

दादुर शबद जाइ नाहिँ सहा निसरत प्रान लाज गा कहा ॥
तरुनिन पूजि तीज रितु मानी झूल हिँडोल गाय पिक बानी ।
दुख हिँडोल मो मन चढा बिरहा दिये झुलाय ।
खन पुहुमी खन सरग कहँ निसि दिन आवे जाय ॥ ४४८ ॥

भादो भरन भरी बिख धारा, मोँ कहँ भवन भयो अँधिआरा ।
अस कहि सकल तमी तम चोरा तमचुर बोल जानु भा भोरा ॥
रबि ससि नखत सबै छिपि गए दिन औ राति दोऊ एक भए ।
कत न सेज अत[1] निसि नाहीँ नागिनि भई आस्तीँ[2] बाहीँ ॥
यह अँधिआरि भयावनि राती बिहरि न जाइ बजर की छाती ।
नैनन नीर नदी होइ गई बूडत सेज भइ घरनई[3] ॥
नैया डोलन उदधि गँभीरा बिनु खेवक को लावै तीरा ।
रति अँधेरी भँवर जल चहुँ दिसि लहरि झँकार ।
बैठे तीर निचिंत सो का जानैँ दुख मार ॥ ४४९ ॥

आसुन मास खज परगटा घन छीने पुहुमी जल घटा ।
सरद समा सीतल ससि राती घनहिँ सिरान जगत की छाती ॥
हम घट बिरह दून कै दहा लोयन नार[4] समुँद होइ बहा ।
हम तेस निरखैँ तीरन लागा, जस बर लहरि सिवारि क धागा ॥
लोचन भए मान तेहि माँही एकहु पल पल[5] लागैँ नाहीँ ।
हीआ सख भा तजि तन साथा मकु र चढै कैसोँ तुअ हाथा ॥
तैँ जोगी भूला केहि नादू ए सब खेल तोर परसादू ।
नैनन होइ सब निसि गई पलउ न सीतल लाग ।
अजहुँ आउ रे एहि समै, कहाँ लगावसि आग ॥ ४५० ॥

कातिक कहँ तक रह घट सँसा, पिय न गए दै अवधि की आसा ।
देस न जानउँ दहुँ कहँ पीऊ कहु का कहि समुझावउँ जीऊ ॥

मानहिँ परब देवारी लोगू, पूजहिँ गाइ करहिँ रस भोगू।
जग सेरान एहि समय सोहाई हम तन दीन्ह दवाँ जनु लाई॥
भोरहिँ मारुत सीतल बहा घर घर जाइ सँदेसा कहा।
लोग सुपेती साजै लागा, हम हिअ भयो दून बरागा॥
पिउ सँदेस काउ कहै न आई, सपनेहुँ जाहि न ठावँ सुनाई।
नींद न अवत रैनि दिन हाइ करजें छेद।
धनि सो नारि जेहि पिय गया सपने कहि कहि भेट॥ ४ ?॥
अगहन सकल गहन की घरी धन साता रावन जहिँ हरी।
बिरह असोक सोक फल फरा तेहि की छाँह धूप जिउ जरा॥
राम कि हनुवँत से सुधि लीन्हा तूँ पिय निठुर सुरत नहिँ कीन्हा।
उहा जोगि हुत जे सुधि पाई रावन हनि सिय जाइ छोडाई॥
तू जोगी कस लसि न चाही जानि बूझि तैं बरबस बाही।
अजहूँ आइ सँभारहु कंता बिरहा जाड भए एकमन्ता[२]।
सीव[३] सजान[४] भयो बिनु नाहाँ दबका फिरै जीउ घट माहाँ।
बिरहा तैत कुरग हाए चरै सकल सुख बारि।
आइ त्रिबस एक राम हाइ कसन जाहु पिय मारि॥ ८५० ॥
पूस मास जग जाडा मारा तिनकरहूँ दिसि अगिन सँभारा।
पाला पर पौन झुरकाई, जाडन देह सून होइ जाई॥
कबहूँ जाड न छोडै छाती, बासर घरी और सब राती।
जेतिक ओढौं सँवर सपेती हहलि हहलि उर काँपौं तेती।
र जोगी एहि दूभर मासू जहि पल घटा न नैना आँसू।
हम कहँ मेलि हिवचल कूईँ, कहाँ जाइ सुलगाई धूईँ॥
का कहँ रबि होइ प्रगटेहु पीऊ, काकर जाइ छडायहु सीऊ।
जाडन मरौं दुकूल मैं अजहुँ सवँरि पिय आउ।
तू जोगी हौं जोगिनी कथा आनि ओढाउ॥ ४५३ ॥

१—दावाग्नि। २—एक मत। ३—शांत। ४—सजान = चेतन, प्रबल।

दूभर माघ भयो बिनु नाहीं , रहन न जिउ देखौं घट माहीं ।
पिय बिनु हिय घन गहबर आवा नैनन्ह मिलि मॉहट[1] बरिसावा ॥
पौन उसास झँकोर झकोरा हिया करेजा काँपि मोरा ।
बाढी दिवस दुक्ख तन बाढा बरबस जीउ जाइ नहिँ काढा ॥
सिरीपचिमी खेलैं लोगू मोहिँ बिनु कत दून भा सोगू ।
तरुनी फिरहिँ सीस[2] के राता हम तिन देखि भूलि सुधि साता ॥
सखिन्ह आनि हौं भरी गुलाला , प्रगटी रोम रोम तन ज्वाला ।

जौ न हसौं तौ सब हँसहिँ हँसौ तो हँसा न आउ ।
दुहुँ दूभर हौं बिच परी , पिय तुम्ह नेह सुभाउ ॥ ४५४ ॥

फागुन बिरह पवन अधिकाना हम तन जस तरु पात पुराना ।
सुख तरुवर सेती बरु तोरा ता पर दुख औरौ झकझोरा ॥
आसा सुख बसत फुलवारी तजि न सकै यह खाखरि बारी ।
चातक बोल जो हम सुख मूला दहुँ केहि तोतम मजरि भूला ॥
कहाँ जाइ इन्ह चाचरि जोरी हम तन मैन लाइ दह हारी ।
धुआँ सबै दुहुँ नैन समाना , तातेँ अहि निसि नीर बहाना ॥
स्वारथ लागि क न कछु कीन्हाँ पै बिधि लिखा न काहू चीन्हाँ ।

राम हेतु जिमि जानकी , तजि कुल कीन्ह पयान ।
अस न जान जो लकपति , करहि आन की आन ॥ ४५५ ॥

जोगी हेतु लीन्ह अस जानी हिया होइ जस दीपक पानी ।
मकु चारिहुँ दिस लागि बिजागी , जाइ छाडि जस धुईं कि आगी ॥
जोगी जोग पथिक कहँ बूझै , पथ अँधेर नाहिँ कछु सूझै ।
निकसे मेलि भवन अँधियार , दै तारा उठि जाइ सवारे ॥
जोगी सग लीन्ह यहि काजा वेदन खोवे सुख उपराजा ।
मकु दै मुरी जाइ कै रोगी , औषद आन न जानै जोगी ॥
जोगी हेतु कीन्ह गुन हीए , छूटै फाँद सबद के दीए ।

१—माघ की वर्षा, महावट । २—शिशिर ।

नेकु धधारी हाथ दै जाइ फाँद अरुझाइ ।
त्यों त्यों काउ सुरझावै त्यों त्यों अधिक फँदाइ ॥ ४ ६ ॥

अब जो परी फाँद पिय तारे कहा होइ पछताएँ मोरे ।
व्याधा जो बन बिचहिँ फँदावै मरै न पाउ सँभारि उठावै ॥
पै तुम्ह देख निछोही व्याधा काहे लेसि एत अपराधा ।
कै अब आइ लेहु मग लाई के कटु फाँद जाहु मोकलाई ॥
तँ माहिँ देखत खल पहिचाना मै तोर भेद न एकौ जाना ।
आन क भेद लिए जो लेहू आपन भेद न काहुहि देहू ॥
जौ मैं तब पावति तुअ अतू करत सोई जेहि बिलम्हत कतू ।

मान इहे पछताव मन रहा जनम भरि माहिँ ।
बूझि लिएउ मैं सो बिखै अहा हतु जो तोहिँ ॥ ४ ७ ॥

जौ तोर पीत खपर सौं साईं आन न देखु नारि की ताईं ।
बिरह बैठि उर(क) खपर परेवा भीजा नेन नीर जत रावा ॥
जौ तोर हेतु भसम सौं जोगी, आइ देखु तिय बिरह बियोगी ।
तन मन जारि भसम के राखा कागन आइ ठोर[1] भरि चाखा ॥
हीवर आगि लाइ सो राखी तुम्ह नहिँ गए हाए मोर साखी ।
जा चाहसि अबर[2] रतनारा, आइ देखु मम लोचन धारा ॥
रकत सुरग धार सब टूटा बसन जा रगा जनम नहिँ छूटा ।

हीवर छाला चकर चखु, पलक पाँवरी भेख ।
दहुँ सो जोगी दिष्टि भरि, काहि जानि कस देख ॥ ४५८ ॥

पाती लिखी समापति भई, चूमि परेवा के कर दई ।
किहिसि पाइ गहि बहुत बिनाती, कहिसि लेहु यह दुख की पाती ॥
बिरहिन कर लागे पिअरानी, भीजी नैन नीर के पानी ।
जतन जतन कै राखी पाती, सेंकी लाइ लाइ धन छाती ॥

(क) उर पाठा । १—चोंच । २—वस्त्र ।

अजन सब आखर होइ लागा बाँचत हिए उठै बैरागा।
पाती देखि देखि उठै मरोरा, भरि भरि जनम पात बन तोरा॥
पाती चढिहि जाए पिय हाथा हो आखर होइ चली न साथा।

तन पीअर मुख साँवरा रही तुचा होइ अग।
तिय यहि गुनि पाती भई कसन लेहु मोहिं सग॥ ४५९॥

चला परेवा ल दुख पाती बिहरै सुनत बजर छाती।
पुहुमि न धरै पाँउ अनुरागी पाती जानु पवन सँग लागी॥
थारेन्ह दिवस जाइ निआरावा देखेसि सागर देस सुहावा।
ठाँवहि ठाँव सोहावनि बारी सान रूप फूली फुलवारी॥
पोखर घाट चहूँ दिसि बाँधे, कुआँ अनेक रहट पुनि साँधे।
अनबन भाँति सवाँरि कियारी सींचहिं अपनी अपनी बारी॥
बुडहिं भरहिं पानि अन्छरी माथे सोन रूप की घरी।

नीबी छवि लटकी झबा पाएन नेउर बाज।
ठुमुकि धरहि जब पुहुमि पगु परे इन्द्र सिर गाज॥ ४६०॥

परगट रहट आइ यह अवनी मूरख जन कहँ भई चेतवनी।
समुझ न कोउ अधिक दुख कहा होइ कुरग तन पजर रहा॥
निसि दिन नैन ढरै जल धारा ऊँच सबद सुनि करै पुकारा।
तबहुँ न चेत हिये के आँधे, हम इहँ बाँध घरे[3] जिमि बाँधे॥
जौलहुँ होइ न यह तन नासा छूट न कैसेहुँ गिंव कर फाँसा।
कोउ आगे कोउ पाछे परे, एकहि ठावँ आइ सब ढरे॥
भरी ऊँच सिर की हे आई छूछी चली जाहिं सिर नाई।

रहट बिसह[4] यह मूढ मन, दिएँ अँधौटा नैन।
कहा जो हाँक्यो जनम भरि चलेहु न एकौ कैन॥ ४६१॥

१—त्वचा = खाल। २—अप्सरा सुदर स्त्रियाँ। ३—घडे। ४—बैल।

गै देखेसि पुनि सागर गाऊँ, चारिउ दिसा लगा अँबराऊ।
ऊँच कोट अति सुन्दर साजा धन राजा जाकर उपराजा[1] ॥
नौ खिरकी तहाँ रहहिँ उघारी लागी सोन दुआरि केवारी ॥
दुइ मसिआर ऊँच कै बारा, सरग माँह चमके जनु तारा।
राउत राजा पातिन पाँती(क) बैसे बार अपूरब भाँती ॥
बाहर चित्र विचित्र बनावा भीतर जानु अत जिन पावा।
आठ खड आठौ मनिआरे ठाँव ठाँव सब मोहनहारे ॥

सेव करहिँ सब देवता अस राजा बरिआर।
अगिनि रसोइँआ जल रजक पौन बहारैं बार ॥ ४६२ ॥

देखि परेवा देस भुलाना हुँपुमी सरग जाइ नहिँ जाना।
कहिसि कि धनि पुहमी धनि ईसा, जाकर सब कौतुक नहँ दीसा(ख) ॥
लोभ चार बाझै जग पाँखी मधि एहि देस बिदेसी माखी।
निहचै जो आवै एहि गाँऊँ, आन देस कर लेइ न नाऊँ ॥
इहवाँ राजकुअँर सुख भोगी हौं परदेसी निरधिन जोगी।
राजा राउ न पावहिँ बारा, को हमार लै कहै जोहारा ॥
राउत राना ठाढ तँवाहीँ[2], हम बपुरे कहि लेखे माहीँ।

भसम अग गेरुआ बसन(ग), जटा धरै जनि कोइ।
मान सो आसन आन है, जातेँ दरसन होइ ॥ ४६३ ॥

सबँरि परेवा गुरु उपदेसा, सरवर तीर ठाँव एक लेसा।
तहँ बैस्यो गुरु आसन मारी, लाइ समाधि ब्रह्म की तारी ॥
मारग बाँधि पौन परचावा, पेट खलाई पीठि सौंलावा।
उपजी अगिन तेज तन बरा, भितरहिँ भीतर मदिर जरा ॥
अमिअ कुड कर बार उघारा बरसाई अमिरित की धारा।

१—बनाया हुआ। (क) बत्तिस परतिहार की पाती—पाठा०। (ख) जाकर यह पुहुमी जगदीसा। पाठा। २—प्रतीक्षा करते हैं। (ग) कथा से लीं चिरकुटा—पाठा।

हीरर सर अमिरित जल भरा, दहि दहि कँवल नाल भा हरा ॥
पौन तेज जल उठेउ हलोरा, डगमग नाल कौंलि झझकोरा।

हसा सकती ध्यान धरि रँग रँग हरै लाग।
जो मन चाहे सो मिलै महा सिद्ध सिर भाग ॥ ४६४ ॥

---

(३३) सिद्धसमागम खड।

भयो सोर सब नगर मँझारी, करहिँ बखान सकल नर नारी।
सागर गाँव सिद्ध एक आवा मुख देखत मन इच्छ पुरावा ॥
कुष्ठी क्या बाँझ सुत पावै अधहिँ चखु दै जग देखरावै।
कहै चाह परदेसी करी, बिछुरेहिँ आनि मिलावै फेरी ॥
सुनि के धाए सब नर नारी बार बूढ़ तरुनी औ बारी।
जेहि निहचै ते निधि लै आए निहचे बिना बादि सब धाए ॥
निहचै नग जानि डारा कोई निहचै सिद्धि परापति होई।

निहचे इच्छा सरग हुत आनि मिटावै दुद।
जेसे नैन चकोर कहँ अमी पियावै चद ॥ ४६५ ॥

सुना कुँअर पुनि सिद्ध बखाना, अकसमात चित रहस[1] समाना।
कहिसि कि भाग जोर समुहाई[2] तब अस सिद्ध मिलै कोउ आई ॥
करूँ जाइ मन बच कै सेवा, मकु तो नहिँ होइ जाइ परेवा।
चित्रावलि कर कुसल सुनावे, रूपनगर कर पथ दिखावै ॥
चला कुँअर निहचै यक हाथा[3] सेवक पाँचन न छोडहिँ साथा।
महत गरब दोऊ तहँ त्यागे, मन बच कर्म तिनो सग लागे ॥
सनमुख आइ दरस जब कीन्हाँ, वै ओकहँ वै ओकहँ चीन्हाँ।

देखत दुहूँ आनन्द भा, रहसत आगेँ आय।
परेउ परेवा कुँअर पग, कुँअर परेवा पाय ॥ ४६६ ॥

१—उत्साह। इच्छा। २—सामने आता है, उदय होता है। ३—अकेला।

कहै कुँअर सुनु हनिवँत बारा लागु कठ ज्यों सीत समीरा।
कहु कुसलात बेगि सिय करी निसरत प्रान राखु घट फेरी॥
हौं जिमि राम भया बैरागी नख सिख परी बिरह की आगी।
राम सग हुत लछिमन भाई हा अकल दुख पुनि अधिकाई॥
हनिवँत कहा सीय कुसलाता राघव बदन सुनत भा राता।
औ पुनि बिथा कहिसि ओहि केरी, जेहि दिन ते तुम ओहि आडेरी॥
तहँहाँ दिवस देखि अकसरी रावन बिरह नारि से हरी।
सीता रावन बस परी करौं न काटि उपाइ।
तौ लहुँ नाहिँ उपार निजु जौलहुँ राम न जाइ॥ ४६७॥
पुनि दी हेसि चित्रावलि पाती, खोलि कुँअर लाई लै छाती।
सुलगत काठ लागु जनु लूका दुहूँ आगि मिलि उठा भभूका॥
हिया जरत जो लिहिसि उसासा धूम बरन हाइ गयो अकासा।
अमिरित बचन भरी हुत छाती, ता सों अगिन मुख बाँची पाती॥
पाती पावस सलिता भई दूनहु[1] कवल दु ख जल मई।
आखर मगर गोह घरिआरा, अरथ भँवर परि कठिन निसारा॥
भँवर अनेक पैठि मन तरा[2], एक तें निकसि ऐक महँ परा।
पाती जनु पावस नदी मन तकि पार तराइ।
चित्रावलि दुख अगम जल बूडि बूडि तहँ जाइ॥ ४६८॥
पाती पढ़ी समापति भई, बिरह झकोर कुँअर सुधि गई।
हीवर जिमि ग्रीषम रबि जरा, जिउ जनु पात बवडर परा॥
बर कै उठा चला लै चाहा, पाइ फिरा जैसे उतसाहा।
पुनि जो चेत हाइ देखा हेरी पायन परी बचा की बेरी॥
कहिसि कहाँ का दु ख बखानी जनम सिराइ न कहत कहानी।
हौं पछी भूला हुत आवा, जाल मेलि एहि गाँव फँदावा॥
चार लोभ बेसेउँ एहि आडा[3], अचक आइ खोंचा उर गडा।
पाँखन लासा प्रेम का, बाचा बधन पाइ।
दै दै मारौं मूँड बहु, निकस न केहु उपाइ (क)॥४६९॥

१—किनारा। २—तैरा। ३—अड्डा। (क) दै दै मारौं मूँड इहु निकसि न कैसहु जाइ।

अब तोहि मिलें भयो सतोखा आसा मिली गयो जीउ धोखा।
करहु उपाइ गवँन जहि होई मैं आपन बुधि मति सब खोई॥
चारौं चले धरम की हानी परगट बहु दिसि रोकहिं रानी।
सुनि कै बिथा परेवँ कहा अब दुख सब बीता जिन अहा॥
परगट जाइ सँवारहु कथा अजन लाइ गुपत चलु पथा।
रहसि कुँअर मन्दिर महँ आए कॉलावति कहँ निअर बुलाए॥
कहसि सुनहु अब राजदुलारी हौं परदेसी आदि भिखारी।
आउ न हमरे काज यह, राज पाट सुख भोग।
चित्रावलि हियरे बसी जाकर बिरह बियोग॥ ४७० ॥
अब लहुँ मिला न अगुआ कोई जेहिं परचय आहि दिस कै होई।
अगुआ मिला चलौं उठि सगा, तुम जनि करहु कौल मन भगा॥
जौ बिधि आस पुरावै मोरी ता मैं चेत करब पुनि तोरी।
सुनतहिं गवँन धसकि उर गयऊ कचन अँग राँग पुनि भयऊ॥
कहिसि कि ऐ जग जीवन साईं मोर जिअन तुअ दरसन ताईं।
जो तुम होब बिदेसी राजा इहवाँ मोर कौन अब काजा॥
पाछे महा दुख पुनि कीता, जहवाँ राम तहाँ पुनि सीता।
जैसे पनहीं पाँव की, तैसे तिया सुभाउ।
पुरुष पथ चलु आपने पनहीं तजै न पाउ॥ ४७१ ॥
कहै सुजान सुनहु बर नारी, तुम सयानि औ बूझनिहारी।
मेहरिहिं कहैं लोग सब देहरी धरै असन अस्थिर सोइ मेहरी॥
औ पुनि धरनि कहै सब कोई, घरहिं सँभारै धरनी सोई।
राघव जौ लाई सँग सीता, बिछुरँ जनम दुख सब बीता॥
तुम कछु चित चिंता जनि करहू, जो हम कहा सोई चित धरहू।
इतना कहि कथा गिवँ डारा, औ पुनि अग चढाएउ छारा॥
लुकअजन लै आँखिन दीन्हा, गा छिपाइ चटेक[1] जनु कीन्हा।

१—इंद्रजाल, दृष्टिबंदी का खेल।

कौंला देखि अचक रही जनु ठगलाव देखाए।
पुनि लागेँ बिरहा धका, गिरी पुहुमि मुरछाए ॥ ४७२ ॥

देखि सखी सब कीन्ह अँदोरा[1] गहि उठाइ बैठीँ ले कोरा।
सुनि कौंलावति मंदिर कूका परी अचल गगा जिय हूका[2] ॥
राजा पुनि बिसँभर होइ धावा नगी पाँव तहाँ चलि आवा।
देखि अवस्था धिय कर रोवा दूनहुँ बदन नैन जल धोवा ॥
पूछहिँ बिथा सुनावहिँ ईठा गुर गूँगा कर तीत न मीठा।
रानी पूँछि हारि जब रही कौंल बिथा तब फूलन कही ॥
प्रति उत्तर जस दूनहुँ बीता औ सुजान चेटक पुनि कीता।
आदि अंत बहु सखिन सब एक एक कीन्ह बखान।
सुनत आगि दुइँ उर परी औ आहि पारा प्रान ॥ ४७३ ॥

राजकुँअर कर सुनत बिछोहा धाह[3] मलि पुनि राजा राआ।
कौंलावति दुख दीरघ जानी, उमडि चली गगा चखु पानी ॥
सखी सहेली पुनि सब रोईँ ससि अथई जानहुँ सर काईँ।
पर आपन जन परिजन लोगा(क), सगरेँ नगर परा सुनि सोगा ॥
नर नारी जुबती औ जरा सब के सीस गाज जनु परा।
मलि मलि हाथ कहेँ सब कोई, अस परजापति[6] आन न होई ॥
पहर एक बीता होइ रोरा, कोऊ साँच कोउ झूँठ निहोरा।
छमाँ[7] कराए सब जना, पँडितन्ह ज्ञान बुझाइ।
मारे बिरह बयारि क, कौंल रही कुम्हिलाइ ॥ ४७४ ॥

जोगी खेल जो चेटक खेला छाडि मँदिल होइ चला अकेला।
आवा बार जहाँ जग रोका भीर लागि पे काहु न टोका ॥
देखि भीर जिय कोतुक होई, सब सगी पे चीन्ह न कोई।

१—शोर, चीत्कार, हल्ला, २—गूज। ३—पीर। ४—स्व इष्ट = मित्र, हितु। ५—ढाढ, चीत्कार। (क) पर आप जत पुर लोगा पाठा। ६—प्रजापति = ठाकुर। ७—शान्ति।

आदि पथ सो आगे कीता[1] (ख) यह कौतुक जनु सपना बीता ॥
बेगिहिं आइ परेवहिं मिला, सगिहि देखि कौल जनु खिला।
पथ चले तजि सागर गाऊँ, जपत चले चित्रावलि नाऊँ ॥
सूध पथ अगुवा लै आवा बेगहिं रूपनगर निअरावा।

कहिसि कि यही ठाँव तुम बैठि रहहु लै लाइ।
हौं चित्रावलि निअर होइ, चाह सुनावौं जाइ ॥ ४७५ ॥

---

(३४) कथक खंड।

जब दीन्हा सोहिल कहँ दागा[2], धुआ तस उठा गगन कहँ लागा।
सागर नगर जो अहै बसाए, धुआँ देखि चखु जल भरि आए ॥
कहहिं कि जे पकछत यहि मारा और को आहि जगत लघु तारा।
हम हैं सब सलिता लघु नीरा वह निजु सागर गहिर गभीरा ॥
देस देस सब राउ सँकाने, अहै अडड डड तिन्ह माने।
भाँटन जोरि भटन्त[4] सुनावा, गुनियन उहै गीति पुनि गावा ॥
कथक देखावहिं कथा बखानी घर घर बालक कहैं कहानी।

सोहिल गरब न थिर रहा, गरब करै जनि काउ।
निसि बासर सब देस महँ, घर घर इहै चबाउ ॥ ४७६ ॥

बीजानगर केर एक गुनी, आवा रूपनगर जस सुनी।
धन लगि घर तजि भा परदेसी, गावै कथा देखावै भेसी ॥
गावै सत सती कर जानी, हरिचँद भरा डोम घर पानी।
रामचन्द्र जिमि रावन हना, सीता आनि दीन्ह पुनि बना ॥
गावै पुनि किसुना औतारा मधुपुर जेस कसासुर मारा।

१—किया। (ख) लीता। २—खबर, समाचार। ३—दाह। ४—काव्य।

भारथ आइ काप उदगरा जिमि पाडव कारव कुल मारा ॥
नौतम[1] कथा जोरि पुनि गाई, सोहिल सागर भई लडाई ।

ऊघट घट न ताल सुर भाव देखावनिहारि ।
तीनों विद्या महँ निपुन जोग वीर सिंगार ॥ ४७७ ॥

रूपनगर चलि आवा गुनी चित्रसेनि की कीरति सुनी ।
राजा महा सुबुध गुन ज्ञानी पंडित गुनगाहक अरु दानी ॥
गुनि गन ज्ञान सुनत मुख पावा जगहिं राजदुआरहिं आवा ।
बीन बजाय सुनाइसि रागा जत कत नैन टकटकी लागा ॥
मानहुँ मृगा बैन सुनि भूले लागे बान जहाँ तहँ झूले ।
काहू जाइ नरेस जनावा गुनी एक कतहूँ तें आवा ॥
बीन बजाइ चित्त हरि लेई गावत पुनि दहुँ काह करेई ।

राजहिं सुनि उतसाह भा बोला गुनी रसाल ।
गुनी जनन कहँ निंदि नौ मूरख क उर साल ॥ ४७८ ॥

राजा निकट गुनी चलि आवा बानहिं माँह असीस बजावा ।
बढ़ै प्रताप अखंडित राजू जुग जुग रहो पुहुमि पहि साजू ॥
मनहुँ बीन रसना तें कहा आनन गुनी देखि सब रहा ।
राजै कहा कहा तुम्ह जाना आपन गुन सब करहु बखाना ॥
कहिसि प्रथम हम राग सुनावहि कथा कहहिं मेसी देखरावहिं ।
आदि अंत लहुँ नौ ओतारा और अनेक बीर सिंगारा ॥
सोहिल जूझि कथा पुनि भई अमिरित बात सुरस रस नई(क) ।

सुनवे को अमिरित कथा उठी सभा हिय चाउ ।
आज्ञा भई नरस की नौतम कथा सुनाउ ॥ ४७९ ॥

सोहिल कथा कथक परगासा गाए कठ छन्द चौरासी ।
पहिलहिं गाएसि कौल सिंगारा सुनि कै भवँर भयो ससारा ॥

१—नवीन । (क) कुरस रस भइ । पाठा ।

पुनि सोहिल कर बिरह सुनावा कटक जोरि सागर गढ़ आवा ।
यौ जस तेज बसीठन्ह कीन्हा सागर सुनि उत्तर जस दीन्हा ॥
सागर पुनि गढ़ बाजेउ आई, जस दूनहुँ दल भई लड़ाई ।
चारि मास गढ़ घेरे रहा सागर जौहर साजै चाहा ॥
जोगी एक बन्द महँ अहा अस न जान दहुँ कारन कहा ।

पेज बाँधि गहि खरग जिमि की हेसि सोहिल हानि ।
दीन्हेसि कौल बियाहि जस एक एक किहिस बखानि ॥४८०॥
गाइ कथक जब कथा सुनाई रही सभा ठगलाडू[1] खाई ।
अरथ भाव सब काहू बूझा, जेहि जस भाउ ताहि तस सूझा ॥
काहू हिए भाउ सिंगारा, काहू बीर चाउ हथियारा ।
काहू जोग सुनत रस हीए उपजी जोति ज्ञान क दीये ॥
चित्रसेन चित चेत जनावा, दीनेहुँ दान गुनी बहुरावा ।
कहिसि कि जौ घर प्रिय औतरी ता एह कथा जगत परचरी ॥
अकसमात बिधि भयो मयारा तौ मारा सोहिल बरिआरा ।

नाहिँ त का सनमुख लरत, चितवत नेकु नरेस ।
सिंघु सूखि रज होति छिति सकुचि जात पुनि सेस ॥ ४८१ ॥
का सबँरहु बैरी जग माहीँ, दुहिता सम बैरी जग नाहीँ ।
गरबि सीस जो नवत न नावा जनमत आइ सीस भुइँ लावा ॥
जाही दीन जनमी घर बारी माथे आनि चढ़ाई गारी ।
लाज नैन तजि मारग गहई ना लजाइ चढ़ि छाती रहई ॥
जौ सुबस क) राखै कुल कानी[1] तबहीँ रहै पिता मुख पानी ।
नातरु कुकरम कै अपकारी, मातु पिता मुख लावै कारी ॥
सिद्ध बचन सुनि भयो सँतोखा, अपुत न उपजै धरमी कोखा ।

१—वह लड्डू जिसके खाने से खानेवाला खिलानेवाले के वश में हो जाता है। इसे खिला कर ठग यात्रियों को ठगा करते हैं।

(क) सुबसि । पाठा । १—मर्य्यादा ।

तजहु पुरुष परतिय रवन , सुपूरुष बाचासार ।
तुम घर रच्छा सो करै , जो जग राखनिहार ॥ ४८२ ॥

राजैं मन महँ कहा बिचारी हमहूँ घर सँजोग पुनि बारी ।
पुहुमी दुद न एकै बाजा एक ते एक कीन्ह बड राजा ॥
मकु कोइ सुनि हठि मागै आई तब न मरन बिनु आन उपाई ।
अबहीं खोजौं कोऊ कुलीना , जेहि तें आगिल परै नहि हीना ॥
यह मन गुनि उठि मँदिर सिधारा झलमल दुति माथा मनिआरा ।
चित न ठाउँ मन धूमिल जानी पूँछि नीअर हाइ हीरा रानी ॥
तुम पुहुमीपति चहुँदिसि नाऊँ , कारन कौन जो चित्त न ठाऊँ ।
राजैं सरब कथा कही सोहिल सागर जूझि ।
ओ पुनि उपजी चेत कछु हिए परा जनु बूझि ॥ ४८३ ॥

रानी कहा सुनहु नरनाहाँ मोहिं पुनि खरक[4] उठी जिय माहाँ ।
चित्रावलि सयोग सयानी कीजै सोई रहै कुल पानी ॥
खोजिअ कतहूँ एहि लगि जोरा , जेहि दीपक कुल होइ अँजोरा ।
यहि पुहमा बहु राजा राना बिप्र पठाइय जहँ मन माना ॥
कोउ कुलीन क्षत्री सहसी का सुँदर देखि चला बहु टीका[6] ।
यहि जग जियन भरोसा नाहीं आन क तान होइ पल माहीं ॥
भागवत जग सोई कहाई सतति तीर घाट जिन लाई ।
सतति बिलँब न कीजिए , जियन भरोसा काहि ।
थोरा बहुता लाइ कें दुहिता देहु बिआहि ॥ ४८४ ॥

राय कहा यह सोइ बिसाहा , फिरै न फेरे घट औ लाहा ।
जो पहिलेहिं न बिसाह बिचारी तेहि हँसि लोग बजावैं तारी ॥
दिन दस और न चरचा करहू , यह बिचार अपने चित धरहू ।
राज लागि मोहिं आगम सूझा निअरे आपन बैरी बूझा ॥

१—भविष्य । २—युद्ध = संग्राम । ३—बुद्धि । ४—चिन्ता ।
५—साहसी । ६—तिलक ।

दुर जानि एह पुहुमी केरे, पठयौं चारहुँ ओर चितेरे।
राजा राजकुँअर जहँ पावहिं चित्र उरेहि आनि देखरावहिं॥
ते दिन दस महँ आवनिहारा, चित्र देखि तब करब बिचारा।

पूँछब सब एक एक कै जाति पाँति बेवहार।
सामुन्द्रिक मत हेरि कै लच्छन करब बिचार॥ ४८५॥

महा गरथ सोइ जग माहीं सामुन्द्रिक सब जानहिं नाहीं।
जेरे पढा ते लक्खन जाना चित्र देखि सब कीन्ह बखाना॥
जाति पाँति गुन औगुन बूझा, जैसे मुकुर माहँ मुख सूझा।
पुहमीपति दुइ रतन बटोरा सामुन्द्रिक औ रँगधर[२] जोरा॥
यह दुहुँ मता जो मुकुर समाना गुन औगुन पुहुमा कर जाना।
पहिलहिं चित्र हाथ जो कीन्हा, नौसाईं इस कदर चीन्हा॥
बाउर लोग चतुर सें करहीं सिरजनिहार नाउँ तेहि धरहीं।

जौ लहु गुरु जग बिधि करै सब कर कीन्ह बखान।
मानुष औंधी खोपरी बूझै आन की आन॥ ४८६॥

कै बिचार हीरा उठि आई, चित्रावलि के मँदिल सिधाई।
देखि साज चित्रावलि केरा रानी उलटि सखिन्ह मुख हेरा॥
तुम सब मिलि एह काह सिखाई, केहि कारन अस मैलि रहाई।
आजु मोहिं ढँग नीक न लागा एहि कर चित देखौं बैरागा[३]॥
सखिन्ह देखि रानी कहँ रूखी जो जैसहिं तैसहिं सो सूखी।
चित्रावलि तब कहा बुझाई, हम चित बढी आजु लरिकाई॥
गयो हसन खेलन सुख भोगा, ताहि सँवरि जिअ मानौं सोगा।

कहाँ सरोवर कहँ कुसुम कहँ चितसारी रग।
सँवरि मरोहा[४] हिय उठै होइ सकल सुख भग॥ ४८७॥

१—लक्षण। २—चितेरा। ३—विराग युक्त। विरही। ४—मसोस।

(३५) परेवा-बंधन खंड ।

चेरी एक अहिन जा आही ते छिपाइ हीरा सों कही ।
एक दिन देखत अहउँ छिपानी चित्रावलि निकसी कुम्हिलानी ॥
राइ परेवा सों कछु कहा पाती दीन्ह पावँ पुन गहा ।
गयो परेवा लै कहुँ चीठी तहि दिन सों पुनि परा न डीठी ।
पेम बाउ[1] जो बाउर[2] करही, सेवक पाय[3] तबहि पति धरही ।
देखा अहा कहा मैं साई अब तुम करहु जा करन हाई ॥
सुनि कै हीरा हिएँ सँकानी धसकि गयो हिय अजुगुति[4] जानी ।

केहि अधरम केहि पाप बिधि हस कीन्हि भा काग ।
अपने जान न बिलतुरेउँ[5] चित्र परेउ कहँ दाग ॥ ४८८ ॥

पुनि मन कहु गियान उपराजा जाँघ उघारेँ मरिय लाजा ।
अधिक उदगरी[6] काठा झूरी राखौं आगि मेलि सिर धूरी ॥
बाट बाट सब लाई भूता रोकहिँ राह परेवा दूता ।
आवइ कहुँ पूछे बिनु नाहीँ आनि बाँधि राखहु बँद माहीँ ॥
जो जह तहाँ राकि मगु रहा आवन पथ परेवा गहा ।
बाँधि आनिकै बँद महँ राखा, अचक रहा कहु आव न भाखा ॥
मन महँ कहिसि रहा पछतावा कुअँर क आवन कहन न पावा ।

वह पुनि रहिहै रात दिन मारग लाएँ आँखि ।
वह परदेसी बापुरा मरिहि अकेला भाँखि ॥ ४८९ ॥

रहा सुजान नैन मगु लाई का दहुँ कहे परेवा आई ।
सो पुनि अहा काह करइ, कौन भाँति दरसन पुनि देई ॥
सगर दिवस यहि सोच गँवावा साँझ परी न परेवा आवा ।
ज्यों ज्यों छिन छिन रैनि बिहाई, त्यों त्यों बिरह आगि अधिकाई ॥

१—वायु । २—उन्मत्त । ३—पैर । ४—अयुक्ति ।
५—अलग किया । ६—प्रज्वलित । ७—रोकर ।

लोयन दोऊ रहँ मगु लागे आहट कहँ सरवन पुनि जागे।
सकल रैनि पुनि ऐसेहिँ बीती जानु कँवल जिय भानु कि पीती[1] ॥
दिनकर उठत उठै हिय आगी बिरह बयारि सरग गै लागी।

कहिसि कि प्रीतम हिया सर सूखि गयो जल नेह।
फाट न हिया तडाक जेउँ हस चलेउ तजि देह ॥ ४९० ॥

जौ वै मो सौं निज मुख फेरा ता काया परान केहि केरा।
जीउ लेइ जो जम बरिआरा दुऊ प्रान यह दुख अपारा ॥
जौ अब मरौं होइ अपघाती जगत नसाइ जनम औ जाती।
मैं बिरही मोहिं नाँच नचावा अत सो यह कौतुक देखरावा ॥
अब नाचौं किन परगट होई ओहि क पंथ ले मारौ कोई।
निसरा कुँअर डारि सिर छारा चित्रावलि चितरवलि पुकारा ॥
काऊ आहि अस पर उपकारी आनि देखावै राजकुँआरी।

खनक देखाउ सरूप मुख लिहिसि चोर जिय मार।
यह राजा हत्यार बड घर महँ राखै चोर ॥ ४९१ ॥

सुनि कै लोग अचभौ रहा जोई सुना सोई मुख गहा।
बिरह उसास अगिन कर ज्वाला लागत परै हाथ महँ छाला(क) ॥
दूरहिँ हटकि रहैँ सब कोई कोउ मुख मूँदै नियर होई।
होइ गा सगर नगर चबावा, रूपनगर एक बाउर आवा ॥
कहै सोई जा कहा न जाई, मरै लागि एह बुद्धि उपाई।
राजसभा सब काहू सुना सुनतहि चित्रसेन सिर धुना ॥
बदन सुखान अग दुति छाडी लाजन सीस पुहुमि गा गाड़ी।

कहिसि कि जाकहँ जिय डरत, सँवरि सुहात न राज।
सोई आनि हम सिर परी अचक कहूँ हुत गाज ॥ ४९२ ॥

१—प्रीति। (क) कर लाला—पाठा।

(३६) दलगजन खंड ।

पुनि सँभारि कै बैसेउ राजा कहिसि कि भल नाहीँ यह काजा।
किन भिखारि घर कीन्ह अगासा, जिन अस बचन असुभ परगासा॥
काढि जीभि जिय मारहु सोई जो अस सुनै कहे नहिँ कोई।
राजनीति एक मंत्री अहा तिन उठि सीस नाइ के कहा॥
यहि ससार बेद अनुमाना बाउर बचन न कोऊ माना।
जाकर बचन नाहिँ परतीता ताके मारे होइ अनीता॥
लाज लाग जो मारै कोई अस मारेँ भल कहै न कोई।

गहि जो भीखारी मारई दुइ घट यहि जग होइ।
एक हत्या काँधे चढै पुनि भल कहै न कोइ॥ ४९३ ॥

यह चरचा पुनि मंदिर भई रानी सुनत सूखि जिय गई।
कहिसि कि मुई न पैसन बारी, जे अपने कुल लाइसि गारी॥
अपने जानि बिसारेउँ नाहीँ, पौन न पाउ छुवै परछाहीँ।
एहि क रूप कहँ काहु न देखा मिटी न सीस करम की रेखा॥
मकु यह भेद परेवा जाना पूछहुँ बालि कहै अनुमाना।
बहुरि कहिसि यह पावक जरई ज्यों ज्यों खुदी त्यों उदगरई॥
बाहर नगर परा जन कूका, कहुँ घर लागि जाइ जनि लूका।

तब कछु हाथ न आवई होइ आन की आन।
ततेँ बरज सकल जन, परै न चित्रिनि कान॥ ४९४ ॥

राजै मते महाउत लावा पान दीन्ह औ कहि समुझावा।
जहाँ कहूँ वह बाउर होई अस जस दूसर जान न कोई॥
अपसर गज दलगजन नाऊ छलि मकुलाइ[1] देहि तेहि ठाऊँ।
मकु गज धाइ हनै सो जोगी, बिनु औषद जिय होइ निरोगी॥
लै सो पान महाउत आवा, मूरी दइ गज अतिहि मतावा।

१—खोल क।

खोलि गयद मोहि दिसु चला, कोऊ न जान गुपुत की कला ॥
जहँ बाउर सिर डारत छारा उतरि महाउत भयो निनारा।
छूटि चला मैमत गज चहुँ दिसि परी पुकार।
जग लै भाजो जीउ सब छूटा जम बरिआर ॥ ४९५ ॥

भा अँदोर मेगल[1] मकुलाना, सुनि चारिहुँ दिस परा बखाना।
देखि देखि लोग हीय सब कूटा भा अजुगुत दलगजन छूटा ॥
एहि सों जिअत बँचा जो आजू, ताकर नवा जनम कर साजू।
आपु आपु कहँ परजा राजा, जहँइ सुना सो जिउ लै भाजा ॥
पूनहिँ बाप सँभारै नाहीं, कुटुँब लोग केहि लेखें माहीं।
जेहि सँग अहा कटक हय हाथी अकसर जाइ न कोऊ साथी ॥
जाकर अंग न छुअत समारा गहै आनि अनचीन्ह सरीरा ॥
जेहि तन लागै रैनि दिन चोआ चन्दनसार।
तिन्ह तन बन महँ सग बिनु निभरम लागै छार ॥ ४९६ ॥

चले छाडि बनियाँ बेपारी, रही जहाँ तहँ हाट पसारी।
छाडि चले जत मदिर लोना जहवाँ लाग रूप औ सोना ॥
छाडि तिया जासों रँग कीन्हा, चले जाहिँ जानहुँ अनचीन्हा।
छाडहिँ अन धन घर घरसारा छाडहिँ दरब झूठ ससारा ॥
छाडहिँ अगर कुमुकुमा चोवा, छाडहिँ रतन जो माल परोवा।
छाडहिँ कस्तूरी घनसारा, अत आइ तन लागी छारा ॥
सगरे जनम सौंति[2] दुख पावा, छिन एक महँ सब भयउ परवा।
यहि बिचार कै मान कबि महा पुरुष जग माहिँ।
तासों जीउ न लवहीं, अत जो साथी नाहीं ॥ ४९७ ॥

कुँअर देखि हस्ती मतवारा, मरन जानि जिय कीन्ह बिचारा।
जा कह अत मरन जिय माहीं, मीचु देखि सो भागै नाहीं ॥

१—पागल = मदमत्त। २—एकट्ठा करके।

मोहिं एहि मारग निजु जो मरना भागि रहौं ले का की सरना ।
बिनु साहस जो तजउँ सरीरा काउ न कहे यह छत्री बीरा ॥
बाजौं आजु भीम की नाईं मारौं जो जय देइ गोसाईं ।
मरौं तौ लोग कहे यहि देसा छत्री अहा जोगि के भसा ॥
पुनि चित्रावलि सुनु यह बाता जूझि मुवा जोगी रँगराता ।
बाँधि काछ दृढ होइ रहा मन महँ मरन बिचारि ।
जेहि जिय डाँडा पेम कर सब जग जीतनि हार ॥ ४९८ ॥

आवत हस्ति चुवत मदगंधा तारत तरुवर धावत कंधा ।
गज बाजी कहँ परलै[1] कापा अगद पाँव पुहुमि जस रोपा ॥
कुँअरहिं दीख धाइ अस परा बीर पँवार न पाछ टरा ।
कथा डारि गयद चुकावा आपु सजग होइ पाछूँ आवा ।
गहि के पूँछि गयद घुमाइसि यही भाँति धरी एक लाइसि ॥
जनु उकई गहि डोर फिराई पुहुमि परा गज तोंवरि खाइ(क) ।
मस्तक आइ मूँक तब मारा सीस फोरि गजमाति निकारा ॥
पुहुमी परा गयद ढहि जानहु परा पहार ।
देखि अचंभित जग भवा चहुँदिस परी पुकार ॥ ४९९ ॥

कहे लोग यह का बरिआरा, जिन गयद दलगंजन मारा ।
वह राजा कर हस्ती सोई, जेहि ते बली आन नहिं होई ॥
यह जोगी भल कीन्ह न काजा परल करहि आजु सुनि राजा ।
राज दुआर भई पुकारा जोगि बली दलगंजन मारा ॥
एहि जोगी कहँ सिव परसना, नाहिं तौ अस परबल को हना ।
मानुष अस बल करै न पारा निज यह पुहुमि भीम ओतारा ॥
औरौ हस्ति सँभारहु नाहीं, मति कहँ भटकी सिर कहँ जाहीं ।
सुनि कै राजा थकि रहा, रुहिर सुखि गा गात ।
हिएँ थरथरी पेट डर मुख नहिं आवै बात ॥ ५०० ॥

१—प्रलय । (क) आइ, पाठा । पावरी = पैर । २—विस्मित ।

(३७) सुजान-बधन खंड ।

पुनि सँभारि के बोला राजा साजहु बेगि जूझि कर साजा ।
हनुमत जस लंका हुत आवा तस छलि कै यहि काहु पठावा ॥
काहू केर पठावन होई जिअत न जाइ करहु अब सोई ।
बाजन बार जूझि कर बाजा, जानहुँ सरग मेघ दल गाजा ॥
साजे हस्ती सिंघलदीपी चीता[1] माथ छोट जनु छीपी ।
साजे तुरे समुँद[2] जलगाहा[3] पखरे राउत पहिरि सिनाहा ॥
राजा सपरि भयो असवारा चले बीर चढि तुरी तुखारा[4] ।

बाजे बाजन जूझि क धुका[5] दमामा भेरि ।
छेंका जोगी कटक लै, मंडल चहुँ दिस फेरि ॥ ५०१ ॥

जूझि साज जौ कुअँरहि सूझा कै बिचार अपने मन बूझा ।
जाकर दोस करे जो कोई, का बसाइ जा मारै सोई ॥
मोहिं नहिं इहाँ जूझि सों काजा मारौं ल पुहमीपति राजा ।
एह गुन बैस्यो आसन मारी जैसे निरगुन जागि भिखारी ॥
सीस नाइ पुहमी तिन हरा, कटक आउ सब करत करेरा ।
मंत्री राज बाग तब गही, सीस नाइ के बिनती कही ॥
जूझि केर जग अस बेवहारा मारिय सोइ जो गहै हथिआरा ।

जोगी बाँधिय जिअत गहि मारि न करी अनीत ।
पूँछि भेद पुनि लीजिए, को बैरी का मीत ॥ ५०२ ॥

घेरत घेरत आए राँधा[6], पाँच जने मिलि जोगी बाँधा ।
अस कै ढील दीन्ह दुइ बाहीं, जानहुँ एक रती बल नाहीं ॥
राजा सनमुख जोगी आना, देखि रूप सब कटक भुलाना ।
पूछै को हसि कहँ तेँ आवा केहि कारन केहि केर पठावा ॥

१—रंगा, छापा । २—घोड़ा । ३—दरियाइ । ४—खत = उज्ज्वल घोड़ा ।
५—बजा । ६—समीप ।

कुँअर न बोल मौन मुख गहा, सीस नवाइ औधि चखु रहा।
एहि अंतर एक चतुर चितेरा, सागर नगर कीन्ह ज फेरा॥
कुँअर चित्र लिखि अति मतिमाना, सोहिल जूझि भद पुनि जाना।

आइ पहूँचा राज ढिग देखि नवाइसि माथ।
लीन्हे चित्र अनेक ज देस देस क नाथ॥ ५०३॥

वै कुँअरहिँ देखा पहिचाना कहिसि कि यह जस कुँअर सुजाना।
वह उहवाँ पुहमीपति भारी राज छाडि कत हान भिखारी॥
पुनि वह अस कुकरम कत करई जहि कोइ बाधि चार के धरई।
चित्र काढि जो पटतर[1] देखा सोई कुँअर सुजान सरेखा॥
कहिसि कि यह पुहुमापति राजा, पुहुमा रहा सदा ओहि साजा।
यह पवाँर छत्री बरिआरा यही हाँकि रन सोहिल मारा॥
यह पुहुमा पति देस क राजा अचरज माहिँ देखि यह साजा।

कुँअर चित्र लै कर दिहिसि, कहिसि कि अचरज होय।
बाँधा सिंह सिआर ज्यों का कौतुक विधि कीय॥ ५०४॥
इहाँ नरेस जूझि कहँ आवा, रानी उहाँ अँदेर बढावा।
जे मारा दलगजन सोई, तेहि के जूझि आजु कस हाई॥
हिए सोच करि हीरा रानी पूँछा बोलि पर वा ज्ञानी।
वह पंडित औ चतुर परेवा आमग[2] न चल जानि पति सेवा॥
जिन मारा दलगजन हाथी, मकु वह होइ परवा साथी।
खोलि मँगावा सीध परेवा, आइ देखाइसि कन्तहिँ सेवा।
होइ अकसर लै मत बईठी, कहिसि कहाँ ले गवनेहु चीठी॥

बिनु पूछे किछु ना कहै, तैं पंडित सहदेव।
को जन यह हस्ती हना, कछु जानसि यह भेव॥ ५०५॥
कहिसि कि सदा सोहागिनि रानी, तुम सयान पंडित औ ज्ञानी।
मैं यह सुफल सुआ सो खोजा, चीन्हहु होइ सो राजा भोजा॥

१—सामने। २—कुराह, कुमार्ग।

जाकहँ भोर सदा सिर नाई चहै मारि तो कहा बसाई।
कथा कहत लागिहि बडि बारा उहाँ न होइ जाइ सवारा॥
थोर कहौं जौ बिलँब न हाई सोहिल जिन मारा वह सोई।
धरनीधर नेपाल भुआरा एह सुबस ग्रो बीर पवाँरा॥
चित्र माहँ चित्रावलि जानी भा जोगी सुनि रूप कहानी।

एहि सो रतन जहि कीजिय कुन्दन घालि जराउ।
जलि गहि डारहु समुँद महँ नतु रहिहे पछताउ॥ ०६॥

रानी कहा वेगि चलि जाहू लगै न पाउ मयकहि राहू।
जाइ जनाउ नरेस रिसाना जौ लहुँ छुटै पाव नहिं बाना॥
दसरथ धोखे सरवन मारा, पाइ सराप भयो हत्यारा।
अज्ञा मिली परेवा धावा निमखि माह राजा पहँ आवा॥
देखिसि राजहिं रिसि मन माहीं हाथ चित्र चित चिन्ता माहीं।
औ पुनि कुँअर आपि कै आना कीन्हा जल चखु जानि सुजाना॥
आइ नवाइस पति कहँ माथा कहिसि ह पुहमीपति नाथा।

एह सोइ जिन बैरी हना सोहिल अस बारि आर।
जबूदीप नरस सोइ निरमल जाति पँवार॥५०७॥

एह जस बिक्रम राजा भोजा, मैं चित्रावलि कहँ बर खोजा।
चित्रावलि कर रूप सुनाई, कै जोगी आनेउँ बौराई॥
मै राजा सों कहै न पावा बीचहिं बैरी मोहिं बँधावा।
तौ एह कौतुक सब बिधि कीन्हा रतन खेह महँ काहु न चीन्हा॥
राजा हिय सुनि कुँअर बखाना तजि चिता चित रहस समाना॥
जो जहँ चित्र मूँदि वै राखी तब भा आनि परेवा साखी।
एह पडित औ बिधि सो डरई, पडित काज बूझि कै करई॥

छोर बन्धन दुख के, महाबीर पहिचानि।
राजा उतरि तुखार सौं अक मिलायो आनि॥ ५०८॥

ततखन तहाँ कुँअर अन्हवावा राज साज सब आनि पन्हावा ।
औ पुनि लीन्ह चढ़ाइ अँबारी दूलह जानि बरात सँवारी ॥
रहसत चला तुरै चढ़ि राजा बाजत अनँद बधावा बाजा ।
एके बाजन जहि जग जाना आपन आन जात भा आना ॥
गहगह बाजन बाजत आवा नगर लोग सब दरस धावा ।
जिन देखा तिन धाल धाल कहा रूप निहारि चित्र होइ रहा ॥
धनि सो चित्र धनि सोई चितेरा कहहिँ जोर चित्रावलि केरा ।

निकसा हाट मँझार होइ चहुँदिसि रहस अनन्द ।
देखै आईँ उतरि जनु सूर तराईँ चन्द ॥ ०९ ॥

चढ़ि अँटारि देखाहँ रनिवासा जनु ससि नखत सरग परगासा ।
देखि कुँअर मुख हीरा रानी हिए अनन्द अधर बिहसानी ॥
कहिसि कि जानु आहि यह साई जहिक चित्र चितसारी जोई ।
पुनि तिन्ह साथिन्ह आनि देखावा ज अपने कर चित्र नसावा ॥
जिन देखा तिन मुख अनुसारा यह साई गन्धरब आनारा ।
जब तें हम वह चित्र नसाई नन हिए जानहुँ लिखि लाई ॥
धनि यह दिन धनि घरी सरखा हिया इछ इन्ह नैनन्ह देखा ।

मान न मन्त निसारहिँ सिँह पुरुष मुख नन ।
जो मूरति हिअरे बसी सो निनु देखी नन ॥ १० ॥

रानिहिँ यह सुनि भया अनन्दा सीस पुहमि धरि बिधना बन्दा ।
जिन्ह काहू यह भेद न जाना सो बिधि कौतुक देखि भुलाना ॥
कहै कि यह कस बरी होई आदर चाह कर सब कोई ।
सखी एक चित्रावलि करी चढ़ि मदिर पुनि देखिसि हरी ॥
कौतुक लखि चित कीन्ह हुलासा, गई धाइ चित्रावलि पासा ।
कहिसि कि ऐ कुल मनि मनिआरी, तोरी जाति पुहुमि उजिआरी ॥
फिरेउ जीति सग्राम भुआरा, गहि आना बेरी बरिआरा ।

देखौं सोइ हस्ता चढा नहिँ जानौ केहि काज।
पुहुमी आव इंद्र जनु, तजि इंद्रासन राज ॥ ५११ ॥

मेहरिन्ह महँ पुनि चरचा हाई, चित्र जा मटा जनु यह साई।
सुनतहि चित्र चाउ चित बाढा हाइ व्याकुल पोराहर ठाढी ॥
देखत मुख सुधि बुधि सब हरी होय अचेत पुहुमी खसि परी।
सखी सो हाथन हाथ उतारी सेज सुवाइ ओढाइन्ह सारी ॥
डरहिँ कहेँ बिधि का भा आई भीर माँह काहू डिठि लाई।
सुनौ पाउ जनि राजा रानी हम जिय करहिँ घरी महँ हानी ॥
ततखन मँदिर परेवा आवा सखियन्ह कहँ सब भेद सुनावा।

कहिसि कि ऐ पति कलप जुग हम माथ तुम छाँह।
अब किमि जरिए धूप दुख छत्र आउ घर माँह ॥ ५१२ ॥

सुनत बैन चित्रावलि जागी देखि परेवा के पाँ लागी।
कहिसि कि ऐ हीरामन[1] सूआ रतन लागि कस कौतुक हूआ ॥
केसे जाइ भोराएहु[2] साईँ, कैसे आनेहु इहवाँ ताईँ।
का कहि चित्रसेन समुझावा काहि लागि मदिर ले आवा ॥
बेसि परवा प्रेम कहानी आदि अंत लौं कहिसि बखानी।
चित्रावलि चित भयो सँतोषा, गा सो सोच अहा जो धोखा ॥
बर बिआह सुनि मनहिँ लजानी, घूँघुट ओट दिये मुसुकानी।

कहिसि परेवा सुमति तैँ पूरन सेवा कीय।
जा चित भावै सोइ करु, मैँ तुअ अज्ञा दीय ॥ ५१३ ॥

१—दग्धा पद्मावति हीरामन सुआ राजा रत्नसेन को पद्मावती के लिए चितौर से सिंहलद्वीप ले गया और वहां उसे पद्मावती से मिलाया। २—भुलवाया वशीभूत किया।

(३८) चित्रावली विवाह खण्ड ।

मँदिर आनि ले कुँअर उतारा ल कलधौत पाट बैसारा ।
बैठेउ कुँअर सिंह आसना कह नर अहै पाकसासना ॥
वह मघवा[१] परतच्छ देखावा तजि सुरभौन छार कहँ आवा ।
जा देखै सो रहै लुभाई अति लालच घर आइ न जाई ॥
चित्रसेन औ हीरा रानी तीसर चालि परवा ज्ञानी ।
राज नीति मंत्री हकरावा आदि अंत लहुँ भेद सुनावा ॥
एकमत होइ के कीन्ह बिचारा बिलँब न करिय धरम बवहारा ॥

ततखन आये जानषी रास बरग गति देखि ।
बदि बैसाखी पचमी मीन लगन सुभ देखि ॥ ५१४ ॥

मीन लगन ससि बार सरेखा नवएँ दिष्टि बृहस्पति देखा ।
महागनक पंडित गन भले थापि बिआह लगन ल चले ॥
आखत दूब भरो चकमका रूप क थार सोन कर ढका ।
महता राय सो बिनती कीन्हा मारी सम्पति तुम्हरी दीन्हा ॥
पै बिधि दीन्ह न सतति बाँटा जहि निसरै मारे हिअ काँटा ।
आज्ञा देहु तो हिया सुधारौं कुँअरहि ल बरिआत सँवारौं ॥
सुनि के हरषे राजा रानी धरम बात हमहूँ मन मानी ।

जब ते दुहिता ऊपनी सतत हिये उतपात ।
निकसै काँटा तबहिँ जब आँगन आउ बरात ॥ ५१५ ॥

राजनीति रहसत घर आवा, कुटुम लोग कहँ भेद सुनावा ।
सुनि कै रहसे सब नर नारी अनँद बधावा बाजहिँ बारी ॥
नेगिन्ह दीन्ह भँडार कि कूँजी धोख न लाउ लगावत पूँजी ।
आपन जानि दरब मैं जोरा, अब जो निसरै सोई मारा ॥
अबहीं लेहु बेसाहु सो जाई, जेहि बिनु तेहि दिन मुँह न गोआई ।

१—पाकाशासन = इन्द्र । २—इन्द्र ।

नियरेहि आहि सो दिन हम आगे काज सवाँरहु सब जिउ त्यागे ॥
पुहुमीपति घर जाइ बखानी सोई करब रहै मुख पानी ।
सजि काज पुनि नेवत ले, चहुँ दिस पठए बारि ।
ततखन पहुँचे आइ सब लोग कुटुँब सब झारि ॥ ५१६ ॥
सोधि सुघरी महूरति पला साजि बराति महत लै चला ।
चढि चडोल कुँअर अभिलाखा माथे मुकुट जराउ क राखा ॥
चमकहिं चुआ कुंदन रली झूलहिं झालर मुकुताहली ।
पुनि नैनन महँ काजर कीन्हा दिष्टिनेवार चौखडा[1] दीन्हा ॥
हार हमेल फूल पहिराए, आ मुख पान कपूर खवाए ।
ढारहिं चौर चार जन लोने कनक खभ मानहुँ चहुँ कोने ॥
चढा तुरग चपल एक सरा चावा चन्दन कुमुकुम भरा ।
ढका दमामा कान्हरा सहनाइ आ भर ।
पुहुमा रहइ अकूत हाइ सात कोस क फर ॥ ५१७ ॥
यह कौतुक क रूप पराज कागद पान लाह फर साज ।
सुभग डारि फर फूल बनाई ठावँ ठावँ पछा बैसाई ॥
देखत तन बसक कछु नाहा, जनु सजीव पछी भरकाहीं ।
अरुन बसन मधि नाव बनायें, सुदर बीरन थान चढायें ॥
बाट जात पुनि कहें बटाऊ, सूखें चली दान की नाऊ ।
सरस कठ सब गावत चलीं चन्दन बदन सग घर अलीं ॥
कथक कलावत गावत चले भाट पढहि गरजहि घन कले ।
फूल साझि सुभग समो गगन बरन पुनि रात ।
चित्रसेन के बार लहि पहुँची आनि बरात ॥ ५१८ ॥
कनक कलस जल भरि दुइ जनीं आईं जानु अपछरा बनीं ।
नैन मीन मुख दधि सब सारा कुँअरहि सबहिं सगुन बैसारा ॥

१—काला बिंदु जो बच्चा के शिर में इस लिए लिया लगाती है कि उन्हें नजर न लगे । २—सं ढक्का = डंका ।

पुनि आदर कहँ आये लोगा आइ कुटुम्ब जो आदर जोगा ।
गारी दै दै गावहिं चेरी जाहिं लजाइ कुअर मुख हेरी ॥
राजनीति पुनि अपनी बारी समधी नाईं पाइ गारी ।
ससुर का राति अहे सो लेहीं सहस लगे न्योछावरि देहीं ॥
पुनि जस नेग अहा जहि केरा राजनीति दै सब [illegible] ।

पुन अगुवानहिं ले चल्यो जहँ साजा जनवाँस ।
नियरहिं अगुआ बाहिरँ जानहुँ कास पचास ॥ १९ ॥

जनवाँसे कहँ चली बराता बाजन बाज उठेउ अघाता ।
सहस चारि एक दीपक बारे निभरम चले पथ उजिआरे ॥
हिया अंध कहँ जग अँधियारा सो ससि सूर न करै उजारा ।
जोई रँग दै तेल मरावा सोइ बरन जाति दरसावा ॥
जौलहुँ तेल खरी[1] सँग होई तालहुँ देइ लेउ रँग कोई ।
तेल खरी जो भई निनारी[2] रंग न चढ़ न बास बसारी ॥
बरबस कोऊ जो रंग चढ़ावै बास करै न काम न आवै ।

मान तेल मन तन तिली जौ लहुँ नहिं बिगराइ ।
तालहुँ गुरुमुख फूल लै लेहु सो बास बसाइ ॥ ७ ॥

अगिनचक्र[3] बहु कीन्हे फेरा पूरन सबै जनु बिरहिन केरा ।
अतिहि रहस तहँ चली हवाई रतन पदारथ डारत जाई ।
ठावँ ठावँ भुइँ चंपा[4] गाडा नत मुख जनु बसन्त [illegible] ठाडा ॥
छाडत सेत अरुन अति जूही नरम फूल बसन्त फूली ।
चन्द जोति कीन्हा उजिआरा उया जानु दिनकर [illegible] ॥
फूली माहताब[5] बहु साखा चारिहुँ दिसि बसन्त कै राखा ।
फूटहिं लैकी [illegible] भरी चारहुँ ओर [illegible] फुलझरी[6] ॥

१—खली । २—अलग । ३—एक तमाशा = चरखा । ४—एक तमाशा । ५—एक तमाशा । ६—आग । ७—एक तमाशा । ८—एक तमाशा । दुपहरिआ । ९—एक तमाशा । महताब । १ —एक तमाशा ।

झरी अगिन भुइचक[1] हुते नील बरन सुख मूल।
फूलि रह जनु पुहुमि एहँ चहुँ दिसि तीसी फूल ॥ ५२१ ॥

जनवासेँ बरात बैसारा, मंदिर माहँ रसोईँ सारी।
चौका दै आँगन भरि बेदी लीपा चन्दन कुमकुम मेदी॥
सात रूप के थार बनाए दोना पतरी बारी लाए।
जूड़ेँ जल जहि लाग पिआसा मलि कपूर कुमकुमा बासा॥
औ जन सोध जगत महँ आए सब पकवान साथ लगवाए (क)।
झारी गडुआ लेग सँभारी लै जल पहिले पावँ पखारी।
बैसि गए सब पातिन्ह पाँती, साथ साथ सब अपने जाती॥

पहिले डारी पातरीँ तौ पुनि राखे थार।
लग परासन सहस जन भाँति भाति परकार॥ ५२५ ॥

गोहूँ प्रथम दूध सौं बोए खीरि खाँड मिलि माँडा पोए।
चउर अति सुगन्ध महँकाए कालन माहँ भौर अकुलाए॥
मूग चना कै बहु परकारा लेत न बनै नाउँ बिस्तारा।
डुहुका छामा औ खँडबरा अमिरितबरी फुलौरा बरा॥
दूध जमाइ दहँडी आनी भाजन छूट न तबउ नसानी।
लपसी कर का कहौं मिठाई मुख न फेर जा मन भरि खाई॥
अमरस अनबन भाँति अँचारा कहत न बनै जेत परकारा।

लोन समासा माठ मधु, खीर खाँड बहुताइ।
जा सवाद नहिँ जानई पहिलेहिँ खाना खाइ॥ ५५३ ॥

बाँटि सगौती बहु फर साजे, पान फूल तेहि सग बिराजे।
खात सवाद सोई पहिचानी मानहुँ चीरि डार हुत आनी॥
औ बिपरीत स्वाद बहुताई आब माहँ कटहर कि मिठाई।
नेबू जात दाख जनु खारीँ, खात खजूर बदाम चबाहीँ॥

१—एक तमाशा। २—एक ग्रह जाति जो पत्तल बनाते हैं और खाने पर जूठा पत्तल उठाते हैं। (क) पुनि जेवन कह पाहुन आए। पागा तजि धोती पहिरावे—पठा।

पुनि सवाद मिसरित बहु कीन्ह खात सो जानहिं जाहिं नहि चीन्हे।
कोऊ एक मुख मलि जा खाहीं घरी एक दुइ समुझत जाहीं ॥
सुनि कै फिरि जेवनार उसारी पतरी झूठ समट बारी।
अरुन कौंल नीलोतपल फूलि रह सब बार।
बदनवारन तें निकसि भार कन्हि गु जार ॥ २४ ॥

भरि भरि थार मिठाई आनी भाँति भाँति आव अन पानी।
लड्डुआ कर का करौं बखाना, हाथ खाँड मुह महँ खँडवाना ॥
खाजा[1] कैसेहुँ खाइ न जाइ सास पान सों उडि उडि जाई।
फेनि[2] पातरि मुँह न समाई टाक देा एक जोखँह लुआई ॥
सीँक समान जिलेबी काढी रस रस भीजि अधिक रस बाढी।
एहि मिठास जलि भूलहु लोई पी मधु एक ठाँव बिष होई ॥
तौ लहुँ माठ जौ लाँघ न घाटी पाटी उतरि हाइ पुनि(क) माटी।
मान न जाती आन बिनु खीर खाड तन पोख।
नहिँ जानौ परलोक तुअ होइहै केहि बिधि मोख ॥ ५२५ ॥

अँचे उठे खरिका कर लिन्हे हाथ धोआइ पान पुनि दीन्हे।
चित्रसेन बागा मँगवाये बड औ छाट सब पहिराये ॥
चोवा चन्दन कुमकुम लावा इद्रहिँ देखि चाउ हिय आवा।
नृप कर जोरे बिनती करई फिरि फिरि महन पाउँ ल परई ॥
तुम सब आपनि जानि बडाई मों अोगुन सब लेब छिपाई।
जेँइ भोज जनवाँस सिधाए चित्रसेन तब बिप्र पठाए ॥
बहु आदर कै कुँअर बुलावा, आनि सो माँडो तर बसावा।
माँडो देखत ही बनै रसना कहा न जाय।
कै जो ब्याहा जान सो कै जो बरातहिँ जाइ ॥ ५२६ ॥

१—एक मिठाइ। २—एक मिठाइ। (क) सब—पाठा।
३—मि विप्र स कवल भुक्त्वे य पचयामकारणात।

अतिहिँ अपूरब माँडा छावा जरकसि पाट पटंबर लावा।
कनक खंभ जनु बीच सुमेरा चौंरी दिष्टि ताहि जो हेरा॥
ओंब पात दल अंबुज करा बन्दनवार कीन्ह चहुँ फेरा।
मंडल के दीपक पुनि बारे छिटकि रहे मानहुँ ससि तारे॥
दिष्टि फिराइ देखि जो लेही नखत सुमेर पदच्छिन[1] देहीं।
कलस बनाइ खम्भ तर धारा तहि पर चौमुख दीपक बारा॥
चारिहुँ दिस दीपक जग भाई एही सगुन दुहूँ जिय पाई।

धरउ जराऊ बेदि लै चहुँदिस अतरधानि।

बहु आदर सों कुअर कहँ तहँ बैसारेउ आनि॥ ५२७॥

चित्रसेन परिवार कि बारी जनु बिधने अछरा ओतारी।
काँधा बाहीं सब एक दाईं मिलि के कुअरहिं देखन आईं॥
मंडल के दुहुँ दिस त गारा भईं ठाढि मुख सा मुख जारी।
कलपबृक्ष जनु कुँअरहिं चीन्हा सब के बारि देखनहु कीन्हा।
अमिरित अधर नहाँ लै सोंचा देखत निपर न आव माचा॥
लोयन कोर कोर पुनि मेले चारी चारी खंजन खेले(क)।
देव कँवल जब पुहुप ऊतारा, दूसर बन्दनवार सँवारा॥

करनफूल गज मुकता सोभत कानन जोर।

कंज सेत जनु बिकसि कै मानि भरे चहुँ ओर॥ ५२८॥

चुर आनि बाभन बेदुआई हाम जाप कहँ अगिन जराई।
कुँअर नैन देउ चकित चकोरा पून इंदु ऊवे केहि ओरा॥
जउँ जउँ पला जाइ निसि बासी मंदिल हाइ कुँअर कहँ फाँसा।
सुभग मुहूरत आइ तुलानी नौ सत कै चित्रावलि आनी॥
दिनकर उदै मेटि तम गयऊ ससि मंडल तारा गन भयऊ।

१—स प्रदक्षिणा। २—अतरबर = वह बिछावन जो चाँदनी के नीचे बिछाया जाय। (क) चारी चारी खंजन खेले। पाठा।

पढ़ा बेद बाभन [illegible] चित्रावली सुजानहिं लाइ ॥
ततखन आन कीन्ह गँठजोरा बंधन सो जो छूट न छोरा ।

जउँ जउँ परी देहिं निज हाथ अधिक अरुझेरि ।
दिढ़ बंधन निज एक हो आर अमिय [illegible] ॥ २९ ॥

पुनि चित्रावलि चोसर हारा सकुचा कुँअर गाँव [illegible] डारा ।
कुँअरहि [illegible] पुनि हार सुहावा चित्रावलि [illegible] पहिरावा ॥
प्रेम खेल खेलत दिन बीते दाऊ खेलार हार दै जीते ।
चित्रसेन पुनि [illegible] कुम पानी सकलपी धिय सब जग जानी ॥
कुँअर बोलि पुनि स्वस्ति सुनाए तीनि लोक भय अनँद बधाए ।
कोहबर सेज सुरंग पुनि डासी सुखसाला कबिलास बिलासी ॥
कुँअरहिं तहाँ सखी [illegible] गईं हँसतहिं हँसत अनंति भईं ।

कहहिं कि बैसहु सेज चढ़ि छिन एक रहहु अकेल ।
हम आनी चित्रावली करहु रहस सुख केल ॥ ३० ॥

कुँअरहि सेज सुरँग बसाई चित्रावलि पहँ गईं सबाई ।
आस पास सब घरँ अलोँ सुँदरि कहँ कोहबर [illegible] ॥
प्रथम समागम बाला डरइ कसहुँ आग पाव न परइ ।
चित्रावलि जनु गज मतवारी [illegible] घट झनकारी ॥
आँदू[1] सकचि पाव दुहुँ धरा परगहिं परग [illegible] अरगरा ।
छलि आँखिन्ह अँधिआरी[2] मला धकारहिं गडदार [illegible] ॥
कल बल गई सेज जहँ अहा पाटी तीर [illegible] ।
चित बहलावहिं निज सखी आ समुझावहिं सा [illegible] ।
सेज सुरंग जहँ [illegible] चित्रिनि [illegible] ॥ ३१ ॥

१—एक काँटा का बना हुआ हाथी का बंधन जिसमें [illegible] लगा रहता है। इससे मतवाला हाथी बाँधा जाता है। यहाँ मत्तहाथी। — कोष।
२—अंधकार बंद करने की आवरण। छाका।

पुनि सखियाँ सब एकमत भईं । ल बेसाय सज पर गइ ।
चित्रावलि पुनि जी हठ ऐसी, पीठ दिय घूंघट कै बसी ॥
कुँअर कहा हे परम सनेही, केहि कारन घूंघट अब देई ।
मुख देखाउ कहु बतियाँ मीठी काह करसि हिया जस सीठी ॥
जेहिँ लगि कइउ(क) जनम दुख सही सो कैसे निठराई गही ।
जाहि लागि काया नित नई सो दुखर दुखदायक भई ॥
जो अस कठिन हिया भा तोरा, ता अस भयो हाल सब मोरा ।

डारेउँ प्रेम अँदोर जग तोर मया क काज ।
जो तोर हिया दया बिना जनम अमिरथा आज ॥ ७३२ ॥

यह बिनती कै रहेउ सुजाना चित्रिनि कही न एका माना ।
तब उठि कुँअर भुजा कर गहा, झिझकि हाथ चित्रावलि कहा ॥
गहु न हाथ रे बावर जीगी तासों लागु होइ तोर जागी ।
जाके छाँह छुए नहिँ पावसि एकहि बार हाथ किमि लावसि ॥
कस चकोर अस कौ ढिठाई बिहँसै सरग सेज ससि जाई ।
तू भिखारि हौ राजा बारी राज भिखारिहिँ कौन चिन्हारी ॥
जो कै कीन्ह भँवर कै माना वह परगट यह अँतर सयाना ।

बागी बारी दोऊ भनेउ अथिर हियेँ न प्रीति ।
जोगी भौंरा के जुगुति केहि सौं कवन परतीति ॥ ७३३ ॥

जो मधुकर अनुज रस पीए मालति नेह न राखै हीए ।
जूठ अधर ओ कपटी हीआ नागेसर रस चाहे पीआ ॥
कपट रूप गुजार सुनाई जोगहि प्रेम सो नहिँ पतियाई ।
जोगी सोउ जो सेज अनूपा जोगी नाहिँ आहि बहुरूपा ॥
जोगी जो घर घर परसादी जोगी नाहिँ आहि रसबादी ।
जोगी जो घरबारी हाई जोगी नाहीँ कुटीचर सोई ॥
तोर मन भौंरा अनुज हीए लेक छरलि धधारी दीए ।

(क) काऊ पाठा ।

तुअ सँग सुन्दरि नारि एक परगट सूझ माँहि ।
रूप सलोना आपना काह देखउँ ताहि ॥ ३४ ॥

कुअर कहा सुनु राजकुमारी हौं राजा तोहिँ लागि भीखारी ।
मैं खप्पर ल तोर बारा आसन दरसन भीखि अधारा ॥
त सो बिख खप्पर ल आवहि आपन बार की साध नसावहि(क) ।
हिय चखु रूप रसन तुअ नाऊँ आन समाइ कह कहि ठाऊँ ॥
बाँधि जो लइ काम कर खोजू जा मन हाइ ता पाउँ मनोजू ।
मन राखे तँ अपने बारा ढूँढ़ी कया फिर ससारा ॥
देखहु पठि ढूँढि मोर हीया सूरज आगे जाति न दीया ।
आहि अनूपम काम बन छुइ न सकौं तुअ माथ ।
हिरदय पर परतछ सिव कहु ता राखौं हाथ ॥ ५३५ ॥

कुँअर सपत कामिनि मन माना सिभु सपति बाचा परमाना ।
रही अक हवर समुझाई ले सुजान तब अक मँ लाई ॥
घूँघुट खालि रूप अस देखा सो देखा जहि सीस सुरखा ।
अधर घूँट सो अमिरित पीआ जेहि के पिअत अमर भा हीया ॥
राहु गरास कलानिधि काँपा लायन पल आनन पट झाँपा ।
पुनि मनमथ रति फागु सँवारी खोलि अछूत कनक पिचकारी ॥
रग गुलाल दोऊ ल भर राम राम तन माती झर ।
सेद[1] थभ[2] रोमच तन आसु पतन जुरभग ।
प्रथम समागम जा कियो सितल भा सब अग ॥ ५३६ ॥

दिन कर उदय हान परभाता, आयो कुँअर जहाँ बरिआता ।
सुखसाला सखिआँ मिलि गईं, सेज बिलोकि अनदित भईं ॥
चित्रावलि करि पाउँ अडारी परी बिसुध जानहु मतवारी ।

(क) त सो बिष खप्पर ले आवा । आन बार का साध नचावा । पाठा ।

१—खेद । २—स्तभ ।

उधरसि माग अलकावलि छूटी, बेनी खुली बली कर फूटी ॥
सखी एक हीरा पहँ आई बिकसे अधर दसन चमकाई।
कहिसि कि आइ देखु धिय साजा माहिँ कहन आव मुख लाजा ॥
रानी आइ देखि मुसुकाई, माँग चूमि चित्रिनी जगाई।

कहिसि कि उन दिन धन घरी धनि माथा धन भाग।
नैन सिराने निरखि कै चित्रावलि के भाग ॥ ५३७ ॥

लै सखियन बाला अन्हवाई, चित्र करि लै सात बनाई।
चित्रसेन पुनि सभा बईठा लिखै लाग दायज कर चीठा ॥
हाथी घोड हिरा नग जाती रतन पदारथ मानिक माती।
पाटम्बर जरकसी पाँवरी खाँडा मूँठि जराऊ जरी ॥
हडा गगरा थार अपारा सोन रूप के गेंडुआ थारा।
जो देखी सो अगिनित दीन्हा धनि सो पिता जिन यह जस लीन्हा ॥
राजनीति कर चीठी दीन्हा आ गहि पाँय बीनती कीन्ही।

राज पाट धन देस सब मोर कुँअर कर जान।
तासौं कहा विवेक[1] कछु जा कहँ दीन्ह परान ॥ ५३८ ॥

---

(३६) कुटी चर दहन खड।

महत चला लै दायज साजा चहु दिस दुंद दान कर बाजा।
भाँट कलावत सब पहिराए, दान देइ कर बिदा कराए ॥
निगुनी गुनी भिखारी नेगा दै दै सब पहिराए बेगी।
बाजत गाजत घर ल आवा आँगन गै पुनि नाच बधावा ॥
नाच कूद पुनि महरिन कीन्हा, जेहि जस लाग ताहि तस दीन्हा।
उहाँ महत घर छाइ बधाई इहाँ सखिन्ह चित्रिनी बनाई ॥
उँच धुराहर जनु कबिलासा, तहाँ कुँअर कहँ दीन्ह निवासा।

१—मद। २—दुंदुभा।

राम समा अभिराम सुख छलि क गइँ लेराइ ।
रति बामा पद्मावती देखत सेज उराइ ॥ ५ ९ ॥

गहि क कुँअरि सेज असाइ अति बिहबल क अक मँ लाई ।
तिया बिचित्र सँकानी चाही रुख ला सुख मराइ मन ली ही ॥
तब चित्रावलि बचन उभासा पे साईं दुहुँ जग तुअ आसा ॥
कहहु माहिँ अब बात सुहाई कहि आगुन माहि की ह अदाई[1] ।
कोन रूप मोर आगुन हरा जेहिँ देखत तुम खा मु ह फरा ॥
मोर नन मघ झरि लावा तुम दहुँ कहाँ जाइ घर छाया ।
हौं अकसर जाडा तन काँपी तुम दहुँ कोन मारि उर चाँपी ॥
हौं बिरहिन रवि तेज जरि कोइला भइ अुराइ ।
तुम कहुँ सु दरि वलि गहि परबत भूले जाइ ॥ ८० ॥

सुनि कै कुँअर साँस उर काढा कहिसि कि ऐ सुन्दरि दुख डाढी ।
जो हम करत जीउ तन सूना तू जानति हम प्रेम बिहूना ॥
तुम्हरे गाँव काहु बारावा, नन खोइ दधि पार अडावा ।
कहिसि कि तुम्ह कारन हम आखी भई सूर लगि गाढुर पाँखी ॥
पिरम बरि जिउ मारिसि नाहीँ बिरह खाह डारिसि गहि बाहीँ ।
साँप लीलि हौं उगलि अँडारा रच्छक प्रम नजहिँ का मारा ।
जा तुअ रूप रहा चखु माहीँ पायाँ नेन जाति पुनि ताहीँ ॥
राजपखि कुजल कथा सागर गढ क बयान ।
बर बिआह पुनि कौंल कर एक एक कीन्ह बखान ॥५४१॥

चित्रावलि चित उपजी दाया सुनि दुख अगसाइँ भइ काया ।
मनहिँ कहिसि यह बैरी काई बिना कुटीचर आन न हाई ॥
जो अस कौंल प्रेम उरुझेरा अत भौंर के लेइ बसेरा ।
अब सो करौं जहि भौंर लेभाई, मालति छाडि न सरवर जाई ॥
कहिसि कि जा अस दुख चित सहई, सोइ कबिलास राज ल रहई(क) ।

१—अनाथ । २—वरान । (क) करइ । पाठा ।

मों उर निकट बैठि अब साईं भूजहु[1] राज इन्द्र कै नाईं ॥
नैन कुरङ्ग गौन गज साजा दल कटाच्छ एहि भांति बिराजा।
नौबति कटि छुद्रावली धुज अंचल फहराइ।
पूरन सेवा जा कर सा अस राज कराइ ॥ ५४२ ॥

भोरहिं चित्रनि जन दौरावा कुटिल कुटीचर बाप मँगावा।
अज्ञा चरिन आनि सुनाई अगिनकुंड ल डारहु जाई ॥
परम दोष जासों कछु होई ताहि कुंड ल डारहिं सोई।
निसि दिन उठै अगिन की कला धार अगिन जहि आगें जला[2] ॥
बाँधि कुटीचर तहँ ले डारा पाप मल सों भूम उबारा।
देखे लोग कुटीचर जरई अत पाप माथे अस परई ॥
जे देखा तिन चखु पल झांपी परम पाप बैसन्दर काँपी।
मान अजहुँ तजु ज्ञान कै पाप जा बन्ध बिचारि।
नाहिं तो बहुरि बिचार नहिं धार अगिन के बारि ॥ ५४३ ॥

बैरिहिं अगिनकुंड महँ मली करहिं दाउ निसि दिन सुख कली।
कुँअरि पाइ धनि मलय सरीरा लइ लइ छाती करै समीरा ॥
कोलहि जानि भौर सँग लटा चित्रावलि जिअ खरक कँटा।
बरजी सखी सहेली सोई सेज कौंल दरसो जनि काई ॥
आ पुनि कहहिं जा भार गाउँ रहे न सरवर कौंल क नाऊँ।
आ जा कौंल कहे मुँह भाखी आपन नाउँ सा मिरतक राखी ॥
रस पंडित मुख नाउँ जा लेई अंबुज निरज बारिज कहि देई।
कौंल चितरा जो लिखे, ततखन कलपौ हत्थ।
मुख परगासे नाउँ जा रसना खोउ अकत्थ ॥ ५४४ ॥

पंथ पथ पुनि जन बैसावा, सागर नगर जो जन काऊ आवा।
छोरि छीनि कागद सब लेहीं, तबहिं देस पैसारी देहीं ॥

१—भोगा। २—ज्वाला। ३—कलम करो काटा।

एहि बिधि राकि पथ सब राखा सरवर रहउ न अँबुज साखा ।
चित्रावलि चित के चतुराई सानि डाह हिय हु नें मिटाई ॥
जते सुख पुहुमी बिधि दी हँ तेते दुहँ बिलसि जिअ लीन्ह ।
रगनाथ पाडे मति बना चित्रावलि के पाठ सग पना ॥
सतति[1] सग कुँअर क रहई तरक बात रस कथा जा कहइ ।
कुँअरहि भूला आर सब रहा दूई सघात ।
चित्रावलि कर प्रेम हिय रगनाथ की बात ॥ ४० ॥

---

(४०) हस खण्ड ।

कौंलावती नारि पर घटा बाढी अगिन सीस जनु जटा ।
दिवस उसास पवन अधिकावै रैनि कलानिधि चिउ बरसावै ॥
ता ऊपर पुनि मनमथ दानी[2] अति जिअ त्रास रहे कहि पानी ।
बचन एक कहि गयो जो पीऊ ताहि अधार रह घट जीऊ ॥
डरे अकेली मदिल सूना सब जग सूना एक बिहूना ।
बिरह समुद्र अथाह देखावा आधि तीर कहुँ दिष्टि न आवा ॥
सुरति समीरन लहरें लेइ बूडत कोऊ न तीरज दई ।
साईं सविता बाहरें रहउ कोंल कुम्हिलाइ ।
भोर भोर तन प्रान भा, निकस कहँ अकुलाइ ॥ ४६ ॥
रूप नगर कर एक बनिजारा सागर नगर बनिज ले ढारा ।
कौंलावति सुनि व्याकुल भई भस फेरि क पूँछन गई ॥
कहिसि कि हौ कौंलावति दासी, पिय गौने दहुँ कोंल कलासी ।
पूछै समाचार तेहि केरा मोर भोर जहि लीन्ह बसेरा ॥
कुँअर जा गया एक होइ जोगी चित्रसेन पिय बिरह बियोगी ।
कसा कि नाहिं कसौटी सोना भा बिआह की अबहीं होना ॥
सुनि बनजारै कथा सोहाई(क), आदि अत लहु बकति सुनाई ।

१—स,तत = निरन्तर । २—दु स दिया । ३—बिना । (क) सवाद । पाठा । ४—उक्ति, कथा ।

जैसे दलगजन हना औ पुनि भयो बियाह ।
आ मानहिं सुख केलि जिमि खोइ दुद औ दाह ॥ ५४७ ॥
कोंल दाह जिमि चिचिनि नारी कौंल बलि जरि मूरि उपारी ।
कहै न काऊ कौंल मुख भाखी औ जिमि बाट रोकि कै राखी ॥
सो वे सब पुनि कहिसि बखानी कौंल नैन आए भरि पानी ।
मन महँ कहिसि कठिन भा काजा बैरिन साति कुफुन[1] उपराजा ॥
तहँ राखिस पिअ मोर छिपाई जहाँ सँदेस न पहुँचै जाई ।
मन्दिर उठि आइ दुख दही, सबै कथा साथिन सों कही ॥
को अस भया मरोही अहई छलि कै बिथा मोर ल कहई(क) ।
हौं निज बिसरी कस कहँ तो छाडी सब भोर ।
एक बार बिधि चित चढौं जेहि व्यापै मम पीर ॥ ५४८ ॥
हस मिसिर गुन केर निधाना बौदह बिद्या पढ़ सुजाना ।
रसबिद्या कहँ और न पावा कौलावति कै बिरह सँतावा ॥
कहिसि कि ह सुन्दरि दुखियारी तार दुख जिय भयो दुखारी ।
पेज बाँधि गौनों वहि देसा लै पहुचावौं तोर सँदेसा ॥
आ जोगी कुँअरहिं लै आऊँ हस मिसिर तो नाउँ कहाऊँ ।
सुनि कै कौल पाउँ लै परी, कहिसि कि अब जनि बिलँबहु करी॥
हिअ गह बरै कहत नहि आवै सो कहिए जा तुमहिं जिय भावै ।
जहँ उनई सावन घटा, जाइ चाह सो लेइ ।
हस चला तजि मानसर, कोलहिं धीरज देइ ॥ ४९ ॥
रूपनगर गै हस पहूँचा, देखेसि राज इन्द्र हुन ऊँचा ।
एकसर भँवै न कोऊ साथी खोजै बिद्या बियाराथी ॥
पँडितन पास जाइ ल बानी बिद्या देखि होइँ सो पानी ।

१—फा कफ्त = मानसिक पीडा जलन ।

(क) काउ नाहीं अस बन्धू माहीं कहि दुख कथा सुनावे वोहीं । पाठा ।

दिन दुइ माहँ अँदोर बढावा रूपनगर एक पंडित आवा ॥
विद्या जान जहाँ लगि अहई काम सासतर कठ कहइ ।
पंडित बात कुँअर पुनि सुनी बाभन एक आउ बहुगुनी ॥
ततखन पंडित निअर बुलावा तरुनन काम सासतर भावा ।

आया पंडित रहसि साँ देखेसि बदन अनूप ।
मन महँ कहिसि कि आह एह निनु मकरन्धुज भूप ॥ ५० ॥

---

(४१) काम शास्त्र खण्ड ।

पंडित बैठा देइ असीसा रस रस पूँछ विद्या ईसा ।
काम-सासतर तुम्ह जो जाना हम आगे सब करहु बखाना ॥
पंडित बैठेउ आप सँभारी कहिसि कुँअर सुनु बात हमारी ।
जबलगि सुरति नारि नहिँ होई तब लगि रस परगास न हाई ॥
रसविद्या मकरद्धज बाना पाँच हाइ सो सुनो सुजाना ।
जे यह बान सौँह होइ खावा एहि जग जिअन अमर पद पावा ॥
धनि सो धन धनि पुरुष सुजाना धनि विद्या धनि ज्ञान सो बाना ।

सुनहु कुँअर चित कान दै रस-कथा अभिराम ।
पहिले बरनो चारि तिय ता पाछे रति काम ॥ ५१ ॥

काम भद जो जानै काई दपति सेज महा सुख हाई ।
रग अनेक(क) जान जा पीऊ, तिय तन कहाँ समर[2] ल जीऊ ॥
काम भउ बिनु माँगै रगा जस पसु करै पसू सो सगा ।
एहि जग माहँ एक रस सारा रस बिनु छूछ सकल ससारा ॥
रस बिनु आम न पछी खाई, रस बिनु ऊखहिँ देहिँ जराई ।

१—कामदेव । २—स्मर = कामदेव । (क) अग अनग, पाठा ।

रस कहँ भौंरा भँवे भुलाना बिनु रस दादुर कौंल न जाना ॥
बिनु रस अवनि जनम जे पावा सूने घर जस पाहुन आवा ।
मान जाय सोइ प्रेम रस जो बस नैन पसार ।
नेह निहारै जगत महँ केलि कुरंगिनि सार ॥ ५५२ ॥

सुनहु पदुमिनी कर बखाना आनन पूरन इन्दु समाना ।
हेम कँवल तन सुन्दरताई फूल सरीख गात कुँवराई[1] ॥
चित्रा[2] सारँग सावक नैनी, सुक नासिक मराल सुभ गैनी ।
कुच उतंग मासल[3] बरनारी पिक बैनी लंबा लहकारी ॥
पुहुप सराज बास तन बामा, लज्जावति मानति बिसरामा ।
तीनि रेख कटि त्रिबली बनी हसमुखी औ अलपासनी[4] ॥
बाम नाभि रच मन मथ चाला सेत बसन रुचि सुन्दर काला ।
देव पुजन की रुचि हिए औ सब उत्तिम बान ।
उत्तिम नारिन्ह माहँ पुनि सो पदुमिनी बखान ॥ ५ ३ ॥
नेन चपल पुनि चित्रिनि नारी पातर मुख औ अलप अहारी ।
मोट न पातरि बीचहिँ(क) बनी जेहि घर होइ पुरुख सो धनी ॥
अति कटि छीन मृदुल पुनि होई सबद मँजीर कंठ सुर हाई ।
सुभग नितब पयोहर[5] खीना कमिनि सुघर बजावै बीना ॥
चित्र लिखै चतुराई करई सुन्दर बचन सेज मन हरई ।
छोट बडे सो मया जनावै स्याम चिहुर[6] सिर भौंर न पावै ॥
अलप काम जल मदकी बासा अलप रोम तन काम निवासा ।
सुंदर जघा पातरी अछवाई पुनि चाउ ।
अंग बास पै अधिक है चित्रिनि माहँ सुभाउ ॥ ५५४ ॥
कहौं सखिनी क गुन राऊ दिरघ बाह औ दीरघ पाऊँ ।
कुटिल नैन तन बरन मँजारि तरहुँड[7] किए रहे सिर नारी ॥

१—कामलता = कामलता । २—चित्रसार मृग । ३—गुदार = मोटा । ४—कम खाने वाला । (क) मटाहुँ = मोटा । ५—पयोधर = स्तन । ६—चमकीला । ७—नाचे ।

सास न घने न विडरे[1] बारा चल उनावलि बहुत अहारा ।
अरुन बसन रुचि औ कंठ माला सतत बर देह जनु चाला ॥
चचलि व्याकुलि काम सँताप चलत सेज नख छाती लाप ।
कुच छाप करि आगी नारी कपटी क्रोधी लाज जारी ॥
अति बिगध जल काम बसाई गर खर महा बचन कहुआई ।
दयाहीन हिय कठिन अति काम कर पुनि राइ ।
जेहि घर ऐसी नारि हाइ कत दुखिन नित हाइ ॥ ५ ॥

नारि हस्तिनी जानहु सोई हस्तिनि क गुन जा मह हाई ।
मोटि देह कुतल पिअराई हस्ती मद जल काम बसाई ॥
कूरागा पुनि कपट लबढा[2] पाँउँ न सुन्दर आँगुरि टेढी ।
मद गौन चखु लाज न गहई काँध नवाए निसि दिन रहई ॥
बहु भोजन औ बहु जल कामा गटपट मिले सेज पर बामा ।
अधर थूल[3] औ गद्गद् भाषा, अकुस दिये रहे सो राखा ॥
जस कछु अहै वेद अनुमाना चारि नारि गुन कहेउँ सुजाना ।
बरतमान अब जगत महँ मिसिरत गुन रसवन्त ।
बरनत बहु बिस्तार हाइ चान्हि लेहि बुधिवन्त ॥ ५ ६ ॥

सनहु कहौं अब तिथि परमाना जहि ते सेज रचन सुख माना ।
परिवा दुइजि चौथि तिथि पाई पदुमिनि कह पचमि सुखदाई ॥
आठ पहर रजनी पिउ राव पदुमिनि सेज महा सुख पावे ।
छठि अठई[4] द्वादसि औ दसा चित्रिनि क बित ए तिथि बसा ॥
प्रथम पहर जो पिउ रति करइ सेज समय चित्रिनि चित हरई ।
सपत चतुरदस एकादसी तीनों तिथि सखिनि उर बसी ॥
तीसर पहर रैनि रति माना करे बसन[5] जो हाइ सुजाना ।

१—स विरल । २—लपेटी । ३—स्थूल = मोटा ।
४—रमें । ५—व्यसन सभाग ।

नवमी तीजि तिरोदसी पद्रह तिथि सुख पाउ ।
मदन आउ दोपहर दिन हस्तिनि कह रति चाउ ॥ ५७ ॥

अब सुनु कहा जोग नर नारी रसिक जानु यह बात रसारी ।
जोगहिं जोग मिले जो आई अति आनन्द महा सुखदाई ॥
मेहरिन मदन ठाउ कम होइ बिनु रति जोग कुठाहर[1] सोई ।
जोग न मिल होइ सुख हानी अत कन कहँ तज परानी ॥
जो कुलीन होइ हेतु न राखै, नाहिं तो जाइ आन फर चाखै ।
तीन जाति बिधि तिया सँवारी हरिनी[2] असुनी[3] करिनी[4] नारी ॥
तीनि भाँति बिधि नर उपराजा ससा वृषभ औ तुर[5] बिराजा ।

पहिल एक एक कर कहौं जाति पाँति बेवहार ।
ता पाछे कहि देउँ सभ जोग बियोग बिचार ॥ ८ ॥

ससा सरूप सुनहु नरनाहा उत्तिम जाति सो पुरुषन्ह माँहीं ।
मुख पातर तन सुन्दरताई दसन छोट पुनि कछुक मेटाई ॥
कोमल निहुर सीस नहि बने हाथ पाउँ जघा सब बने ।
दीरघ चखु सूछम करिधनी[6] अलपरती औ अलपासनी ॥
अति गभीर महा सुखदाई, बेठन उठन अधिक गरुआई ।
बास सुगन्ध मदनजल आव मृग नेनी ताह लँग सुख पाव ॥
भोजन अधिक दूध रुचि होई दस महँ पुरुष एक अस हाई ।

मदनाकुस[7] रसवद[8] मत षट अगुल परिमान ।
इह परकीरति[9] जा पुरुष सोई ससा बखान ॥ ५ ९ ॥

लच्छन बिरिष कहौं सुनु राऊ थोर लाँब भुज बल व्यवसाऊ ।
नारप लोयन कारे रात बरन असेत जनहुँ मदमाते ॥

१—कुठार कुन्द । —हित प्रेम । ३—मृगी । ४—पडवा ।
५—हस्तिनी । —अश्व । —वात्स्यायनकृत कामशास्त्र । ७—कमर ।
८—शास्त्र । ९—लिंग —कामशास्त्र । ११—प्रकृति स्वभाव, लक्षण ।

मन्द गँवन अस्थिर नन राऊ जह ठट तह उठे न भाऊ।
अरुन हरिनि[1] पीत गरुरा सेज मान जा राखउत बेरा॥
एहि गुन पुरुख रूप पहिचाना नव अगुल अकुस[2] परिमाना।
मध्यम विरिख पुरुख जग होई उत्तम सोई जा की [illegible] ताई॥
औ उत्तम जो कहि समुझाव उत्तम रसिक सतत सुख पाव।

अथिर लोयन कारन अइसी सो रति चाव।
अब आगे सुनि कान दे गुन तुरग के भाव॥ ५६० ॥

गुन तुरग सब कहौं सुजाना लिंग अदित अगुल परिमाना।
दीरघ अगुल दीरघ बाहीं दीरघ दसन तुरे मुख माहीं॥
लाँब मोलि सिर केस सुहाये सदन नैन बिसम्हारि पियाय।
टेढ जघ नख करवुद[3] टेढा, सीस पाय लहुँ काय लपेटा॥
पातुर लोभी अधिक ढिठाई, मन्मथजल[4] बिरगिन्ध बसाई।
नींद अधिक चचल गति पावे इस्त्री रति लालस दहकाव॥
लाँब गीवँ अरु अस्थुल नेता बदन लाँब लज्जा हत हेता।

पुरुख जान पहचान यह एहि गुन भाव बिचारि।
अब तिरवल[6] के बरनबउँ तीनि भाँति पर नारि॥ ५६१ ॥

अब सुनु हरिनी कर बखाना मन चित हरिनी साई सुजाना।
कुटिल केस सोस सम घने तनवी[7] कुच अनग उर बने॥
अबुज नयन भँवर हिय मोहा, नासिक अल्प छिद्र मुख साहा।
चचल भुजा बैन पिक कहै सेज समय नहिं इथिर रहै॥
अधर अरुन जनु पुज निवारी गज गामनी अपुरुब बर नारी।
मदन जला जनु कँवल बसाई अल्प असन नितब समताई॥
सुघर पाय औ कर सुकुमारी कामल नव तेज जेउनारी।

१—गवारी, हथेला। २—मदनाकुश = लिंग। ३—नखमण्डल।
४—वीर्य। ५—हुगवि। ६—विवरण चमरा। ७—कृश।

कामागार गरथ मन रस अगुल परमान ।
यह परकीरति बेठि गुनु हरिनी जानु सुजान ॥ ५६२ ॥

दूज कहौं अस्वनी नारी बिरिख पुरुष की नारि पियारी ।
घने बार सिर डीठि तरोही पलक मॉट पुनि बरन हथौही ॥
नील कॅवल सम लोचन ज्ञाता अरु न कॅवल जिनु करबुद राता ।
लाब बदन औ कोमल देहा सभर[1] नितम्ब पयोहर जेहा ॥
लाबी गीवॅ भुजन सहराय सुभगवती हिरदै डर खाय ।
यह केहरि किरोधती नारी खीर खॉड रुचि नींद पियारी ॥
कॉख राम बहु औ मद जला करै रोज चितुराई कला ।

नव अगुल परमान पुनि मकरध्वज भडार ।
एहि परकीरति जानही असुनी के बेवहार ॥ ५६३ ॥

हस्तिनि क गुन कहौं सबाई बहु भाजन मन पाप बसाई ।
थूल हाथ औ दोऊ बाहीं सील लाज नहिं आँखिन माहीं ॥
ओंठ लॉब औ तीछन दाँती सतति रहे काम मदमाती ।
सबल देखि नैन पिअराई मद गयद जल काम बसाई ॥
सुर गॅभीर सीहिनि उर लॉबा रात देह जनहुँ दुति ताँबा ।
कएहिं हाइ सेज रति दानी मदन भँडार बहै नित पानी ॥
कामगार मिति अगुल भाना हस्तिनि क गुन सुनहु सुजाना ।

जाति भाँति सब मेँ कही जेहि जस आह सुभाउ ।
अब जासोँ सुख सेज रति सोऊ कहौं सुनु राउ ॥ ५६४ ॥

पाँच भाति रति जोग सुजाना, ऊँच नीच सम जोग बखाना ।
औ अति ऊँच नीच अति होइ[2], बिनु रस रसिक न जान कोई ॥
जहँ सम जोग तहाँ हित प्राता सतत जनम हत महँ बाता ।
ऊँच नीच दोउ एक सम भाँती एक जिअ दुखी एक नहिं साँती ॥

१—भारी ।

२—रति सयोग क पाच भद ऊच नीच सम अति उच्च अति नीच ।

जहँ अति ऊच कि अति हाइ नीचा सग न सह लहे बरु मीचा ।
कतहिँ तिय तिल अजुलि देई जाइ ढूँढि सम जामिहिँ लइ ॥
एहि कारन जग महँ अति पापा कामदेव साइ दीन्ह सरापा ।

अब लहुँ मँ सज्ञा कही सब कहँ बूझि न जाइ ।
सुनहु रसिक रस कान दे कहाँ सब बिलगाइ[2] ॥ ६ ॥

हरनी ससा जाग सम अहहीँ दपति सदा सज सुख लहहीँ ।
असुनी बृषभ जोग सम आवा एहि दाउ मिलि सतत सुख पावा ॥
सम जागा हस्तिनी तुरगा दाऊ सज चलि मानहि रगा ।
हरनी बृषहिँ ऊँच रति हाई असुनी अस्व उँच पुनि साइ ॥
असुनी ससा नीच कै जानहु हस्तिनि बृषहिँ नीच रति मानहु ।
अतिहिँ उँच तुर हरिनी रसा अतिहिँ नीच हास्तनि आ ससा ॥
ऊँच नीच लगि बुद्धि बिचारी, जहितेँ होव बस बरनारी । (क) ।

काम गौन जहि बिधि करै नर नारी के गात ।
सो सब कहौं बखानि कै सुनहु रसिक यह बात ॥ ५६६ ॥

चढे काम नर दाहिन अगा बाएँ अग नारि पर सगा ।
सुकुल पछ परिवा जब आवा आवे काम अँमूठा पावा ॥
परिवा दुइजि तीजि बस फाली गहे चोथि क जाँघ रखाली ।
पँचमी बसे मदन की ठाउँ षष्ठा बरा नितँब जनि नाऊँ ॥
नाभी रहे सप्तमा मदना अठएँ बसे आइ उर सदना ।
नौमी बस मेन कुच माहीँ दसमी आव काख तराहीँ ॥
एकादसी गाल महँ आव द्वादसि काम कपोल समाव ।

तेरसि आव अधर पर बस चतुरदसि नन ।
जहि दिन पूरन चन्द्रमा रहै माँग चढि मन ॥ ६७ ॥

१—मृत्यु । २—पृथक पृथक विवरण करके ।

(क) अब सुनु राजा कहा हमारा । निहचे कहा बचन ना मारा । अधिक ।

कृष्ण पच्छ परिवा रह माँगा, पुनि उतर होइ दाहिन आँगा।
जसे बाएँ चढै अनगा तेसँ उतरै दाहिन अगा॥
जौ लहुँ योनि खलित नहिँ होई तो लहुँ हिअ सतोष न सोई।
माग नखच्छत चूमिय नना खेदन अधर बिमदन मना॥
रसिक कपोल कपोलहिँ घसई जब कपोल मकरध्वज बसई।
केलि काँख अँगुरी लिखि लई गहि कुच कठिन नखच्छत देई॥
उर सहराइ देइ नख नाहाँ उलटे हाथ हन नाभी माहाँ।
थोर सबै चुटकी गहे बसै अग जेहि काम।
निहचै मेन न थिर रहै होइ बस्य[1] पुनि बाम॥ ५६८॥

आदि सुरति जनि काम सतावहु अत करहु जातेँ सुख पावहु।
पहिलहि जाइ काम तजि अगा, काकर सुख का कर रति रगा॥
मूरख सौं हम भेद छिपावैँ रसिक जानि रस बात सुनावैँ।
काम भेद कहि हस बताना नायक औ नायका बखाना॥
नौ रस के पुनि भेद सुनाए अभिनव भाव सबै समुझाए।
सोरह हाउ भाव पचासा जेहि औलबन माहँ नेवासा॥
जो एह भद कहौं कमुझाई, आन कथा एक लिखौं बनाई।
कहो थोर जेहि भाव बहु बूझहिँ बूझनहार।
कहँ लगि बरनौं नायका नायक गुन बिस्तार॥ ५६९॥

---

(४१) चित्रावली गवन खड।

हस मिसिर अस गुन परगसा कुँअर हिए भीतर होए बसा।
रगनाथ औ हस गियानी जनु गुरु सुक्र दोउ गुन ज्ञानी॥
कुँअर पास नित बैसे रहहीँ उत्तम उकुति तरक पुनि कहहीँ।

१—वशीभूत। २—कहा।

एक दिन एक मधुप उडि आवा कुँअर कान गुंजार सुनावा ॥
कुँअर कहा जा अलि गुंजारा ताकर कुसुमा करा बिचारा ।
कहहिँ कि अलि गुंजार नरसा आनि सुनाउ कहँ क सदेसा ॥
कुँअर कहा तुम पंडित दोऊ पूछौं कहो समुझि जिअ दोऊ ।

मधुप पिये मकरंद रस निपि तिन कुसुम निवास ।
केहि कारन एह स्याम तन सतत भँव उदास ॥ ७० ॥

रघनाथ पाँडे सुनि बाला सुनहु कुँअर एह भेद अमोला ।
भौंर बिबेकी हत न हीए मुहँ रस पिए कपट मन कीए ॥
पीये एक पुहुप जा रसा दूसर फूल रहै मन बसा ।
बारी बारी भँव अधीरा तेहि आगुन भा स्याम सरीरा ॥
चदहि जो चकोर मन लावा एक हत भा रग सुहावा ।
तब उठि हस कहा सुनु राऊ भौंर स्याम गुन कहौं सुभाऊ ।
सूर बिरह जो अगुज दही मधुकर तहाँ राति एक रही । (क)

पुहुप हेत मकरद गुन अहा सेत अभिराम ।
बिरह अगिन जरि कै तहा(ख) भौंर भयो तन स्याम ॥ ७१॥

कुँअरहिँ सुनत तरकि जिय लागी औ सुनि सभा सकल अनुरागी ।
कहिसि कि धनि सरवर धनि हसा धनि गुरु धनि कल धनि जहि बसा ॥
जहि अस बुद्धि होइ हिय माँहीँ कस न पुहुमिपति लाल कराहीँ[1] ।
बुद्धि दीप जाके हिय बरई पुहुमी सरग उजग करई ॥
तेहि अँजोर जो करै पयाना हरि लेइ सब जाइ हराना ।
एक दीप बिनु जग अँधिआरा बादि[2] सूर ससि कर उजिआरा ॥
निअरीह रतन न चीन्हे नेना धाव दूर दूर सुनि बेना ।

(क) सर बिरह जब कोलहि दए मधुकर निकसि निवास करइ । पाठा ।

(ख) नीरज भार अगिन जरी । पाठा ।

१—लाल करना = खुश करना । २—अकारथ ।

कया भवन महँ बहइ नित पाँच झकारा बाउ ।
एहि बिधि किरपा ओट कै दीपक बुद्धि बचाउ ॥ ५७ ॥

हस बचन सुनि कुँअर सँचेता[1] चढेउ आइ हिय अबुज हेता ।
ततखन हिए अगिन उदगरी मया पान परि छाती जरी ॥
मन महँ कहिसि नियाउ न हाई वह मारी मैं वह क न काई ।
औरहिं प्रेम भया मैं अधा हौं सो दूर वह मोर रधा[2] ॥
वह मो कहँ राखै चित माहीं मारे आहि की चरचा नाहीं ।
अब कै लेहुँ चाह तेहि केरी जौ हौं जीउ उठै औडेरी ॥
चलौं बिदा हाइ अपने देसा मकु भेटै जो जियत नरसा ।

एह मन गुनि आयो कुँअर उठि चित्रावलि पास ।
मुख मलीन ज्यों निसि कँवल चितवति भयो उदास ॥ ५७३ ॥

चकित भइ मुख देखि चकारी क मयक दुति लीन्ह अँजारी ।
के सनमुख भाषा कछु हीना जहि उदास भा मुखर मलीना ॥
मोर मँदिर पौन नहिं आव दीप जोति किमि छान देखावै ।
को होइ दूत नगर महँ आवा, साति कर जिन बिरह सुनावा ॥
नाहिं ता जहाँ समीर न चाला बिनु मधुकर पकज नहि हाला ।
पूछौं रसहिं पैठि हिय माहीं बिनु कारन एह कारन[4] नाहीं ॥
कहिसि कि ऐ साईं सुखदाई कारन कान बदन मलिनाई ।

तैं दिन मन सोइ जगत महँ जहि अँजोर ससार ।
काह बदन मलीन के करसि जगत अँधिआर ॥ ५७४ ॥

कुँअर कहा सुनु प्रानपियारी हम चित आनि चलेउ दुख भारा ।
मैं अपने कुल सरवन अहउँ अभी अधा काँवरि बहऊँ ।
तोरे पेम पिआस सँतावा बाट छाडि एहि सरवर आवा ॥
जम दशरथ आहे सर सोना, मकु चालत मारे बिख बाना ।

१—स्मरण किया अथवा बुद्धिमान् । २—रध = समीप । ३—उद्गार ।
४—क्रिया चेष्टा ।

इहवाँ लागि जाइ जम बाना अधा अयी तजहिं पराना ॥
उन कहँ अकन कौन दुहला अब कुमिआ महीं अकेला ।
जो एहि भेस जाइ सुधि लेहूँ मुए जिअत दूनहुँ गति देहूँ ॥

जब ते यह चिंता भई भाउ न एका काज ।
अब गौनब निज देस कहँ साजनु गौन क साज ॥ ७५ ॥

चित्रावलि सुनि चिंता गही सीस नवाइ आँधि हाइ रही ।
दोउ दूभर मिलि दुख उपराजा इत प्रीतम उत कटुम कि लाजा ।
काहु जाइ मदिल मह कहा आनु उजान कहत अस अहा ॥
हीरा बदन सूखि सुनि गयऊ बरपा बेध हिये मँह भयेऊ ।
सुनि क गइ जहाँ हन राजा कहिसि कि परी अचक सिरगाजा ॥
अब सजान निज देस सभारा, करत आह घर गौन बिचारा ।
राजा हिएँ अग्नि पुनि बरा तरहुँड माथ रहउ एक घरी ॥

नैन नीर भरि कहिसि नृप कछु न हमार बसाइ ।
का जग ताकर कर गहै, जो आपन ले जाइ ॥ ५७६ ॥

हम जबहीं आकहँ जिउ दीन्हा आपन सुख न्याँछावरि कीन्हा ।
अब जामह सुख पावे राऊ करहु साइ नहि आन उपाऊ ॥
ओकहँ आन कहहिं हम आना जनम हतु कर हाइ निदाना ।
जो यह करै हाइ सब साई कीन्ह हमार अमिरा हाइ ॥
कस न कर सब ताकर कहा, जाकर कहा होत सब अहा ।
ओ जो लहुँ पिय गौन न हाई लोग कुटुँब भल कहै न कोई ॥
जौ लहुँ पिय ससुरें नहिं जाई, ता लहुँ नहिं छूट लरिकाई ।

नहर महँ सब कलि सुख निमिखि न आगे सूझ ।
परै जाइ ससुरारि महँ पर आपन सब बूझ ॥ ५७७ ॥

१—अबसब ।

रानी राउ बचन जब सुनी भा चिंता चितहीं महँ गुनी (क) ।
कहिसि कि भला कहै नर लोई नेहरिन्ह जगत नेक[1] बुधि होई ॥
दुहिता सान अगिनि ससुरारा सासु सँडासी कत सोनारा ।
दै सोहाग सब निसि दिन झेली घोटे सदन घरी[2] महँ मेली ॥
नवँ[3] नाल फूँकत निन रहई सुलगि हिया काइला जिमि दहई ।
घाउ बोल घन[3] छिन छिन खाई ठाँ न छाड़ जानि निहाई ॥
तब तिरिया कुन्दन की नाई, मठ अक मँ भरि नग साईं ।

नेहर जानि न जाइ कछु गुन अगुन एक मान ।
साई सोहागिनि भामिनी जाकर ससुर मान ॥ ७७८ ॥

पुनि राजैं सुजान हँकरावा बदन हरि हिय गहबरि आवा ।
अति बिहबल मधु बचन उभाना कहिसि कहा चित कीन्ह उदास ॥
आइउ सूर निअर भा मोरा एह सब राज पाट धन तोरा ।
का बिचारि छाडहु एह राजू बिलसहु बैठि इन्द्र कर साजू ॥
कहा सुजान पुहुमि पै माथा दीन्ह न जाइ निमिषि तुअ साथा ।
हौं निरिधिनि भिखारि हुत आवा तुम राजा मोहिं राज करावा ॥
हौं परदेसी अहा अनाथा तुम किरपा करि कीन्ह सनाथ ।
मैं तुमर परसाद सब सुख अनेक जग काय ।
पिता राज अब चित चढ़ धसकि उठै मम हीय ॥ ७७९ ॥

पिता राज यहि जग महँ मूला मूल छाडि पल्ला का भूला ।
जो अपने देसहिं निजु जाना कस न अबहिं फिरि करौं पयाना ॥
पलटी दिष्टि फिर नहिं फेरैं मन पुनि परा दिष्टि क घरैं ।
जहि जेहि पथ चला हौं आवा, लोयन माह अहे सब छावा ॥
अज्ञा देहु तौ साजौं साजू इहवाँ नहिं हमार अब काजू ।

(क) भा चित चेत हिय महँ गुनी । पाठा । १—तनिक = थोरि । २—घरिया । निसम सोना आदि धातु गलाते ह । ३—हथौड़ की चोट ।

सुनि के उतर राउ गहबरा[1] उमडी नन दुहूँ जल धरा ॥
कहिसि कि जो तुम जिय असभावा करहु साइ जो जिय महँ आवा ।

जाकर चित अलप बसा कर न रास ढील ।
कहा जो राखे दिवस दस अत नल तजि साल ॥ ९० ॥

रानी सुनि धिग गौन बिचारा बिसुधि गिरी भुइ माइ पछारा ।
चूल[2] तारि माती उतराइ लायन माती माल पुराइ ॥
जन परिजन सब भा बिकरारा चाँ तन बिछुर प्रानपिआरा ।
सुन चित्रावलि गौन कु नाऊँ पर घर बिसमादा[3] सब गाऊँ ॥
राज मंदिल जा रार बनावा राजनीत मत्रा चलि आवा ।
देखेसि आइ बूढ आ बारा आपु आपु कहँ सब बिकरारा ॥
कहिसि कि जो काइ आपन थाती लेइ जो कहा बिदारिय[4] छाती ।

करहु चेत चित रार तजि साजहु गौन क चार ।
दूनहुँ जग महँ होइ जहि तुम्हरा मुह उजियार ॥ ९१ ॥

महत बचन सुनि चतो राजा साज लाग गौन कर साजा ।
चन्दन चीर कीन्ह चडोला चहु दिसि लाए रतन अमोला ॥
अपुरब एक आहार सुहावा बिबिधि भाँति क आनि आनावा ।
झूलहिं चहुँ दिसि झालरि माती छिटकि रही जग जगमग जाती ॥
कुसुम गूँथि बहु हार बनाये ठाँव ठाव पुनि आन लगाये ।
अगर मद मलयज घनसारा बास सुगंध कीन्ह चहँकारा ॥
आँगन क राखेउ चडोला दाएज कर भडार पुन खोला ॥

सान रूप मनि मोति नग हारि पार बहुताइ ।
पाटम्बर जरि पाँवरि दीन्ह अनक लदाइ ॥ ९२ ॥

१—विकल हुआ घबराया । —[illegible] । [illegible] आ [illegible] ।
३—दुखी हुआ । ४—[illegible] । ५—[illegible] । —फाड़ि ।

छोह भरी रानी पुनि आई, चित्रावलि लै अंक मेँ लाई।
कहिसि दोऊ लोचन भरि नीरा, मुख छबि पर बलिहारी हीरा॥
अब तुम्ह करब तहाँ कर गौना जहँक सदेस न पावहिँ सौना।
पिउ बरिआर[1] बिबस लै जाई हम देखहिँ पै कछु न बसाई॥
सकल जनम नेहर सुख सारा अब तुम चलहु जहाँ ससुरारा।
कठिन आहि ससुरारि कि रीती सोई जान जाहि सिर बीती॥
नैहर महँ जिन गुन आराधा[2] ससुर जाइ साइ सुख पावा।
अब जा घरि दुइ माँह पिउ ले गौनहिँ गहि बाँहि।
बचन दो एक उपदेस हित कहाँ अरब हिय माँहि॥ ५८२॥

सजग रहब गवने ससुरारा अहित अलेखिन हित दुइ चारा।
पर आपन जौ लहुँ न चिन्हाई सब सो राखब बदन छिपाई॥
आवरी[3] माँह रहब जिन गोई आगन हाब रात जब होई।
बैसब सदा बार है पीठी परै न सौंह आन की डीठी॥
सतति रहहि मुकुर कर माहीँ चीन्हब पर आपन परछाहीँ।
पुनि डर मानब गुरुजन करी सनमुख काहु न देखब हेरी॥
उतर न देब कह जौ काई लाजन रहब चरन तर जाई।
ननदी आघर जा कह रिसि राखब जिय मारि।
परिछि सीस पर लेब नित सामिनि देइ जा गारि॥ ५८४॥

औ चित लाइ करब पिउ सेवा एक पीउ दोउ जग सुख देवा।
मन जत साधब जनि कोई सेवा एक पीउ बस होई॥
जा बस होइ तो गरब न करिये आपु अधीन होइ मन हरिये।
औ काहू सों भेद न कहिय धन ज्यों करेँ छपाए रहिय॥
लोगन आगे रहब लजाइ, चोरीँ चढब सेज पिय जाई।

१—बरियार = बलवान्। २—(स ऊराकरण) संग्रह किया, सीखा।
३—आटरी, घर। ४—अवगर = कटुवचन।

जिउ दुख दै सेवक सुख त्यागी सगरी नि गँवावब जागी ॥
सौतिन्ह कर इरखा नहिं करना साई संग सदा जिय डरना ।
अलप धन सेवा अधिक रिसि राखब जिउ मारि ।
जहि धन महँ ए तीन गुन सोई सोहागिनि नारि ॥ ८५॥

सुनि उपदेस नारि गहबरी रोइ जननि क पायन परी ।
राणी पुनि ल अंक मँ लाई तजि न जाइ अति हिय छाहाई ॥
उन्ह दूनहुँ के मया निहारा हाइगा सगर नगर अँदोरा ।
जहँ लहु सखी सहेली चेरी रावहिं चित्रावलि मुख हेरी ॥
राजा सुनि अँदार पुनि आवा देखि अवस्था दुख जनावा ।
चित्रावलि तजि जननि कि छाती पिता के पाउँ परी बिलखाती ॥
राजै पुनि उठाइ गिँव लाई नैन नीर पुत्री अन्हवाई ।
पिता कंठ धिय गहि रही छाहन छाडि न जाइ ।
ज्यों त्यों जननि छुडावइ त्यों त्यों गहि लपटाइ ॥५८६॥

रानी बर कै धिय बिलगाइ राजँ बहुत प्रगाज बुझाई ।
जनि जानसि हा दूरि अडारी जात रहहिं हौं जामन बारी ॥
समाचार इत्यों कर मारा कहि संदस ल आइहि तोरा ।
औ पुनि कटक मार सँग जाइहि नाव चलाइ बिदा होइ आइहि ॥
कै परसाध नरस बिनाती समदि[1] चल्या धिय चखु भरि पानी ।
चित्रावलि कहँ होइ बिकरारा कंठ लाए समदैं परिवारा ॥
समदैं सखिआ ले ल फेरी पायन परि परि समदहिं चेरी ।
कोई राव कंठ गहि कोई पायन्हि लाग ।
सँवरि सँवरि सब संग सुख उठ करेजँ आगि ॥ ५८७ ॥

एहि महँ आवा कंत बुलावा, चित्रिन कुछ नहि समदे पावा ॥
जहाँ तहाँ सब देखहिं नारी चढी जाय चडोल सवारी ।

१—पर्या । २—मिलकर ।

छाडेउ सकल फूल फुलवारी छाडेउ सुख सरवर चितसारी ॥
छाडेउ अगर चँदन सुखदाई छाडेउ पालक[1] सेज सुहाई ।
छाडेउ पिता राज नवरगा[2] छाडेउ बाल सँघाती सगा ॥
छाडेउ हीरा अरथ भँडारा छाडेउ पाट नैन भिनु सारा ।
ठाढी देखहिँ सखी सहेली अन्त छाडि सब चली अकेली ॥

हसन खेल औ कूद सुख बालापन के रग ।
चली सोहागिन छाडि सब गुन औगुन ल सग ॥५८८॥

चढि चडोल चली बर नारी सग साथ घर बार बिसारी ॥
चारि कँहार बाँस धरि काँधा ऊपर डारि जायँ भारोंधा ।
आवहि ऊभ साँस उर लेई फिरि के काहु न धीरज देई ॥
सगर नगर पुनि देखी धावा मलि मलि हाथ करै पछतावा ।
दायज पुनि सब लादि चलावा कुँअर सुजान बिदा कहँ आवा ॥
बिनती करै राउ औ रानी बरखहिँ नैन सेवाती पानी ।
चित्रावलि अब अगसर जाई तुम जानहु औ कुल कि बडाई ॥

जान अहौ तुम्ह सग ले हम दुहुँ घट कर प्रान ।
आपु बडाई हरि के राखब एहि करिमान ॥ ५८९ ॥

चढि जो तुरग सुजान पयाना, सहस पखरिआ सग पलाना ॥
लाख सहस दासी जो दीन्हे बिचि दस दुरद छोरि सँग कीन्हे(क)
साजि कटक ले चल्या सुजाना बिबिधि भाँति नहि जाई बखाना ।
हसमिसिर की हेउँ अगुआई पाछँ लागि कटक सब जाई ॥
सूध पथ सागर गढ ताका पैन डेर कहँ मन रथ हाँका ।
जाइ तुलाने सागर गाऊँ, कुँअर देखि चीन्हा अँवराऊँ ॥
कहिसि हस हम अनतहिँ जाहीँ, इहाँ हमार परोजन नाहीँ ।

१—स फलक = पलग । २—(फा ورنگ!) औरग = राजसि हासन ।
(क) ज दल साथ सहस दस कीन्हे, तब सब लोग बडाई कीन्हे । पाठा ।

आजु लेब हम कटक सँग एहि अँबराउ सुबास
हाइहै काऊ हमार जौ सुनि आइहि हम पास ॥ ९० ॥

(४२) कौलावती गवन खंड ।

देखि कटक जिमि बादल छाहा परी हूल सागर गत माहाँ ॥
यह अब को जस सोहिल राऊ कटक साजि भुइँ चापे आऊ ॥
वह हुत कौलावति अनुरागी एह अब दहुँ आव कहि लागी ।
ओ कहँ हुत सुजान सधारा अब कहँ पाउब तस बरिआरा ॥
सागर मन पुनि चिंता भई साहस बाँधि मीचु पुनि भई ।
जहँ तहँ सजग बीर हित बासे सूर बदन जनु कोल बिगासे ॥
एहि महँ हस पहुँचा आई कहिसि करहु अब अनँद बधाई ।
जो जोगी सोहिल हना औ राखा तुअ प्रान ।
आयो बहुरि नरेस होइ, चलहु करहु सनमान ॥ ५९१ ॥

हस बचन जब सागर सुना, भा जिअ सोच हिया महँ गुना ।
अब लहु कौल आस जल अहा, अब जो राखिय कारन कहा ॥
लोग कुटुम मिलि कै मत ठाना कौल न काज आउ बिनु भाना ।
जस बर कै ओहि दीन्ह बिआही, अब बर के पुनि सौंपहु ताही ॥
दुहिता केर कठिन है भारा तबहीं पति[1] जो जाइ ससुरारा ।
जनम पिता माता घर लेई दुख सुख माथे बिधि लिखि देई ॥
यह बिचारि कै डाँड़ी फाँदी, गौन जान कौलावति साँदी[2] ।
समदी गगा गोद गहि औ कुमुदिनि कँठ लाइ ।
पुनि समदेउ परिवार सब, लोगन आँगन आइ ॥ ५९२ ॥

कौलावति चढि चली बिमाना, जहि अँबराउ सुरेस सुजाना ।
सागर साजि कटक पुनि चला, कौल गौन दुख जग कलमला ॥

१—मर्य्यादा । २—समदी = मिला । फाँदी, पाठा ।

औ जहँ लहु हुत दायज दीन्हा , सो सब लाइ पुरोहित लीन्हा ।
सागर आइ सुजानहिं भेंटा , मुख देखत सब दुख गा मेंटा ॥
कठ लाय हिय सीतल कीन्हाँ भुजा जोरि अँकवारी दीन्हाँ ।
औ जहँ लहु पर आपन अहे छुइ छुइ पाँउ दूरि तकि रहे ॥
सागर तब बिनती औधारी[1] कस घर तजि के उतरेउ बारी ।

जो राखहु नीरज चरन सोभ पाउ हम माथ ।
चलउ आप घर जानि कै कीजै हमहिं सनाथ ॥ ५९३ ॥

तब सुजान बोला सुनु राऊ एहि मारग हम लोग बटाऊ ।
पथिक पथ जौ छाडै कोइ भूलै अत महा दुख होई ॥
सूध पथ तजि उत्तर केरा कौल[2] बचा आएउँ पहि फेरा ।
कैलावति कर बिदा करीजै , अगुआ एक सग पुनि दीजै ॥
तुम परसाद जाउँ अब देसा , मकु भेटउँ कै जियत नरेसा ।
राय कहा कछु आहि न खाँगा[3] का राखै जो आपन माँगा ॥
सूख पथ बहु दुख जगजाना पानी पानी बहुत सिलाना ।

अज्ञा देहु तो जाइ घर साजो बाहित साज ।
लीजै सभै लदाय जो आउ तुम्हारे काज(क) ॥ ५९४ ॥

कुअँर गह सागर के चरना , कहिसि बेगि कीजै जो करना ।
सागर राउ पलटि घर आवा चित्रावलि पहँ कुअँर सिधावा ॥
कहिसि कि सुन्दरि प्रान पियारी तोहि बिनु प्रान हाइ घट भारी ।
एही नगर जहवाँ हौं कहा , पाँच मास पग साकर रहा ॥
एही नगर हम कहँ दुख बीता इहाँ हाकि सोहिल रन जीता ।
एही गाँव सागर गढ आएँ कैलावति जहाँ तीन्ह याही ॥
मो कहँ तुम्ह बिनु आन न भावा , वै मोहिं बिरह बहुत दुख पावा ।

१—कथा । २—(अ قول) वादा । ३—स पग = रुकावट । अडचन ।
(क) दान सब नगद ना आउ न तुम्हरे काज । पाठा ।

मोहि क दूसर आन नहिं मोहिं बिनु एहि संसार ।
तजि आपन घर बार सब आई के अभिसार ॥ ९५ ॥

अब लहुँ रही इहाँ मोरी गाजु अवधि पूजी आहि लगी ।
जा ऊहि कारन तन मन जरई, सा पुनि नाकर चिंता करई ॥
सौति जानि जनि नाहु दुखारी, वह तुम्हारि जस आज्ञाकारी ।
सुनि चित्रावलि हिए सँतोई नैन दुराइ कहिसि बिलखाई ॥
तुम साईं अपने सुख राजा तिरियहि नाउँ सौति सिर गाजा ।
जो बिधि सम्पा करावत[1] दई(क), सहे न ता अब काह करेई ॥
निसि आया तह कुँअर सुजाना कौंला जहाँ कीन्ह अस्थाना ।

कत बचा परतीति पर सोरह साजि सिंगार ।
बासक सेजा[2] होइ रहा लाइ नन दुइ बार ॥ ९६ ॥

पदुम कास अलि लीन्ह बसेरा हिए सोच भइ मालति केरा ।
नीरज लोयन रूप अतिसाए दिन कर देखि नीर भरि आए ॥
जिहँ सिंह कन्त कामिनि कँठ लाई बिरह दगधि उर लाइ बुझाई ।
अनमथ दाब जोव पुनि काँपी रावन बार लंक गहि चाँपी ॥
दीन्हीं चार नखच्छत छाती फूट सिंधार[3] सेज भइ राती ।
हाइगा अंग भंग नव साता अति परसेद[4] सि[5] बल भइ गाता ॥
भया प्रभात गयो उठि साईं, कौंल पास कुईं[6] चलि आईं ।

हँसि हँसि पूछहिं रैनि सुख रहसि करहिं परिहास ।
लाजन गोव कौंल मुख सखियन अधर बिगास ॥ ५९७ ॥

१—कलावत = कला कला करना पढ़ना ।

(क) जो करता सर गिरिवर दई । पाठा ।

२—बासकसज्या । ३—सारि जल अथवा बार = द्वार ४—सि बेरा = सि दूर रखने का डबिया । ५—प्रस्वेद = पसीना । ६—कुमुदिनी ।

चित्रावलि कहँ बिनु ससि साईं । गई रैनि सब गनत तराईं ।
सौति सग साले जनु काँटा । अग अग लागै जनु चाँटा ॥
सुलगी उरध आगि सन सेजा । आठि हाइ जल रकत करेजा ।
करम करम कै सो निसि गई , पिअ देखत तिअ खंडित भई ॥
रही सोइ मिसि बदन छिपाई । नायक सकुचत आनि जगाई ।
परी चौंकि लागै कर सीरा । दच्छिन नाहिँ नायका धीरा ॥
काहिसि अहिउँ सुख सपने माहीँ । कहा जगाइ लाइ गहि बाहीँ (क) ।

अहिउँ महा सुख सपन महँ तुम कर लागे अग ।
गए नैन पट उघरि कै भया सकल सुख भग ॥ ५९८ ॥

जानहुँ तुम एक सुन्दरि सगा । मानत अइ केलि रति रगा ।
मोहि देखि ना सात बनाए । तजि मो नारि आनि कँठ लाए ॥
हिये लागि हिय मार सिराना । पाएउँ अधर अमिय कै पाना ।
ओर सकल सुख कह न जाहीँ । उठे आगि सँवरत मन माहीँ ॥
भई दोहागिन[1] बिकल सरीरा । जनु गिरि गयो हाथ त हीरा ।
वह रोवै परि सेज अकेली । हाँ हँसि हँसि मानौं रस केली ॥
मोर छए कुसुम जनु गाथा । वह लगि रहे हाथ सों माथा ।

सेज अकेली रैनि सब , सहउ सकल उतपात ।
चतुर नारि चित्रावली रस काढै रस बात ॥ ५९९ ॥

---

(४३) बोहित खंड ।

उहवाँ सागर बोहित साजा इहवाँ दुंद गौन कर बाजा ।
पखर घार पलाने हाथी , सँभरि चले पुनि अत के साथी ॥

(क) सपना दखि अपन्ति जाहीं । सौति क डाह हिए दुख नाहीं । अधिक पाठ ।

१—दूसरी स्त्री = सवाति ।

चली दोऊ धनि करत कलोला अपन अपन चढ़ि चढ़ोला।
एक बाएँ एक दहिने जाई एकहि एक न पास सुहाई॥
कुँअर साजि पुनि कटक सुहावा रहसत साज समुद्र जहु आवा।
बोहित साज देखि मन भावा चित्रिनि कर चढ़ाल चढ़ावा॥
पुनि कौलावति समदि भुआरा चला जाइ तजि सब परिवारा।

अगनित दायज दरब जहिं देखि हिया हरखत।
एक एक सबै चढ़ाइ क कुअर चला पुनि अत॥ ८००।

बोहित चढ़ेउ कुँअर ल भारा समदि चल पहुचावनहारा।
समदे लोग कुटुँब हय हाथी सोइ साथ अत जो साथी॥
लोकाचार तीर लहुँ आए नाव चले सब भए पराए।
पीठ दत ही मित बिसारा सब काहू घर बार सँभारा॥
कुँअर पेलि बोहित ले चला भार देखि कवट कलमला[1]।
कहिसि कीन्ह तुम दूर पयाना बोहित नाहिं भार अनुमाना॥
बोहित चढ़े बहुत उतपाथा[2] ऊँचे भौंर ऊठहि पुनि साथा।

भौंर फेर जलजतु डर तेहि पर आँधी आउ (क)।
जिउ आव तब पट महँ तीर लाग जब नाउ॥ ८०१॥

सोन रूप तुम कहा बटोरा भार बहुत देखत पुन थोरा।
गाढ़ परे पुनि होइहि भारी अबही कस नहिं देहु अड़ारी[3]॥
कुँअर कहा सुनु बोहित पती दरब न डारि जाय एक रती।
बोहित साजा दरब हि लागी का ले जाब संग यहि त्यागी॥
जो मानै जिय अस डर भारी चढ़ न काऊ नाव नवारी[4]।
तुम खेवहु जनि मानहु सका, मेटि न जाइ सीस कर अका॥
हँसि के बोहित केवट पेला, चला जाइ जल माहँ अकेला।

१—विकल हुआ। २—उतपात। (क) मिलचहि आ या नाव।
३—फेंकना। ४—नाव पर चढ़ने वाला।

देखत बारिधि अगम जल , प्रान न धीर धराइ ।
सोई चलै निचिंत होइ जो कोउ आवै जाइ ॥ ६०२ ॥

रैनि एक बादर जुरि आए दुहुँ दिसि हाइ रिखि सात[1] छपाए ।
मारग भूला कवट डरा , बोहित जाइ भौंर बिच परा ॥
भँवै लाग तहँ बोहित भारी कुँअर कहा कछु देहु अडारी ।
जाक अहा सग कछु भारा पहिलहिं तँ सब रूप अडारा ॥
हरुआ होइ बोहित अगुसरा दूजे भौंर जाइ कै परा ।
जहँ लहु अहा सोन कर नाऊँ सो सब डारि दीन्ह तेहि ठाऊँ ॥
तीज भौंर जहाँ रग हीरा चौथे अन जाकर नर कीरा ॥

पँचयें भौंर भयो सेस नर अत जानि पुनि मीच ।
कुँअर जिअन जिअ सौंरि कै , परे कूदि जल बीच ॥ ६०३ ॥

छठएँ भौंर मरन निज हेरी साहस बाँधि गिरीं सब चेरी ।
सतएँ भौंर जो आइ तुलाना कौलावति कर जिउ अकुलाना ॥
कहिसि कि हौं बलि देउँ सरीरा , मकु ये दोउ लगि लगैं तीरा ।
पुनि मन कहिसी रहा पछितावा चित्रिनि रूप न देखै पावा ॥
मरन बेरि मुख देखौं जाई मकु अजहूँ तजि कोह छोहाई ।
चित्रिनि पहँ आई गुन भरी बदन बिलोकि पाउँ लै परी ॥
कहिसि कि हौं अपराधिनि तोरी , करहु छोह सुनि बिनती मोरी ।

रहै सदा तुअ सीस पर सेंदुर भाग सोहाग ।
हौं समदति हौं चरन गहि इहै मोर अनुराग ॥ ६०४ ॥

चित्रावलि सुनि हिए छोहाई , कौलावति कह कठ लगाई ।
कहिसि कि तजहु सौति कर नाता , मोरि तोरि एकै जनु माता ॥
हौं जिउ देउँ रहउ तुम्ह दोऊ मोरे मुए होउ सो हाऊ ।
मरन लागि दुहुँ बाद पसारा सुनि सुजान धायो बिकरारा ॥

१—अ रकसात (رصات) आसमान अथवा ऋषि सात = सतर्षि मडल ।

कहिसि कि महरिन्ह बुद्धि न रती। हौं अब मरौं होहु तुम्ह सती।
तीलिहुँ गही मरन की टेका। मरन न पाउ एक तें एका॥
देवता सरग जा देखत अहा। इन्ह कर प्रेम देखि थकि रहा।
ससि सूरज कुज दोउ गुरु राहु बुद्ध सनि केतु।
कहहिं कि अब लहुँ भूमि मह अस न कीन्ह कोउ हेतु॥८०७॥

---

(४४) जगन्नाथ खंड।

तब अगस्त सौं कहिन हँकारी। मरन न पावहिं लेहु उबारी॥(क)
कोपि अगस्त भुजा देखराई। समुँद लहरि तब गयउ बुताई (ख)॥
तनिक अगस्त दिष्टि किय तजा। थर थर काँपेउ समुद करजा।
एकहि लहरि साइ अस जागा। बाहत निकसि तीर गे लागा।
कुसल देखि सब कीन्ह अनन्दा। आपु आपु कहँ बिधिना बन्दा॥
ऐ दयाल सुख दुख क दाता। तोहिं बिनु दूसर नाहिं बिधाता।
सकट देसि ता कोन छुडावै। मुकुति देसि ता कान फँदावै॥
देसि भिखारी राज जो। लिये न काहू साथ।
राजहिं करसि भिखारि ता। कान गहे तुअ हाथ॥८०८॥

आदित उगवत बालन कागा। बाहिन आइ तीर पहँ लागा।
बाभन एक करत अस्नाना, देखि कुँअर चित रहस[२] समाना॥
पुनि पुकारि कै पूँछिसि राई। बालहु कोन नगर यह भाई।
कहिसि कि कस आँखिन अँधियारा। जगन्नाथ जहि जग उजियारा॥
पुहुमि सकल जेहि सेवा करई। पग परसत दुख पातक हरई।
कुँअर कहा तुम दोऊ पियारी। एहि झलफलें गनि अँधियारा॥
जौ लहुँ कोऊ मिलै न दूजा, तो लहुँ जाइ लेहु कै पूजा।

(क) सँभारी पाठा। (ख) सुरज पाठा। १—बुताना निवृत्त होना।
२—हर्ष आनन्द। ३—उषाकाल।

कहा राज सुख साज सब कहँ वह सरग बिवान ।
जिमि जिमि पुहुमी पग धरै झखै[1] कँअर सुजान ॥६०७॥

आयो जगन्नाथ दरबारा, ससिहर लिये सग दुइ नारा ।
दोऊ नारि दोऊ दिसि लसी, इन्द्र साथ रभा उरबसी ॥
परसि देव पुनि बिनती कीन्ही सपति हम बारिधि कहँ दीन्ही ।
अब निरधन परदेसी जानी मानि लेहु यह पाती पानी ॥
कै अस्नान बिप्र पुनि धावा पुजा दरब समेटै आवा ।
जबहीं दिष्टि कुँअर पर परा दोउ नैनन आए जल भरी ॥
कुँअर कहा तुम देव हमारे, कहा जानि चखु आँसू ढारे ।
कहिसि हमार नरेस सो यही रूप अनुहारि ।
निकसि गयो एक जोगि सँग, बसत बसत उजारि ॥ ६०८ ॥

तेहि दिन तें पुनि खोज न पावा सपनेहुँ कोउ न सँदेस सुनावा ।
पिता नाउ धरनीधर राजा बैठेउ छाडि राज कर काजा ।
माता रोइ अधि पुनि भइ देसहिं आन समय होइ गई ॥
हौं बामन जा परोहित अहा देखि न सकेउँ देस दुख सहा ।
सेयौं आइ देव जग नाथा, हिँछा कै मकु मिलै सो नाथा ॥
तुअ मुख देखेउँ ओहि अनुहारा, गहबर आयो हिया दुखारा ।
अगुआ पुनि बाउर होइ गए, परजा छाडि देस सब गए ।
कुँअर हिया पुनि गहबरा[2] लोयन नीर भराय ।
चीन्हि परोहित आपना परा पाउँ पर आइ ॥ ६०९ ॥

कहिसि कि तुम हौ पाँडे केसी, हौं सुजान सोई परदेसी ।
जोगी होइ गएउँ तेहि देसा जहँ न आइ कोइ कहै सँदेसा ॥
जेहि लगि सहा जनम दुख भारी सोइ यह चित्रावली पियारी ।
तब पुनि जहँ लगि दुख सुख अहा बैसि कुँअर एक एक सब कहा ॥

१—रोय पछुताय । २—भरि आया ।

पडित रहसि आसिषा[1] दीन्हा मनहीं माहँ बडाई कीन्हा ।
कहिसि कि जिअ जनि चिंता करहू अब सुख सकल हिए दुख हरहू ।
बरष दिवस भा सवत देवा दारिद गयो समुँद की सेवा ॥

समुँद आउ एक दिन चलो, जगरनाथ कहँ सेइ ।
मोहिं मिखारा जानि के, गयो पाँच नग देइ ॥ ६१० ॥

काहुहिं मोहिं देखाइ न जाई छेरा मुँह कोहँडा न समाइ ।
अब जो तुमरे आवहिं काजा, लेउ करहु सब आपन साजा ॥
बाभन आनि पाँच नग दीन्हा पारखि नग अमाल तब चीन्हा ।
पूछेसि इहाँ साहु कोउ अहई धन पातर[2] जा कहँ जग कहई ॥
कहिसि कि लच्छन साहु सयाना महाधनी पुहुमीपति जाना ।
कुँअर बोलि कै नग कर दीन्हा लच्छन रतन अमोलि क चीन्हा ॥
औ पुनि धरनीधर सुन जानी आदर कीन्हेसि सेव बखानी ।

कुँअर कहा हम पथ सर, जिलँब एक दिन नाहिं ।
करहु साज अब सोइय जहि अपने घर जाहिं ॥ ६११ ॥

लच्छन कहा दरब बहु आही जो चाहिय सो लेहु बेसाही ।
देस तुहार मोर हे देखा उहइँ आइ मँ पारब लेखा ॥
सोन रूप पाटम्बर आना साज महरिन्ह लागि बिवाना ।
अभरन सभै जराऊ साजे मुकतमाल उर माहँ बिराज ॥
हाथि धार पुनि जाए बेसाहे सहस एक राखे खँडवाहे[3] ।
कटक साजि क कुँअर पयाना बाजा पुनि गहगहा निसाना ॥
चमकत चले बिवान सोहाए, जानहु अमरपुरी तें आए ।

राति दिवस जावैं चले, आन न कछू सुहाय (क) ।
रहसहिं अपने देस को पुहुमि न लावहिं पाय ॥ ६१२ ॥

१—आसिष = आशीर्वाद । २—धनपात्र = धनी ।
३—खाँडावाले घोड़ा । ४—चला । (क) रात दिवस चलि जाहि पुनि बिलम न कहूँ सुहाय ।

(४५) अभिषेक खड ।

चलनहिँ चलत देस नियरावा, बन बीहर सब लाग सुहावा ।
केसी पाँडे कहिसि बुलाई, आगे राय जनावहु जाई ।
अज्ञा पाइ उठाइसि पाऊ, आयो जहँ धरनीधर राऊ ॥
कहिसि राउ अब करहु बधावा, कुँअर सुजान कुसल सौं आवा ।
सुनतहि नाउँ राउ रहसाना जनहुँ मृतक तन प्रान समाना ॥
राती नैन जोति सुनि पाई, घर घर बाजै लागु बधाई ।
फिरि फिरि पूछै कुसल सुजाना केसी कहा जहाँ लहु जाना ॥

राजा सँग आगे चले राउत राना झारि ।
उठे धाइ सब नाउँ सुनि, बाभन बनियाँ बारि ॥ ६१३ ॥

देखि सुजान पिता असवारा उतरि पियादे होइ पगु धारा ।
धरनीधर पुनि उतरि के भेंटा, बिछुरन दुख सबै धरि मेंटा ॥
सुत कर बदन हेरि भा छोहा घरी घरी हिय उठै मरोहा[1] ।
हिय गहबरि मुख बात न आऊ फिरि फिरि गहै पिता कर पाऊ ॥
फिरि फिरि राउ गहै अँकवारी लोग कुटुँब नेउछावरि सारी ।
पुनि दोउ जना भये असवारा, पूँछत चले कुसल बेवहारा ॥
जौ लहुँ कुँअर मँदिल नहिँ आवा, हाथ हाथ सौं छूट न पावा ।

कुँअर परे लइ मातु पगु भरि लोचन दोउ नीर ।
मातु मया चरौइ पुनि, उतरा अस्तन छीर ॥ ६१४ ॥

माता लै सुत कठ लगावा चूमि बदन कर आँखिन लावा ।
कहिसि कि धनि दिन धनि यह घरी, पूतहिँ भेटिउँ अक मेँ भरी ॥
मानिक मोती भरि भरि थारा, नेवँछावरि साजैँ परिवारा ।
चित्रावलि ले मँदिल उतारी, औ पुनि सँग कोंलावति बारी ॥
सासु चरन लागीँ दोउ आई रानी गहि दुहुँ अक मेँ लाई ।

---

१ —न्यार ।

फिरि फिरि आचर डार रानी चन्द सूर अपने घर जाही ॥
लोग कुटुँब परिवार सबाई लै ले आए राज बधाई ।

राजै छत्र उतारि क धरा कुँअर के सीस ।
टीका काढ़ि राज कर आ पुनि दीन्ह असीस ॥ ६२ ॥

कुँअरहि राज पाट बसाई, बे नृप बिधना ला लाई ॥
राउत राना आइ जोहारे दे पहिरावनि सब प्रतिपारे[1] ।
मन्दिर मन्दिर बजउ बधावा घर आँगन सब भयउ सुहावा ॥
चित्रावलि कौलावति बारी बिलसहिँ आपनि आपनि पारी ।
निसि बासर आनँद सुख हाई, दुख का चरचा करै न काई ॥
देख तिया सब अचक रहाई, जनहुँ दुआ एक जननि की जाई ।
धन माता धन पिता सबाईँ गाजुख कोरि अपछरा आईँ ॥

पान फूल सुख भोग ल ब दन बास बसाहिँ ।
सुख सर कुरलहि हस न्या निसि दिन कलि कराहि ॥६२॥

कथा मान कबि गायेउ नई गुरु परसाद समापत भई ।
जे रे सुना त हिरदै राखी आ अति चाउ आन सो भाखा ॥
जो जेहि पथ दुख जिअ सहई सो पुनि अतमुख निपि रहई ।
मनहिँ कहउ ते अति दुख देखा अब जिउ मानहि सुख कर लेखा ।
कबिनन्ह मरन कथा कै गाई माहिँ मरत हिय लागु डराई ।
ओ ज प्रेम अमी रस पीया मरै न मार जुग जुग जीया ॥
एक जियन एक मरन सँसारा मरि मरि जियइ ताहि का मारा ।

ज्ञान ध्यान मद्धिम सब जप तप सजम नम ।
मान सो उत्तम जगत जन, जो प्रतिपारे प्रम ॥ ६ ॥

॥ इति ॥

१—प्रतिपाला । —सजम यम । —[illegible] । —[illegible] ।